Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ISSN : 2348 - 2672
मार्च 2018
मूल्य : 30 रुपये

अंक 26

लहक

साहित्य की वैचारिक पत्रिका

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

महेन्द्र भटनागर

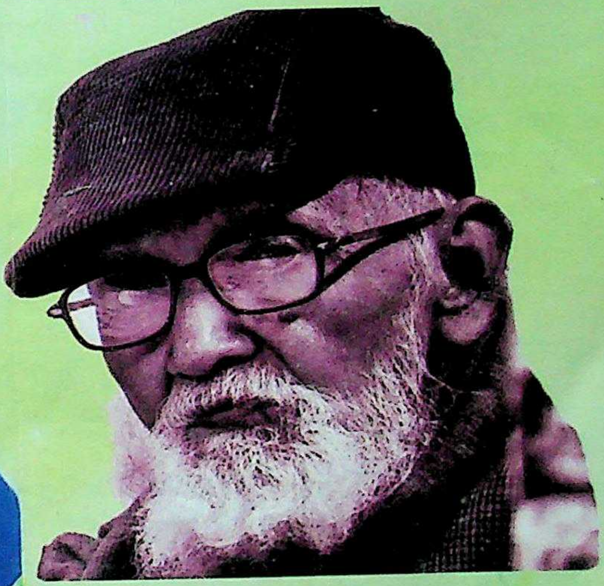

विष्णुचंद्र शर्मा

ईमानदारी का साहित्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

RNI No. - WBHIN/2013/53192, Vol- 5 - Issue - 55. Rs. 30/- only ISSN : 2348 - 2672

लहक

मार्च 2018 ■ अंक : 55

सौधात्री प्रकाशन
लहक

सम्पादक
निर्भय देवयांश

सम्पर्क पता : 5, महाराजा नंद कुमार रोड, निकट लेकमार्केट (चारूचन्द्र कॉलेज)
कोलकाता - 700029
मोबाइल : 08820512143
E-mail:lahakmonthly@gmail.com
सम्पर्क समय : संध्या 3 से 6 बजे तक

कार्यालय पता : (केवल पत्राचार के लिए)
बी-3. बांदीपुर रोड, मिस्त्रीपाड़ा, बांसद्रोणी, थाना - रिजेन्ट पार्क, कोलकाता - 700070

बासुदेव भट्टाचार्य (विज्ञापन प्रतिनिधि) श्री गंगा राम (साज-सज्जा)

दिल्ली ब्यूरो - राजू बोहरा
मो. : 09350824380
प्रजा दत्त डबराल
मो. : 09810974880
मुंबई ब्यूरो - अमरनाथ
मो. : 09833188133
लखनऊ ब्यूरो - सुरेश कुमार
मो. : 08009824098
पटना ब्यूरो - मुकेश कुमार सिन्हा
मो. : 09097342912

विधि सलाहकार
शम्भुनाथ राय (अधिवक्ता)
कलकत्ता हाईकोर्ट

मूल्य: 30 रुपये
सदस्यता शुल्क :
व्यक्तियों के लिए : वार्षिक 500 रु., त्रैवार्षिक 1200 रु., पंचवार्षिक 1800 रु., आजीवन 10.000 रु.

संस्थाओं के लिए : वार्षिक 600 रु., त्रैवार्षिक 1400 रु., पंचवार्षिक 2000 रु., आजीवन 12.000 रु.
विदेश के लिए : हवाई डाक प्रति अंक 6 डॉलर, वार्षिक 60 डॉलर, जलमार्ग प्रति अंक 4 डॉलर, वार्षिक 30 डॉलर।
मनीऑर्डर/चेक/ बैंक ड्राफ्ट Saudhatri Prakashan के नाम से भेजें।

इस अंक में : (अंक 26)

सम्पादकीय : *निर्भय देवयांश*
4. ईमानदारी का साहित्य
6. **महेन्द्र भटनागर**
7. 'प्रेमचंद और उनका युग' वस्तुत: इसी युग का एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है : *मधुरेश*
साक्षात्कार : **प्रद्युम्न कुमार सिंह**
9. बद्दुआ जानी नहीं, पायी किसी की भी दुआ नहीं : *महेन्द्र भटनागर*
12. महेन्द्र भटनागर की कविताओं का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन : *उमाशंकर सिंह परमार*
18. महेन्द्र भटनागर की कविताएं - गाओ कि जीवन गीत बन जाए : *कौशल किशोर*
20. आशा-विश्वास और आस्था के कवि महेन्द्र भटनागर : *अजीत प्रियदर्शी*
23. जिंदगी के हर रंग को उकेरती और उम्मीद जगातीं कविताएं : जीवन राग : *गीता दूबे*
31. **विष्णुचन्द्र शर्मा**
32. संघर्षशील सर्जक विष्णुचन्द्र शर्मा : *अमीर चंद वैश्य*
39. 'सर्वनाम' की कहानी मेरी कहानी है : *विजेंद्र*
43. 'अपनी लिखत में जन-मन की पीरा कहत कवि' : *रजत कृष्ण*
साक्षात्कार : **भास्कर चौधुरी**
46. मेरा पूरा लेखन, विरोध का लेखन है : विष्णुचंद्र शर्मा
52. 'मैं जिस राजकमल से मिला हूं, वह या तो यात्री है या भागा हुआ युवक' : *राजकमल प्रसंग में विष्णुचन्द्र शर्मा से महेश दर्पण की बातचीत*
60. उत्तर-सत्य और लोकतंत्र : *अरुण माहेश्वरी*
63. साहित्य और क्रांति का रिश्ता : *राकेश भारतीय*
लघु कहानी :
66. प्रतियोगिता : *मार्टिन जॉन*
67. लीलाधर मंडलोई की लद्दड़ कविताएँ : *सुशील कुमार*
72. हिंदी लेखकों के साथ घटतौली की अनंत कथा : *दयानंद पांडेय*
समीक्षाएं
79. मार्क्सवाद सिर्फ सिद्धांत नहीं व्यवहार भी है... : *सीमा संगसार*
82. गांवों को हमारे देश का हृदय-स्थल कहा जाता है : *रंजना कंण्ठ*
84. लुटेरों के हाथों कैसे रहे जनतंत्र सुरक्षित? रेशमी पांडा मुखर्जी
कविताएं/गज़ल
28. महेन्द्र भटनागर, 38. विष्णुचन्द्र शर्मा, 58. विष्णुचन्द्र शर्मा, 78. मिथिलेश कुमार मिश्र 'दर्द' 81. संगीता कुमारी 85. विज्ञान व्रत
86. **साहित्यिक गतिविधियां**
89. **कला-संस्कृति :** राजू बोहरा, प्रजादत्त डबराल
व्यंग्य
90. मेरे कवि मित्र की चिन्ता : बुलाकी शर्मा

Gandhi Memorial College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc. No. 4080
Dated 12-12-2023

1. Name of the A/C : Saudhatri Prakashan
2. Name of the Bank : Indian Bank
3. Name of the Branch : Central Avenue, Kolkata - 700012
4. Address of the Bank : Indian Bank Central Avenue, Kolkata - 700012
5. MICR : 700019008
6. Type of Account : Saving
7. Account No. : 6056260007
8. IFC Code : IDIB000C004
Cheque should be in favour of 'Saudhatri Prakashan'

Printer and Publisher :
Nirbhay Devyansh, on behalf of owner Saudhatri Prakashan,
Printed at : Kranti Press, 37, Ripon Street, Kolkata - 700016
Published at : B-3 Bandipur Road, MistryPara, Bansdroni, P.S.- Regent Park, Kolkata- 700070
Editor : Nirbhay Devyansh

© सर्वाधिकार सुरक्षित
• प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है।
• प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक, सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
• समस्त विवाद कलकत्ता न्यायालय के अन्तर्गत विचाराधीन होगा।

'केंद्रीय हिंदी संस्थान', आगरा से सहयोग प्राप्त

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College of Education Bantalab Jammu

सम्यक् संवाद :

ईमानदारी का साहित्य

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu
Acc. No.
Dated

ईमानदारी साहित्य में कोई वस्तु हो सकती है, खासकर हिन्दी साहित्य में इसकी संभावना है? यह एक जटिल प्रश्न है लेकिन साहित्यकार इसके इर्द-गिर्द रहने की कोशिश करते हैं। साहित्य में सर्वहित पहले और स्वहित बाद में, कितने लोग सोचते हैं। मुझे लगता है कि महेन्द्र भटनागर और विष्णुचंद्र शर्मा के साहित्य में सर्वहित की चिंता अग्रणी है। यह निर्णय कितना कठिन होता होगा, यह समझने के लिए इन दोनों रचनाकारों के व्यक्तित्व से गुजरना समय की बर्बादी तो कम से कम नहीं है। अस्सी और नब्बे की उम्र पार दोनों रचनाकार को अगर इस आधार पर जानने-पहचानने की कोशिश करेंगे कि इन्हें क्या कुछ मिला और क्या कुछ नहीं, तो आप निराश हो जाएंगे। यही करना रहता तो अपने हिन्दी साहित्य में काम की कमी है भला! इतनी मजबूत लॉबिंग किसी और भाषा के साहित्य में ढूंढ कर भी न मिलेगी। जितने भी प्रकार के कुचक्र और साजिश हैं वो सब आपको हिन्दी साहित्य में मिलेंगी। यदि अभी तक आप इसके शिकार न हुए हैं और इसी भाषा में रच-बस रहे हैं तो उम्र के किसी पड़ाव पर महसूस करेंगे कि किसके लिए लिखे, क्यों लिखे और लिखने से हासिल क्या हुआ? ये सारे सवाल आपकी लेखनी से जुड़े हैं और बार-बार टीस देंगे कि आप कहां आकर फंस गए।

ऐसा होना स्वाभाविक है, यदि आप साहित्य को पाने का जरिया समझ लेंगे। जरिया न समझेंगे तो लेखन को कर्म मानते हुए सिर्फ लिखेंगे और लिखते जाएंगे और अपनी लेखनी से जनता के पक्षधर होंगे। विष्णुचन्द्र शर्मा और महेन्द्र भटनागर के लिए लेखन कर्म यही है। हिन्दी में जिस तरह से पीठ और फाउंडेशन बनाकर लेखकों की वफादारी की बोली तय की जा रही है, वह दिन दूर नहीं जब लेखक भाड़े पर मिलने वाले टट्टू हो जाएंगे। वफादारी भी वीभत्स रूप लेती जा रही है।

घराना ढूंढा जा रहा है कि कौन किस घराने से ताल्लुक रखता है और उसी के हिसाब से उसकी औकात तय होगी। ऐसे लोग लेखक हैं, होने लायक हैं, होना चाहिए? सवाल ही सवाल है। किसी एक सवाल का जवाब करीने से आपको नहीं मिलेगा। कुछ को छोड़ दें तो अधिकांश लेखकों की कलम ठकुरसुहाती हो गई है। चलेगी तो आका के लिए, रुकेगी तो आका के लिए और बैठकी भी लगेगी तो आका के पास।

इसलिए जब आप कोई अंक विष्णुचन्द्र शर्मा और महेन्द्र भटनागर या नीलकांत पर निकालेंगे और उनकी जान-पहचान वाले लेखकों से उन पर लिखने को कहेंगे तो जो नजारा दिखेगा - सचमुच वह नजारा हसीन होगा। यही वजह है कि हैसियत और औकात में तर-बतर लोगों के बीच भी नीलकांत, विष्णुचन्द्र शर्मा, महेन्द्र भटनागर दिख जाते हैं। इनकी प्रकाश रोके नहीं रुकेगी। रोकने वाले रोक भी नहीं सकते हैं। भला विष्णुचन्द्र शर्मा और नीलकांत जैसे कितने लोग हैं जिन्होंने लेखन के लिए सरकारी नौकरी की तरफ नजर तक नहीं दी, और उसके बाद की होने वाली परेशानियों को झेलते रहे? संभव है कि किसी ने, कुछ ने मदद के लिए हाथ बढ़ाया हो, पर मदद भी आजकल कैसी होती है! लोग जितनी मदद देते नहीं उससे अधिक तो प्रचारित करते हैं। विष्णुचन्द्र शर्मा के बारे में अपने मिजाज के प्रखर कवि ध्रुवदेव मिश्र पाषाण ने कहा - विष्णुचन्द्र शर्मा जिंदा इतिहास हैं, तो कभी विष्णुचन्द्र शर्मा ने नीलकांत के बारे में लहक से बातचीत में कहा था-नीलकांत की उपेक्षा हुई है। ईमानदारी के साहित्य का प्रथम और आखिरी लक्षण है- अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए सोचना।

निर्भय देवयांश

निर्भय देवयांश

Email:devyanshnirbhay@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

केंद्रीय हिंदी संस्थान

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005, फोन : 0562-2530684. वेबसाइट : www.hindisansthan.org, www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई. में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र: दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य -

■ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन ■ विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन ■ अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण ■ संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्य संस्थान के उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना ■ समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य -

● **शिक्षणपरक कार्यक्रम** : (i) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण, (ii) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (iii) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम, (iv) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित), (v) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषा विज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

● **अनुसंधानपरक कार्यक्रम** : (i) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (ii) हिंदी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन, (iii) हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान, (iv) हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान, (v) हिंदी का समाज भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (vi) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण।

● **शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास** : (i) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी शिक्षण सामग्री निर्माण, (ii) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण, (iii) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (iv) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (v) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (vi) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/ त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन : हिंदी भाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रैमासिक पत्रिका - 'गवेषणा', 'मीडिया' और 'समन्वय पूर्वोत्तर' का प्रकाशन।

पुस्तकालय : भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकें। लगभग 75 पत्र-पत्रिकाएँ (शोधपरक एवं अन्य)।

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय : हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल (मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है।

योजनाएँ : ■ भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत ■ अफगानिस्तान के नान्गरहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी.ए. का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ ■ विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवानिया, यू.एस.ए., यू.के. मॉरिशस, बेल्जियम, रूस आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी ■ हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना; पूर्वोत्तर लोक साहित्य परियोजना तथा लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य।

- प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
निदेशक
ई-मेल : nkpandey65@gmail.com
directorofkhs@yahoo.co.in

- डॉ. कमल किशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल
ई-मेल : kkgoyanka@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महेन्द्र भटनागर

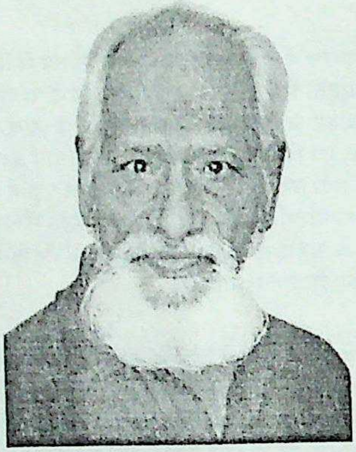

जन्म - 26 जून, 1926 झांसी, ननसार में (उ.प्र.)

प्रारंभिक शिक्षा- झांसी मुरार (ग्वालियर), सबलगढ़ (मुरैना) में। शासकीय विद्यालय, मुरार ग्वालियर से मैट्रिक 1941, विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर से इंटरमीडिएट 1942-43, बी.ए. 1945, नागपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. 1948, (हिन्दी), 1957 में समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद पर पीएच.डी।

जुलाई 1945 से अध्यापन कार्य -उज्जैन, देवास, धार, दतिया, ग्वालियर, महू, मंदसौर में। कमलाराजा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय ग्वालियर (जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर), जुलाई 1984 को प्रोफेसर-अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त।

1941 से काव्य-रचना आरंभ। संभवतः प्रथम कविता - 'सुख-दुख', जो वार्षिक पत्रिका विक्टोरिया कॉलेज मैगजीन के अंक में छपी थी। वस्तुतः प्रथम प्रकाशित कविता 'हुंकार' है, जो विशाल भारत (कलकत्ता) के मार्च में प्रकाशित हुई।

अधिकांश साहित्य 'महेन्द्र भटनागर समग्र' के छह खंडों में एवं काव्य-सृष्टि 'महेन्द्र भटनागर की कविता गंगा' के तीन खंडों में प्रकाशित।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'प्रेमचंद और उनका युग' वस्तुतः इसी युग का एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है

-मधुरेश

महेन्द्र भटनागर रांगेय राघव, अमृतराय और धर्मवीर भारती की पीढ़ी के लेखक हैं। उन्होंने प्रायः सभी प्रमुख विधाओं में अपनी अभिरुचि एवं रचनात्मक सक्रियता का परिचय दिया है। लेकिन उनका मुख्य क्षेत्र काव्य और आलोचना ही रहा है। मुझे याद है, पचास के दशक में जब मैंने साहित्य और संस्कृति की दुनिया में आँखें खोलीं, महेन्द्र भटनागर की रचनाएँ उस दौर की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं - 'हंस', 'जनवाणी', 'कल्पना', 'कहानी' आदि में अपने समय के मूर्धन्यों के साथ प्रकाशित होती थीं। अक्टूबर सन् 1957 में, प्रेमचंद की पुण्यतिथि के अवसर पर बालकृष्ण राव और अमृतराय के संयुक्त संपादन में अर्द्धवार्षिक 'हंस' में उनकी कविताएँ मुक्तिबोध सहित अनेक प्रमुख कवियों के साथ छपी थीं। बड़ी-सी छतनार दाढ़ी वाला उनका चित्र आज भी स्मृति में बसा है। और आकर्षण का एक सहज कारण यह भी था कि वे तब युवा मार्क्स की तरह लगते थे।

थोड़ा आगे चलकर, उनकी पुस्तक 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद' मेरे हाथ लगी। तब भी मेरी यह कोशिश रहती थी कि प्रेमचंद पर कुछ भी लिखा जाए मुझे पढ़ने को मिले। यह जानकर और भी सुखद आश्चर्य हुआ कि वह वस्तुतः उनके शोध-कार्य का ही प्रकाशित रूप था। उस दौर में जिन कुछेक शोध-प्रबंधों ने अपनी मौलिकता और उत्कृष्टता की छाप छोड़ी थी; वह भी उनमें से एक था।

प्रेमचंद के अपने मूल्यांकन में महेन्द्र भटनागर उन आलोचकों से सहमत नहीं थे जो अपनी सौष्ठववादी एवं रीतिवादी कला-दृष्टि के कारण ही प्रेमचंद को दूसरी श्रेणी का लेखक मानकर उनका अवमूल्यन करते थे। बाद में तो प्रेमचंद के अवमूल्यन की इस मुहिम को बाक़ायदा एक आंदोलन की तरह चलाया गया। संपादक शिवदान सिंह चौहान के संपादन में सिर्फ़ छह अंक निकलने के बाद जब 'आलोचना' धर्मवीर भारती-मंडल के संपादन में आयी; प्रेमचंद-विरोधी इस अभियान के साक्ष्य आज भी इतिहास में दर्ज़ देखे जा सकते हैं। तब इस व्यापक अभियान के विरुद्ध लगभग अकेले खड्ग-हस्त होकर रामविलास शर्मा प्रेमचंद के पक्ष में खड़े होकर लड़ रहे थे।

प्रेमचंद पर उनकी दूसरी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' वस्तुतः इसी युग का एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। प्रेमचंद पर महेन्द्र भटनागर के काम को वस्तुतः इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में ही देखा जाना चाहिए। अभी पिछले दिनों उनका ग्रंथ 'सामयिक परिदृश्य और कथा-स्रष्टा प्रेमचंद' ('प्रेमचंद-समग्र') आया है। इसमें उनकी पहली पुस्तक भी समाहित है। स्पष्ट है कि इन पचास से भी अधिक बरसों में प्रेमचंद के प्रति महेन्द्र भटनागर की दिलचस्पी बनी रही है।

प्रेमचंद के प्रसंग में महेन्द्र भटनागर इस बहस से मुँह छिपाने की कोशिश नहीं करते कि प्रेमचंद गाँधीवादी थे, मार्क्सवादी थे या फिर हिंदूवादी थे। उनका मानना है कि प्रेमचंद वस्तुतः तुलसीदास की तरह ही लोकहितवादी लेखक थे। अपने इस गुण के कारण ही उन्होंने उत्तर-प्रदेश की जनता के बीच तुलसी की तरह ही अपनी गहरी पैठ बनायी। अपनी कुछ स्थापनाओं और ख़ास तौर से वर्णाश्रमवादी व्यवस्था के उत्कट समर्थन के कारण जहाँ तुलसीदास जब-तब विरोध और आक्रोश के शिकार हुए, प्रेमचंद अपने आलोचकों और विरोधियों को वैसी छूट नहीं देते। महेन्द्र भटनागर प्रेमचंद को एक मानवतावादी लेखक के रूप में प्रतिष्ठित और स्थापित करते हैं। प्रेमचंद के प्रसंग में वे किसी चयनवादी दृष्टि का विरोध करके उनकी व्यापक स्वीकार्यता के लिए संघर्ष करते हैं। न गाँधीवाद मानव-विरोधी दर्शन है, न ही मार्क्सवाद। अपने समय और सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों एवं गतिविधियों के दौर में प्रेमचंद जैसा सजग लेखक उन हलचलों की अनदेखी नहीं कर सकता था। जाति, सम्प्रदाय और वर्ण से ऊपर उठकर प्रेमचंद सब कहीं शोषण और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। वे सब कहीं मनुष्य के आधारभूत सद्भाव के पक्ष में खड़े लेखक हैं।

प्रेमचंद को हिंदूवादी लेखक सिद्ध करने के उत्साही आलोचक कमल किशोर गोयनका जब महेन्द्र भटनागर से प्रश्न करते हैं कि क्या वे प्रेमचंद की 'कफ़न' को सर्वश्रेष्ठ कहानी मानकर उनकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

299 कहानियों को छोड़कर सिर्फ़ 'कफ़न' को ही आधार बनाकर प्रेमचंद का मूल्यांकन करना चाहेंगे, महेन्द्र भटनागर प्रेमचंद के प्रति किसी चयनवादी दृष्टि का स्पष्ट विरोध करते हैं।

वे प्रेमचंद के समग्र मूल्यांकन को ही उनका वास्तविक मूल्यांकन मानते हैं। वे मानते हैं कि किसी चयनवादी दृष्टि से किसी लेखक का सम्यक् मूल्यांकन असंभव है। अन्य बड़े लेखकों की तरह ही प्रेमचंद का भी वास्तविक मूल्यांकन उन्हें समग्रता में देखकर ही संभव है, जिसमें लेखक के सामाजिक-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य की एक विशिष्ट भूमिका होती है। प्रेमचंद को जब एक मानवतावादी लेखक के रूप में स्थापित किया जाता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रेमचंद अव्यावहारिक आदर्शवादी, जड़ नैतिकतावादी या थोथी जीवन-दृष्टि से सरोकार रखने वाले लेखक थे। 'कफ़न' के प्रसंग में गोयनका को उत्तर देते हुए महेन्द्र भटनागर ठीक ही कहते हैं कि मार्क्सवादी चेतना से 'कफ़न' को जोड़कर देखे जाने पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। और दूसरे बड़े लेखकों की तरह प्रेमचंद ने विधिवत् मार्क्सवाद पढ़कर अपना लेखन नहीं किया। उनका मार्क्सवाद वस्तुत: मानवतावाद की ही फलश्रुति है। जितना वह सहज रूप से उस परिधि में आ जाता है, वे उसे स्वीकार करते हैं। रचना का सामूहिक एवं समग्र प्रभाव ही उसके विश्लेषण और मूल्यांकन का आधार हो सकता है और होना चाहिए। इतना सुनिश्चित है कि प्रेमचंद गोयनका की तरह मार्क्सवाद के विरोधी लेखक नहीं थे।

हिंदी कथा-साहित्य से संबंधित अपनी पुस्तक 'हिंदी कथा-साहित्य: विविध आयाम' में महेन्द्र भटनागर ने समय-समय पर लिखित अपने लेखों को संकलित किया है। यह सुखद संयोग है कि कभी मध्यप्रदेश ने ही पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के रूप में हिंदी कथा-साहित्य के पहले गंभीर और व्यवस्थित आलोचक हमें दिये। 'हिंदी कथा-साहित्य' और 'विश्व-साहित्य' जैसी उनकी पुस्तकें पचास के दशक में ही प्रकाशित हुईं। बख्शी जी की आलोचना बेहद पठनीय तो है ही, वह साहित्य के आस्वाद पर भी बल देती है। बख्शी जी ने जो काम जहाँ छोड़ा था एक तरह से महेन्द्र भटनागर ने उसे ही आगे बढ़ाया है। रचना की पठनीयता को वे उसकी सफलता की बुनियादी शर्त मानते हैं। अपनी दुर्बोधता एवं दुरूहता के कारण, भले ही उसमें निहित गंभीर दार्शनिक आशयों अथवा वैसे ही जटिल शिल्प के कारण, यदि रचना पढ़ी ही नहीं जायेगी तो उसमें निहित इन सारी चीज़ों का अर्थ ही क्या रह जायेगा? अभी पिछले दिनों मैं 'कहानी' की सन् 1954 की फ़ाइल देख रहा था। उसके नवम्बर अंक में महेन्द्र भटनागर का एक लंबा पत्रा छपा है जो सामूहिक रूप से उसके पिछले दस अंकों पर केंद्रित है। उसमें उनकी स्पष्ट धारणा है, 'लेकिन व्यक्ति और समाज सुधार के जोश में आकर कहानी का कहानीपन नष्ट नहीं होने देना चाहिए।' इस पत्र का महत्व इस दृष्टि से भी है कि सन् 1955 के 'कहानी' के ऐतिहासिक महत्व के विशेषांक से यह कुछ ही पहले छपा है।

महेन्द्र भटनागर उन रचनाओं को ही विशेष महत्व देते हैं जिनमें कथानक और कथा-रस का निर्वाह हुआ है। जैनेन्द्र कुमार के 'विवर्त' की इसलिए वे कठोर आलोचना करते हैं; क्योंकि वह दार्शनिकता से बोझिल और अपठनीय है- ख़ासतौर से जैनेन्द्र के ही आरंम्भिक उपन्यासों की तुलना में। रांगेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासों में वे उनके इतिवृत्त-बोध की चर्चा विस्तार से करते हैं और उस दौर में रांगेय राघव को पर्याप्त गंभीरता से लेते हैं-जब एक ओर रामविलास शर्मा और भगवतशरण उपाध्याय जैसे मार्क्सवादी आलोचक उन पर हमला कर रहे थे और दूसरी ओर अन्य लोग उन पर अतिलेखन का आरोप लगाकर उनकी उपेक्षा कर रहे थे। प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवतावाद का जो सूत्र उन्होंने खोजा उसी को आधार बनाकर वे जगदम्बा प्रसाद दीक्षित के 'मुर्दाघर' और सतीश जमाली के 'प्रतिबद्ध' तथा 'तीसरी दुनिया' जैसे उपन्यासों का मूल्यांकन करते हैं। 'मुर्दाघर' के बारे में उनकी टिप्पणी है, 'मनुष्य की जिजीविषा 'मुर्दाघर' का दूसरा नाम है।'

यह प्रसन्नता की बात है कि महेन्द्र भटनागर के आलोचनात्मक साहित्य का, रचनावली के रूप में, दो खंडों में प्रकाशन हो रहा है।

संपर्क :
372 छोटी बमनपुरी,
बरेली-243003 (यू.पी)
मो :-09319838309

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बातचीत

प्रगतिवादी-जनवादी कवि महेन्द्र भटनागर
से प्रद्युम्न कुमार सिंह की बातचीत

प्रद्युम्न कुमार सिंह

बद्दुआ जानी नहीं, पायी किसी की भी दुआ नहा

प्रयोगवादी कविता में अधिकांश प्रयोग हास्यास्पद हैं। प्रयोगवादी कविता जन-साधारण की कविता नहीं।

प्रश्न : आपने आजादी के बाद से अब तक के काव्यान्दोलनों और साहित्यिक विकास व परिवर्तनों को देखा है। आपका रचनाकाल 1941 से प्रारम्भ हुआ, तब से अब तक के इस विहंगम परिदृश्य में आप क्या-क्या परिवर्तन देखते हैं?

उत्तर : जुलाई 1941 में, उच्च-शिक्षा ग्रहण करने हेतु विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर में प्रवेश लिया। उस समय मेरी उम्र 15 वर्ष की थी। महाविद्यालय में विद्वान प्रोफेसरों और साहित्यिक रुचि रखने वाले वरिष्ठ प्रबुद्ध सहपाठियों के सम्पर्क में आया। द्वितीय विश्व-युद्ध और भारतीय स्वाधीनता संग्राम का चश्मदीद गवाह रहा। ग्वालियर के उपनगर मुरार में रहता था; जहाँ ब्रिटिश फ़ौज का अड्डा था। उस तरफ़ अक़्सर निकल जाया करता था। अंग्रेज़ सैनिक और अंग्रेज़ वेश्याएँ सड़क के इर्द-गिर्द नज़र आने पर ख़ून खौल उठता था। अपने मित्रों के साथ मिलकर षड्यंत्र की रूपरेखा बनाता। कवि रघुनाथ सिंह चौहान उन दिनों मेरे घनिष्ठ मित्र थे। हम दोनों साथ-साथ सायकिल पर 'विक्टोरिया कॉलेज' जाते। लगभग 6-7 किलोमीटर दूर। अभिप्राय यह है कि जब मैंने बाहर की दुनिया में प्रवेश किया; समग्र परिवेश राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत था। तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि ने मेरे कवि-व्यक्तित्व को आकार दिया। मेरा छह-वर्ष का लेखन स्वतंत्रता-पूर्व का है; शेष स्वातन्त्र्योत्तर। हिन्दी-काव्यान्दोलनों की दृष्टि से इस युग में चार प्रकार की काव्य-रचना समानान्तर चल रही थी। छायावाद का प्रभाव कम नहीं हुआ था। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी की काव्य-कृतियाँ पाठ्य-क्रमों में निर्धारित थीं। प्रगतिवाद तीव्रता से उभर रहा था। पंत और निराला ने प्रगतिवादी काव्य-धारा को गति दी। इस युग में राष्ट्रवादी काव्यधारा का भी प्रभाव भरपूर था। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर आदि बलिपंथियों को बल पहुँचा रहे थे। इसी युग में, छायावादोत्तर गीति-काव्य की सहज-प्रांजल रचना लोकप्रिय हो रही थी। बच्चन, सुमन, नेपाली मेरे प्रिय कवि थे। प्रगतिवादी कवियों में, पंत और निराला ने ही नहीं; भगवतीचरण वर्मा, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, केदारनाथ अग्रवाल, सुमन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा आदि ने जन-साधारण के सुख-दुख और उनके संघर्ष को वाणी दी। जन-संस्कृति का प्रतिबिम्ब प्रगतिवादी कविता को विशिष्ट और देशज बनाता है। तत्पश्चात् प्रयोगवादी कविता, नयी कविता, और जनवादी कविता प्रमुख रूप से चर्चित रहीं। काव्याभिव्यक्ति के अनेक अभिनव रूप दृष्टिगोचर हुए। संवेदना के साथ, विचारों एवं बौद्धिकता को भी कविता में महत्वपूर्ण स्थान मिला।

प्रश्न : शुरुआती प्रगतिशील कविता और अब की जनवादी कविता में क्या अन्तर देख रहे हैं?

उत्तर : विशेष अन्तर नहीं। प्रारम्भ में प्रगतिशील कविता का क्षितिज अधिक व्यापक था। उसके परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण विश्व था। हिन्दी रचनाकार विदेश की गतिविधियों से प्रभावित होते थे; उन पर लिखते थे। इन दिनों वैसा लगाव दृष्टिगोचर नहीं होता। पूर्व में, सोवियत संघ, चेकोस्लोवेकिया, चीन, उत्तरी कोरिया आदि साम्यवादी देशों के संघर्ष और विकास में प्रगतिशील रचनाकारों की दिलचस्पी रही। इसका कारण, साम्यवादी देशों में हुए बदलाव हैं। चीन की विस्तारवादी नीति है। उत्तरी कोरिया भी विमुख रहा। असहिष्णुता के फलस्वरूप ख़ामोशी बनी रही। हिन्दी/भारतीय जनवादी साहित्य की दुनिया में स्वदेश के सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक जीवन का लोकधर्मी पक्ष प्रमुखता से प्रतिबिम्बित है। उसमें समसामयिक समाज का बड़ा सशक्त और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेरक वर्णन हुआ है, हो रहा है।

प्रश्न : आपके दौर में प्रयोगवाद और रूपवाद का बोलबाला रहा। क्या आप इस दौर से प्रभावित हुए? अगर हुए तो किस रूप में?

उत्तर : कविता में नये-नये प्रयोगों का मैं समर्थक रहा हूँ; लेकिन 'प्रयोगवाद' का नहीं। प्रयोगवादी कविता में अधिकांश प्रयोग हास्यास्पद हैं। प्रयोगवादी कविता जन-साधारण की कविता नहीं।

प्रश्न : मैंने देखा कि आपके गीतों में प्रयोगशीलता है। मनोवैज्ञानिक चिन्तन का भी अक़्स है। भले वह वैचारिक सरोकारों के साथ आया हो। क्या इसे हम प्रयोगवाद का प्रभाव कह सकते हैं?

उत्तर : जी हाँ, प्रयोगशीलता है; किन्तु 'प्रयोगवाद' का प्रभाव नहीं। काव्य में मनोवैज्ञानिक चिन्तन; एक गुण है।

प्रश्न : गीत-नवगीत परम्परा हिन्दी में काफ़ी समृद्ध रही। साठ के दशक ने बड़े नवगीतकार हिन्दी को दिये। लेकिन, साठ के बाद हिन्दी-आलोचना ने गीत-नवगीत को उपेक्षित करना आरम्भ किया। इसके क्या कारण रहे?

उत्तर : इसका कारण बौद्धिकता और वैज्ञानिक प्रगति है। गीत-नवगीत के तत्वों में विचार-तत्व ने भी अपना स्थान बना लिया है। कोरी भावुकता इतनी प्रभावक नहीं बन सकती।

प्रश्न : हिन्दी की अकादमिक आलोचना ने लोकधर्मी वैचारिक लेखन को उसके फार्मेट के आधार पर दोयम दर्ज़े की संज्ञा दी। इसका कारण क्या था? राजनीतिक था अथवा हिन्दी में बढ़ती व्यक्तिवादी पुरस्कारवादी प्रवृत्ति है?

उत्तर : कारण राजनीतिक हैं। पूँजीवादी वर्ग की स्व-अस्तित्व-रक्षा की असफल कोशिश है।

प्रश्न : महेन्द्र भटनागर, हरीश भादानी, कैलास गौतम, गोरख पाण्डेय जैसे बड़े जनवादी गीतकार जो किसी भी पुरस्कृत और सम्मानित कवि से कम नहीं रहे; आख़िरकार इनकी उपेक्षा से साहित्य/ कविता का ही नुकसान हुआ; ऐसा आप मानते हैं?

उत्तर : उपेक्षा बेमानी है। उपेक्षा अधिकतर जानबूझकर की जाती है। कुछ व्यक्तिगत कारणों से। कुछ अनाधिकृत पात्र भी आलोचक बन जाते हैं / बनना चाहते हैं। कुछ आलोचक अनपढ़ होते हैं। कुछ ग़ैर-ज़िम्मेदार। रचनाकार किसी का मुहताज़ नहीं होता। रचना-कर्म हर कोई नहीं कर सकता। उसकी रचना का स्तर उसकी जन्मजात प्रतिभा, उसके संस्कार, उसके अध्ययन-अभ्यास पर निर्भर करता है।

प्रश्न : विचारधारा और प्रतिबद्धता इन शब्दावलियों पर अकादमिक आलोचना का मत है कि जो गीतकार और ग़ज़लकार हैं, वे कला पर अधिक ध्यान देते हैं। लिहाज़ा वे प्रतिबद्ध नहीं होते। क्या आप भी ऐसा मानते हैं?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न : गीत और ग़ज़ल ऐसी विधाएँ हैं; जो कविता को सीधे जनता से जोड़ती है। आज कविता महज़ पाठ्यक्रम की वस्तु हो गयी है। जनता कविता नहीं पढ़ रही। इसका दोष आप किसे देंगे?

उत्तर : दोष, अधिकांश तथाकथित कवियों को। समय की चलनी में कविता को छनने दीजिए। सार बचेगा; थोथा उड़ जाएगा।

प्रश्न : जब प्रलेस का विभाजन हुआ और जलेस नामक लेखक-संगठन बनाया गया उस समय बड़े लेखक जलेस से जुड़ गये थे। यह विभाजन वैचारिक सरोकारों के लिए था कि लेखकीय सरोकारों के लिए कि लेखकों की आपसी राजनीति थी?

उत्तर : अनावश्यक था। वैचारिक सरोकारों से तो कोई वास्ता नहीं।

प्रश्न : आपने बहुत लिखा। हर तरह की काव्य-रचना की। आप पर खूब लिखा गया। फिर भी; बड़े आलोचक आपको महज़ गीतकार मानते रहे। आपको 'कवि' नहीं माना गया। क्यों?

उत्तर : 'महज़ गीतकार' की मान्यता, ऐसा तो नहीं।

प्रश्न : आप एक्टिविस्ट थे, संगठन से जुड़े थे। आपने कभी आलोचना और कविता की इस भेदभावपूर्ण राजनीति के खिलाफ़ आवाज़ उठाई? अगर उठाई तो उसका प्रभाव किस तरह का रहा?

उत्तर : शायद ही कभी।

प्रश्न : आप शिवकुमार मिश्र के पसंदीदा कवि रहे हैं। उन्होंने आपके काव्य-कर्तृत्व पर पर्याप्त लिखा है। उनके साथ आपका कोई संस्मरण है ?

उत्तर : उनके एकाधिक आलेख मेरी काव्य-रचना पर उपलब्ध हैं; जो सम्पादित समीक्षा-पुस्तकों में समाविष्ट हैं। जब नंददुलारे वाजपेयी 'विक्रम विश्वविद्यालय' के कुलपति थे; उनसे उज्जैन में मिलना होता था। वहाँ मैं हिन्दी-विभाग (माधव महाविद्यालय) का अध्यक्ष था। कुछ समय विश्वविद्यालय के 'हिन्दी अध्ययन मंडल' का अध्यक्ष भी रहा। शिवकुमार जी बड़े उत्साहपूर्वक मिलते थे।

प्रश्न : आप आजीवन लेखक-संगठन में रहे और सक्रिय भी रहे। लेखक-संगठन एक लेखक के विकास में कितना योगदान करता है?

उत्तर : लेखक-संगठन में शामिल रहने से रचनाकार सक्रिय और अनुशासित रहता है। प्रतिभाशाली रचनाकार लेखक-संगठन को दिशा देने की क्षमता भी रखते हैं। फलस्वरूप, जब-तब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सैद्धान्तिक विमर्शों का भी उभरना देखा जाता है। लेखक जड़ नहीं होता। इससे विचारधारा का विकास होता है।

प्रश्न : आप सबसे अच्छा गीतकार किसे मानते हैं? आपकी नज़र में कविता और गीत दोनों में फ़र्क क्या है? गीत और कविता में भेद करना कहाँ तक उचित है?

उत्तर : बच्चन, नेपाली, शिवमंगल सिंह 'सुमन', वीरेन्द्र मिश्र, नचिकेता आदि। कविता विषय-प्रधान होती है। उसमें वर्णन की प्रमुखता पायी जाती है। गीत में निहित भावावेश, कला-सौष्ठव, संगीतात्मकता, सहजता-सरलता आदि विशेषताओं से सहृदय आकर्षित-प्रभावित होते हैं।

प्रश्न : आपको 'मानबहादुर सिंह लहक सम्मान' दिया गया है। यह वरिष्ठ लेखकों का सम्मान है। आप पर युवा आलोचक लिख-पढ़ रहे हैं। लम्बी काव्य-यात्रा के बावज़ूद जब आपका नाम अकादमिक आलोचना ने भुला दिया था: महेन्द्र भटनागर का अचानक प्रासंगिक हो जाना, पुनर्चर्चा होना आपको कैसा महसूस हो रहा है?

उत्तर : अनुभव तो सुखद है; किन्तु ऐसा भी नहीं, अप्रासंगिक हो गया! इस संदर्भ में मेरा 'स्व-वृत्त' दृष्टव्य है। प्रचार की दुनिया से सदा दूर रहा। यात्रा-भीरु होने के कारण यात्राएँ करता नहीं। कार्यक्रमों / कवि-सम्मेलनों / गोष्ठियों में भाग लेता नहीं। प्रस्तुति की कला जानता नहीं। जो लिखा चौराहे पर फेंक दिया। जिसे देखना-पढ़ना हो देखे-पढ़े। सामने बैठकर स्व-प्रशंसा सुनना अच्छा नहीं लगता! ग्लानि होती है। सचाई यह है :

ज़िंदगी में याद रखने योग्य कुछ भी तो हुआ नहीं
बद्दुआ जानी नहीं, पायी किसी की भी दुआ नहीं
अजनबी-अनजान अपने ही नगर में मूक हम रहे
शत्रुता या मित्रता रख कर किसी ने भी छुआ नहीं!

संपर्क :
महेन्द्र भटनागर
मो :-08109730048
(ग्वालियर, एम.पी)

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

प्रद्युम्न कुमार सिंह
मो :-08858172741
(बांदा, यू.पी.)

---

with us you are secure
www.z2plus.co.in

With Best Compliments from

Shiv Bahadur Singh
(Director Operation)

Z2plus Placement consultant

Z2plus placement
&
Security Agency Pvt Ltd.

Regd office : 310, C.R.Avenue
Kolkata-700006
Mobile no- 9230532520
Telephone No-033-6451-3143
Email ID: hrz2plus@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महेन्द्र भटनागर की कविताओं का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन

उमाशंकर सिंह परमार

नब्बे के पार पहुँच चुके वरिष्ठ गीतकार / कवि महेन्द्र भटनागर की कविताओं से साक्षात्कार करना हिन्दी कविता के अतीत में दाखिल होना है। लगभग नौ दशकों से तपती काव्य-संवेदना की जमीन का साक्षात्कार करना है। महेन्द्र की कविताओं में ताप और आग के साथ अनुभूतियों की सघन एवं पारदर्शी आभा है। एक ऐसी आभा जहाँ भाव विचारों पर प्रभावी हो जाते हैं। भाव कविता और व्यक्ति की चेतना बन जाते हैं। भाव व्यक्ति के विकास की धारा बन जाते हैं। यह भाव ऐसी धारा है जिसके हर खण्ड में जीवन के अनुभवों का विराट समवाय है। अनुभव-धारा और भाव-धारा एक-दूसरे के पूरक हैं, परस्पर गुँथे हैं। भाव निराधार या काल्पनिक नहीं है, अनुभव प्राणित है। महेन्द्र अपने समय को बखूबी पहचानते हैं इसलिए उनकी कविता में भाव जीवन की कठिनाइयों का उत्पाद है, जिसके मूल में मनुष्य की विवशता और असहायता है। जब व्यक्ति अपने परिवेश और समय की आदतों से टकराता है, पराजित होता है, थकता है तब वह कल्पना की ओर कदम बढ़ाता है। वह यथार्थ की झुंझलाहट और पीड़ा को अपनी कल्पना में स्पेस देता है। वह कल्पना में रमता नहीं है, आत्म-साक्षात्कार करता है। वह अपने को पहचानता है, अपनी नियति से टकराते हुए अपनी छिनी हुई भाषा की प्राप्ति करता है। ऐसी स्थिति में कवि अकेला नहीं होता है न उसकी भाषा अकेले कवि की भाषा होती है। वह युग का प्रतिनिधि होता है, वह भाषा युग की भाषा होती है। उसका काव्य युग का काव्य होता है। यही कारण है महेन्द्र भटनागर की कविताएं किसी एक विज़न और लहजे की नहीं हैं। उन्हें किसी विशेष खाँचे में नहीं फिट किया जा सकता है, जैसा कि सबके साथ होता है। यह हिन्दी कविता की कमी है कि कोई भी बड़ा कवि हो उसके साथ उसकी शिल्पगत पहचान जुड़ी होती है। एक विशिष्ट कोटि का ठप्पा उसकी पहचान कराता रहता है। वह कलावादी है कि लोकधर्मी है ; जनवादी है कि रूपवादी है ; प्रगतिशील है कि प्रयोगवादी है ; इन चेतनाओं की जानकारी भी उस कवि पर लगी मुहर से होती है। अधिकांश कवि भी इस पहचान से मुक्त होने की कोशिश नहीं करते। जिस तरह की मुहर उनकी पहचान में लग गयी वह जीवन भर उस दायरे को नहीं तोड़ते हैं। ऐसी स्थिति में कविता एकरसता की तरफ बढ़ जाती है और कवि किसी विशेष दशक का कवि होकर अपने आपको अतीत की स्मृतियों में बन्द कर देता है। महेन्द्र भटनागर के साथ ऐसा नहीं है। उन्हें किसी एक चेतना के नजरिये से परखना उनके विपुल काव्य की अवहेलना होगी। वह पिछले दस दशकों से हिन्दी कविता में चल रहे विभिन्न आन्दोलनों और प्रवृत्तियों को अपनी कविता में समाहित करते रहे हैं। आजादी के बाद की हिन्दी कविता की सभी विशेषताओं को समाहित करने वाले वह एकमात्र और अकेले कवि हैं। आजादी के बाद हिन्दी कविता की प्रवृत्तिगत विशेषताएं क्या रहीं, यह महेन्द्र भटनागर को पढ़कर समझा जा सकता है।

आज भाषा और अनुभव मुहावरेबाजी में परिवर्तित होते जा रहे हैं। नकली व रेडीमेड संवेदनाओं ने कविता का अतिक्रमण कर लिया है। मीडिया की भाषा हमारी काव्य-भाषा हो चुकी है और कविता गद्य जैसी होकर अपने आपको 'कविता' होने की पहचान से मुक्त करती जा रही है। ऐसे कठिन समय में महेन्द्र भटनागर जैसे वरिष्ठ कवि को पढ़ना सुकून देता है। इनकी कविता में जितनी काव्य-परकता है, शास्त्रीयता है, सौन्दर्यबोध व वैयक्तिकता है, उतनी ही विचारधारा है और युग का दबाव है। उनकी कोई भी कविता एक-दूसरे से जुड़कर नहीं उपस्थित होती है। विचारधारा को छोड़ दिया जाए तो न ही वह एक चेतना से आबद्ध है, लेकिन सभी को साथ मिलाकर पढ़ने से जो विहंगम परिदृश्य उपस्थित होता है, वह एक नया बोध देता है। वहाँ अपने प्रति और समय के प्रति एक आवेग प्राप्त होता है। एक रवानी प्राप्त होती है, समय की गुजरती और प्रवाहशील धारा प्राप्त होती है, जहाँ पर तमाम चीजें, तमाम आन्दोलन, तमाम अवधारणाएं एक-दूसरे से टकराती हुईं, परस्पर धकियाती हुईं, एक जबरदस्त प्रवाह में बहती चली जाती हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College of Education Bantalab Jammu

महेन्द्र भटनागर की कविताओं में कल्पना का व्यापक संसार प्राप्त होता है। उनका लेखन 1941 से प्रारम्भ हुआ था। यह दौर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का समकालीन दौर था। मगर अधिकांश कवि इससे पूर्व की धारा छायावाद से प्रभावित थे। युवा महेन्द्र की प्रारम्भिक कविताओं में छायावाद का प्रभाव देखा जा सकता है। इन कविताओं में संवेदना और विधान पर छायावादी कल्पनाजीविता का प्रभाव है। विशेषकर प्रकृति और प्रणय सम्बन्धी कविताओं में। मगर एक विशिष्ट बात जो महेन्द्र को छायावाद से अलग करती है वह है कल्पना में अनुभूति की प्रधानता। कल्पना जब अधिभौतिक या अजागतिक होती है तब उसमें संवेदनशीलता का अभाव हो जाता है। जब कल्पना अनुभव के साथ हिलमिल कर उपस्थित होती है तो कवि की कल्पना अनुभव जगत की विनिर्मिति जैसी प्रतीत होती है और वह पाठक के साथ बड़ी सहजता से तादात्म्य बैठा लेती है। वैसे कल्पना भी अपने आप में एक बड़ी शक्ति है। इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता है। चाहे प्रत्यक्ष सौन्दर्य हो या परोक्ष सौन्दर्य-कल्पना ही उसे ग्राह्य और रुचिकर बनाती है। कल्पना में अनुभव के समायोजन का छायावादी अर्थ है कि कवि अनुभव तो प्रत्यक्ष जगत का करता है मगर प्रतिष्ठा शाश्वत जगत के अनिवार्य सत्य की कर रहा होता है। लेकिन इस अर्थ को महेन्द्र की कविताओं से कोई मतलब नहीं है। महेन्द्र अनुभव भी प्रत्यक्ष का करते हैं और प्रतिष्ठा भी जागतिक सत्य की करते हैं, जबकि छायावादी कवि अनुभव प्रत्यक्ष का करते हैं और प्रतिष्ठा अतीन्द्रिय सत्ता की करते हैं। यह इसलिए हुआ कि छायावादी कवि कल्पना को एक परोक्ष अनुभूति मानते हैं। वह इहलौकिक जगत के अतिरिक्त भी 'कल्पनालोक' के पारलौकिक जगत को महत्व देते हैं। इसलिए उनकी अनुभूति में सूक्ष्म के प्रति आग्रह अधिक है। उनके लिए कल्पना का आशय सूक्ष्म कण है। इस बात को पन्त ने रजतकण की भूमिका में स्वीकार किया है। महेन्द्र की कविताओं में सूक्ष्म के प्रति आग्रह नहीं है क्योंकि वह विचारों से प्रगतिशील हैं। अस्तु, वास्तविक जगत ही उनका विधायक जगत है। कोई परोक्ष जगत नहीं है, न कोई परोक्ष अनुभूति है। अनुभूति का अस्तित्व जागतिक है और कल्पना इसी अनुभूति की पैदाइश है। इस सन्दर्भ में महेन्द्र छायावाद की अपेक्षा अंग्रेजी के कवि शेली के अधिक निकट हैं। शेली ने कहा था कि ''कल्पना वस्तु जगत से प्राप्त अनुभवों को सुव्यवस्थित कर पुनः सृजन करती है।'' इस जागतिक कल्पनाबोध का एक उदाहरण देखिए, जो उनके कविता संग्रह 'अनुभूत क्षण' से लिया गया है, जिसका शीर्षक है 'अनुभव सिद्ध'। इस कविता में अतीन्द्रिय सत्ता व अपरोक्ष अनुभूति की सम्भावना थी मगर कवि की विधायनी कल्पना या अनुभवजन्य कल्पना का प्रभाव उन्हें ऐसा नहीं करने देता है -''उतरेंगी / गगन से सूर्य किरणें / नृत्य की लय पर / धवल मुस्कान भर-भर / तय है कि / संघातक दु:सह अँधेरी / रात गुजरेगी / कुचक्रों से घिरा आकाश / बिफरेगा / आहत जिन्दगी इन्सान की / सँवरेगी।'' आसमान से प्रकाश का उतरना और घातक अन्धेरे का विनाश होना; साथ ही इन्सान की जिन्दगी सँवर जाना। कविता का प्रथम खण्ड कल्पना है, कल्पना सौन्दर्य का सृजन कर रही है। मगर अन्धेरे की चर्चा करना और किरण द्वारा अन्धेरे का नाश करना इस कविता को मनुष्यता से जोड़ देता है। इस कविता का अन्तिम कहन किसी अज्ञात या सूक्ष्म सत्ता का विधान नहीं है, वह किसी अलौकिक अनुभूति व शाश्वत सत्य की प्रतिष्ठा नहीं करती है। अपितु कविता की स्थापना आम आदमी के दुख-दर्द हैं, युग की पीड़ा और युग की आदतों का प्रतिरोध है जिसका कवि अनुभव कर रहा है। यही है प्रत्यक्ष मूलक जागतिक कल्पना या अनुभवभारित कल्पना। इस कल्पना का सौन्दर्यबोध और विजन तीनों छायावादी सौन्दर्य, बोध और विजन से पृथक हैं। कल्पना का यही वास्तविक पक्ष है। महेन्द्र की कविताएँ भाव-प्रवणता एवं आवेग से युक्त होने के बावजूद कहीं भी वास्तविक सौन्दर्य व अनुभूति से अलग नहीं होती हैं। वह जगत के अनुभव से अनुभव ग्रहण करता है और अनुभव से संवेदित होता है। तदुपरान्त अपने अनुभवों को नग्न व कुत्सित यथार्थ की तरह प्रस्तुत न करके वह कल्पना द्वारा स्वस्थ बनाकर प्रस्तुत करता है। वास्तव में कवि यदि सही अर्थों में सजग कवि है तो वह सत्य को कल्पना द्वारा नयी आकृति देता है। उस आकृति में वास्तविकता का रंग भरता है जिससे जीवन की लय उत्पन्न होती है। कल्पना का यह अनुप्रयोग और कल्पना की यह सैद्धांतिकी प्रगतिशील कवियों की रही है। अस्तु महेन्द्र की कल्पना को हम प्रगतिशील कल्पना कह सकते हैं क्योंकि वह जीवन विधायिनी कल्पना है।

महेन्द्र भटनागर की कविताओं को अब तक गीत और प्रगीत के नजरिए से परखा गया है। इस प्रक्रिया में अधिकांश आलोचक शार्ट कट का सहारा लेते हैं। यदि गीत और प्रगीत पर बात होती है तो गीत के निर्धारित उपलक्षणों को कविता पर आजमाने लगते हैं। साथ ही लयपरकता, संगीतात्मकता, भावुकता, संक्षिप्तता जैसे उपलक्षण रखकर उदाहरण रख दिए जाते हैं। यह अकादमिक पद्धति है। अधिकांश प्रोफेसर इसी टेक्निक का सहारा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेते हैं जबकि गीत-प्रगीत और कविता जिसमें जीवन राग हो, जीवन बोध हो, जीवन का आवेग हो, उनका मूल्यांकन हमें शास्त्रीय रूप में करना चाहिए। इससे शास्त्रीयता का विस्तार होता है और काव्य रूढ़ियों के प्रति एक नए नजरिए का विकास होता है। सौन्दर्यबोध किसी भी कविता का ज़रूरी तत्व है। यह बात दीगर है कहीं अभिव्यक्ति का सौन्दर्य होता है तो कहीं वस्तु का सौन्दर्य होता है, कहीं अनुभव का सौन्दर्य होता है तो कहीं अज्ञात अज्ञेय का गैर-आनुभाविक सौन्दर्य होता है। सौन्दर्यबोध से कवि की रचना-प्रक्रिया और उसकी प्रतिबद्धता का पता चलता है। यह सर्वमान्य है कि सौन्दर्य काव्य का ही नहीं अन्य सभी ललित कलाओं का भी जरूरी उपादान है। महेन्द्र भटनागर सौन्दर्य के प्रति सजग और सचेत हैं। वह सौन्दर्य को नैसर्गिक स्वरूप में ही स्वीकार करते हैं। निराला की तरह, निराला की कविता 'जूही की कली' पर जब विवाद बढ़ा तो उन्होंने सौन्दर्यशास्त्र का विश्लेषण किया। अपनी किताब 'प्रबन्ध प्रतिमा' में उन्होंने सौन्दर्य की विहंगम चर्चा की है और कहा है कि 'जूही की कली' का सौन्दर्य अविभाज्यता में नहीं, उसकी सम्पूर्णता में है। वह नैसर्गिक सौन्दर्य है, जबकि अन्य छायावादी कवि आत्मनिष्ठ सौन्दर्य पर बल देते थे और सौन्दर्य का स्रोत ईश्वर को मानते थे। महेन्द्र इस सन्दर्भ में निराला के निकट हैं। इसी चेतना का विस्तार कुछ समय बाद त्रिलोचन 'सहज सौन्दर्य' के रूप में करते हैं। नैसर्गिक सौन्दर्य और सहज सौन्दर्य में कोई भेद नहीं है, दोनों एक हैं। सौन्दर्य शास्त्र के समस्त भेद यथार्थ पर टिके हैं। यथार्थ के तीन भेद होते हैं। पहला है आभासी यथार्थ, दूसरा नग्न यथार्थ, तीसरा वास्तविक यथार्थ। नग्न यथार्थ का सौन्दर्य प्रगतिवादी मनोवैज्ञानिक कविताओं में प्राप्त होता है। राजकमल चौधरी, श्री राम परमार, जगदीश चतुर्वेदी इस बोध के प्रतिनिधि कवि हैं। आभासी यथार्थ में कल्पना और स्मृति का महत्व और उसका योग अधिक रहता है। कवि अपनी व्यंजना में ऐसे उपादानों का प्रयोग करता है कि जगत विलुप्त हो जाता है और अवास्तविक सत्ता प्रकाश में आ जाती है। ऐसी कविताएं अधिकतर अद्वैतवादी दर्शन की अभिव्यक्ति होती हैं या फिर अपने अतीत की खूबसूरती के प्रति, अतीत की संरचनाओं के प्रति अतीव सम्मोहन प्रदर्शित करती हैं। वास्तविक यथार्थ को कल्पना और कला के साथ परिष्कृत कर प्रस्तुत करना सौन्दर्य का नैसर्गिक पक्ष है। इसी को सहज सौन्दर्य कहते हैं। रामचरितमानस में सीता का सौन्दर्य, सरोज-स्मृति में सरोज का सौन्दर्य सहज सौन्दर्य है। त्रिलोचन में प्रकृति का सौन्दर्य वास्तविक और सहज सौन्दर्य है। महेन्द्र भटनागर सहज बोध और सहज सौन्दर्य के कवि हैं। जब वह प्रकृति के अभिराम दृश्यों और स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं या प्रणय का भाव विधान करते हैं तो मानवीय गरिमा और मर्यादा के साथ-साथ कवि के कल्पना-संसार का वास्तविक बिम्ब निर्मित होता है। अपनी ऐसी कविताओं में वह त्रिलोचन के निकट दिखते हैं। उनकी एक कविता मुझे याद आ रही है 'उमंग'। यह कविता 'जीने के लिए' संग्रह की है जो कविता गंगा के तीसरे खण्ड में संग्रहीत है। इस कविता में प्रकृति का मानवीयकरण देखने लायक है। यहाँ सबसे खास बात यह है कि कुछ भी अलौकिक नहीं है, जो भी है वास्तविक है। इस जगत में हम सब अनुभव करते हैं -''बार बार / द्वार थपथपा रहा / समय असमय / किस कदर उतावला पवन / दूर पास / खेत हाट चौक में / अधीर / जान बूझ / भीग भीग / थरथरा रहा / प्रिया बदन।'' इस बिम्ब में हवा द्वारा भिगाने और उसके कार्य व्यापारों का चित्रण किया गया है। कल्पना है। भाव है। मानवीयकरण है। फिर भी कहीं भी अलौकिकता नहीं है। सब कुछ वास्तविक है। छायावादी कवि इस स्थिति में आत्मनिष्ठ हो जाता है, जिससे वह इस बोध का श्रेय ईश्वर को देने लगता है। यहाँ पर चूँकि आत्मनिष्ठता नहीं है। कवि ने कल्पना को उपादान बनाया है। वास्तविक यथार्थ का पुनः सृजन किया है। इसलिए इस बोध को हम सहजबोध कहते हैं। महेन्द्र भटनागर की सभी कविताओं में वास्तविक और सहज सौन्दर्य के ही दर्शन होते हैं।

कल्पना और कल्पनाजनित वास्तविक बोध महेन्द्र की कविताओं का मुख्य कलात्मक स्थापत्य है। इस कला को 'कलावाद' नहीं कहा जा सकता है, केवल कला कहा जाता है। यदि कला कविता को उसके विषय व सरोकारों से विरत करती है तो कला कलावाद में तब्दील हो जाती है। रूपवादी कवियों ने अपने कला विधान द्वारा सौन्दर्य को असहज बनाया है, उनका ध्येय कला है, विचार नहीं है। मगर महेन्द्र कलावादी नहीं थे, प्रगतिशील थे। अस्तु, एक भी कविता ऐसी नहीं है जहाँ उनकी कला और कल्पना विचारों का क्षय कर रही हो। आहत युग नामक संग्रह की 'हॉकर' कविता में कला विधान देखिए और बताइए, यह विधान क्या वास्तविकता का क्षय है? ''यह क्या / रोज-रोज / तर-बतर खून से / अखबार फेंक जाते हो तुम / घर में मेरे।'' अखबार का खून से तर-बतर होना एक कलात्मक प्रयोग है। यदि यह कलात्मक प्रयोग न होता तो कवि का अपने समय की घटनाओं पर वाजिब गुस्सा कैसे व्यक्त होता? इस तरह के कलात्मक प्रयोगों से महेन्द्र भटनागर की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविताएं भरी पड़ी हैं। वह सपाटबयानी के कवि नहीं हैं। सपाटबयानी का उनकी कविताओं में अभाव है। यह अभाव इसलिए है कि वह मूल रूप में गीतकार हैं। गीतकार कभी भी सपाटबयानी की कविता नहीं लिखता है। लय और सपाट कथन परस्पर विरोधी होते हैं। जहाँ पर लय होगी वहाँ सपाट कथन नहीं होगा। लय विहीनता ही सपाट कथन की पहचान कराती है। महेन्द्र भटनागर की कविताओं में और उनके कलात्मक अनुप्रयोगों मसलन कल्पना, सौन्दर्यबोध, बिम्ब, प्रतीक, वक्र-कथन आदि में भी विचारधारा और सरोकारों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। आलोचकों में यह धारणा रही है कि सौन्दर्य और कल्पना के कुशलतम प्रयोगों और विचारों में विपरीत सम्बन्ध होता है। त्रिलोचन और महेन्द्र भटनागर की कविता इस कथन का तोड़ हैं। इनकी कविताओं को पढ़ते हुए बार-बार मेरे मन में यह विचार आता है कि कवि ने अपने समूचे व्यक्तित्व को अपनी कविता में उड़ेल दिया है। उनका व्यक्तित्व छायावादोत्तर कवि का व्यक्तित्व है इसलिए वह अपने समय की मूल चेतना प्रगतिवाद से जुड़ चुके थे। न केवल जुड़े थे अपितु, प्रगतिशील आलोचनाएं भी लिखी हैं। इसलिए वह सौन्दर्य और कल्पना बोध में छायावाद की बजाय त्रिलोचन के अधिक निकट दिखाई देते हैं। उनकी किताब 'राग सम्वेदन' में उनकी भावुकता और कलात्मकता का जमीनी विधान उनकी वैयक्तिक चेतना का मूर्तिकरण है। इस किताब में आम पाठक का यह भ्रम खंडित हो जाता है कि भावुकता और विचारधारा परस्पर विरोधी हैं। जरूरी नहीं कि जहाँ भावुकता हो, वहाँ कल्पना का भी समावेश हो। महेन्द्र के लिए कल्पना महज एक औजार है, वह ध्येय नहीं है। जब उसकी जरूरत होती है तब वह उसका प्रयोग करते हैं। यदि वास्तविक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति बगैर काल्पनिक उपादानों के हो रही है तो महेन्द्र कल्पना का परित्याग भी कर देते हैं। उनकी एक कविता है -'होगा कोई'। यह कविता कल्पनाविहीन है मगर रागविहीन, विचारविहीन और भावविहीन नहीं है। यह कविता कविता गंगा के तीसरे खण्ड में है - ''एक आदमी / झुका-झुका / निराश / दर्द से कराहता हुआ / तबाह जिन्दगी लिए / गुजर गया / एक आदमी/ झुका झुका / हताश / चोट से लहूलुहान / चीखता हुआ / पनाह माँगता / गुज़र गया।'' इस कविता में प्रबल भावावेग है, मगर कल्पना और कला नहीं है। इस कविता में बाह्य उपादानों की जरूरत नहीं है। यहाँ वास्तविक यथार्थ ही अपना सौन्दर्य अभिव्यक्त करने में सक्षम है। जहाँ पर यथार्थ स्वयं सक्षम होता है वहाँ किसी बाह्य उपादान की जरूरत नहीं होती है। यदि इस कविता में वाह्य उपादान होते तो इस कविता का सौन्दर्य नष्ट हो जाता और कवि जिस पीड़ित व्यक्ति के प्रति रागात्मक संवेदना दिखा रहा है, वह भी नकली प्रतीत होती। सहज सौन्दर्य के कवि की यह विशेषता होती है कि वह अपनी कविता के केन्द्र में कल्पना और कला की बजाय यथार्थ को रखता है। जबकि आभासी सौन्दर्य को पसंद करने वाले कवि कल्पना और कला को कविता के केन्द्र में रखते हैं। उनका लक्ष्य कल्पना और कलात्मक सौन्दर्य के लिए कला होता है। वास्तविकता से उनकी कोई डायरेक्ट आत्मीयता नहीं होती है। महेन्द्र भटनागर का ध्येय और काव्य सौन्दर्य वास्तविकता है। इसलिए वह वास्तविकता के आधार पर कला और सौन्दर्य के उपागमों का प्रयोग करते हैं। यही काम त्रिलोचन ने भी किया है।

महेन्द्र भटनागर की कविताओं का सौन्दर्यपक्षीय अध्ययन करते समय यह बात कही जा सकती है कि वह केवल भाषा के क्लासिकल विधानों का ही प्रयोग नहीं करते हैं। अपितु, विभिन्न कलाओं ललित कलाओं का तात्विक मिश्रण भी करते हैं। काव्येतर कलाओं का सम्मिश्रण करना उनकी एक विशिष्ट पहचान है। यही गुण छायावादी कविता में रहा है। जब छायावादी काव्य के स्वच्छन्दतावादी गुणों पर बात होती है तब काव्येतर कलाओं के सम्मिश्रण को एक बड़ी विशिष्टता के रूप में चिन्हित किया जाता है। महेन्द्र की प्रेम कविताओं में इस विशिष्टता को देखा जा सकता है। अपने भावों की व्यंजना हेतु वह केवल 'कथन' का सहारा नहीं लेते हैं। जब वह प्रेम के विस्तार, उसके फलक, उसके आवेग व प्रवाह पर बात करते हैं तो बाह्य प्रकृति से बहुत सारे उपादान प्रस्तुत कर देते हैं। यह उपादान भौतिक होते हैं। अनुभव गम्य होते हैं। छायावादी कविता में भी उपादानों का प्रस्तुतीकरण है, वह भी प्रकृति व अन्य अप्रस्तुत का प्रस्तुतीकरण करते हैं, मगर छायावादी कवि अपनी दार्शनिक चेतना की वजह से उसे आधिदैविक या आधिभौतिक बना देते हैं। वह उपस्थित को अनुभव के दायरे में नहीं रखते हैं। उसे कल्पनाश्रित कर देते हैं। महेन्द्र भटनागर इन उपादानों को भौतिक रखते हैं। वह अनुभव से कुछ भी पृथक नहीं रखते हैं। उनके कविता-संग्रह मेरे द्वारा संपादित 'कविता पथ' में ऐसी बहुत सी कविताएँ हैं जो अपने भौतिक आधार व भौतिक विधान के कारण अधिकाधिक भाव व्यंजना में सहायक हैं, जबकि छायावादी व्यंजना भौतिक कम है, दैविक अधिक है। देखिए महेन्द्र की एक कविता जो 'कविता पथ' संग्रह से ली गयी है। कविता का शीर्षक है 'ज्योति कुसुम'- ''फूल ही / बस फूल की रे /एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हँसती खिलखिलाती/ वायु और आँधियों से / काँपती हिलती सिहरती /यह लता है यह लता है।'' इस कविता में ज्योति को पुष्प जैसा दिखाया गया और अन्त में प्रकाश को लता बताकर मानवीयकरण का संधान किया गया है। यहाँ पर प्रकाश में अज्ञात रहस्यवाद की अपार सम्भावनाएं थीं। प्रकृति में तब्दील होने के बाद तो यह सम्भावना और बढ़ जाती है, लेकिन कवि द्वारा बाह्य उपादानों का समन्वय इस तरह से किया गया है कि लता भी कोमल लजीली स्त्री की तरह दिखाई देने लगती है। इस कविता में श्रव्य और चाक्षुज उपादानों को परस्पर मिला दिया गया है। स्तब्धता श्रव्य है तो देखना चाक्षुज दोनों का आमेलन मूर्ति दर्शन की तरह मन को सन्तुष्ट करती है। चाक्षुज और श्रव्य दोनों अवस्थितियाँ केवल मूर्तिकला में पाई जाती हैं। मेरे कहने का आशय है कि सौन्दर्य अभिवृद्धि के लिए महेन्द्र की कविताएँ केवल काव्यात्मक व काव्यशास्त्रीय प्रक्रियाओं का सहारा नहीं लेतीं अपितु अन्य काव्येतर कलाओं का भी प्रभाव ग्रहण करती हैं। इस गुण को कविता में उपस्थित होने का एक मात्र कारण है कि महेन्द्र का विषय-विस्तार और समय-विस्तार दोनों व्यापक है। विषयों की अधिकता और काव्य समय की सीमा के कारण वह अपने ज्ञान का रचनात्मक प्रयोग करने की कला जानते हैं। यह प्रतिभा बहुत कम कवियों में देखने को मिलती है। अस्सी के दशक में शायद ही कोई कवि इस गुण में इनकी समता प्राप्त कर सके। गद्य में इस प्रतिभा का प्रयोग हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्धों और उपन्यासों में अपने अध्ययन का रचनात्मक प्रयोग खूब किया है। महेन्द्र की उन कविताओं जिनमें राजनय और अस्मिताओं के मुद्दों का समावेश है, इस प्रतिभा का कुशलतम प्रयोग देखा जा सकता है। वह जब दलित, स्त्री, मजदूर, किसान और आदिवासी समुदाय पर लिखते हैं तब उनकी आत्मीयता देखते बनती है। वह एक दर्शक की तरह नहीं पेश आते, न ही मिथ्या परोपकार जैसी भावना होती है। अस्मिताओं के सन्दर्भ में वह आत्मीयतापूर्ण सहानुभूति का विधान करते हैं। परोपकार में दया या कृपा की भावना होती है और सहानुभूति में करुणा की भावना होती है। कृपा और करुणा में करुणा श्रेष्ठ होती है। कृपा का भाव एक प्रकार का अभिजात्य बोध है जो कृपालु को सर्वशक्तिमान व समर्थ व्यक्त करता है। कृपा भाव से वह उपकार करता है न कि कर्तव्य करता है जबकि करुणा में वह अपनी समर्थता विस्मृत कर पीड़ित के साथ एकाकार हो जाता है। करुणा पर उनकी बहुत सी कविताएँ हैं जिन्हें पढ़कर यही कहा जा सकता है कि कवि अपने समूचे अस्तित्व और बोध के साथ आत्मीय होकर जीता है। महेन्द्र भटनागर की यह आत्मीयता उन्हें लोक की पीड़ाओं से जोड़ती है। वह युग का सीधे साक्षात्कार करते हैं। इसका प्रभाव उनके कलात्मक सौष्ठव और काव्य उपादानों पर भी देखा जा सकता है। वह अमूर्तन के कवि नहीं हैं, वह मूर्तविधान के कवि हैं। अमूर्तन का सहारा कलावादी लेते हैं। जब यथार्थ को छिपाने की जरूरत होती है या चमत्कार उत्पन्न करने की प्रबल कामना हो तभी कवि अमूर्तन की तरफ कदम बढ़ाता है। कल्पना का सबसे बड़ा दुरुपयोग अमूर्तन के सन्दर्भ में ही होता है। केदारनाथ सिंह और कुँवर नारायण की कविता में अमूर्तन के सभी अपरूप प्राप्त होते हैं। डॉ. नामवर सिंह जिस छायावादी कविता की कल्पना को 'जीवनदायिनी कल्पना' कहते हैं, वह भी अमूर्तन है। एक किस्म का चमत्कार है। मूर्तन का सीधा सम्बन्ध भाषा विधान व कल्पना विधान है। बिम्ब सृजित करने के लिए बाह्य उपादानों की आवश्यकता होती है। जब बाह्य उपादान केवल आरोप हों तो वहाँ रूपक की सृष्टि होती है और जब बाह्य विधान प्रस्तुत को प्रभावी तरीके से व्यक्त करने लगते हैं तो वह अप्रस्तुत विधान होकर भी वस्तु को स्पष्ट कर देते हैं। बिम्बों की खूबसूरती उनकी प्रासंगिकता, आनुभाविकता विधानों की उपयुक्तता पर ही निर्भर करती है। इससे असंगति नामक दोष का अपवर्जन होता है। इसके लिए औपम्य विधान प्रतिभा की जरूरत होती है जो महेन्द्र भटनागर के पास है। औपम्य विधान प्रतिभा का प्रयोग वह हर तरीके से करते हैं। वह सकारात्मक औपम्य विधान भी करते हैं और नकारात्मक औपम्य विधान भी करते हैं। सकारात्मक विधान में चाक्षुज बिम्ब का निर्माण होता है तो नकारात्मक विधान में अमूर्तन का खतरा बढ़ जाता है। मगर सुधीर सक्सेना इस दोष से भी अपनी कविता को बचा ले जाते हैं। उनका नकारात्मक औपम्य विधान भी चाक्षुज रहता है और वस्तु को प्रभावोत्पादक बनाने में सहयोग करता है। इस औलट बिम्ब को अपह्नुति के सहारे बनाया जाता है। अपह्नुति अलंकारों का एक विभेद हो जो उपमामूलक होता है। जब प्रस्तुत का निषेध कर अप्रस्तुत की स्थापना की जाती है तब अपह्नुति अलंकार होता है। संस्कृत और हिन्दी काव्यालंकार रीति में इस अलंकार का बहुत प्रयोग होता है। कभी-कभी यह सन्देहमूलक उपमा का भी कारण बनता है। अपह्नुति को बिम्ब में परिवर्तित करना खतरनाक है। इससे बिम्ब तो उलट ही जाता है, साथ ही बिम्ब के चाक्षुज होने पर भी खतरा बढ़ जाता है। उनकी उपमाओं का विधान गतिमय होता है। वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विस्तार में भी घनत्व और प्रत्यक्ष में परोक्ष की अनावश्यक कोशिश नहीं करते। वह इस भ्रम का खण्डन करते हैं कि प्रेम में विस्तार का अर्थ मात्र उसका रहस्यमूलक होना है। रहस्यमूलक प्रेम की एक भी कविता मैंने महेन्द्र के काव्य में नहीं देखी। जो भी प्रेम कविताएं हैं वास्तविक यथार्थ का सहज बोध हैं और यह सहजबोध कलायुक्त होने के बावजूद भी कलावादी नहीं है। यह इसलिए सम्भव हुआ है कि महेन्द्र भटनागर का अप्रस्तुत विधान लिंग साम्य, प्रसंग साम्य के साथ-साथ अपने अनुरूप बिम्ब निर्मित करने में पूर्णतया सक्षम है। उनकी एक कविता देखिए, जो मैंने कविता पथ से ली है। इस कविता में अप्रस्तुत विधानों का विन्यास देखिए, कविता का शीर्षक है 'बरखा की रात'-''धरा ऐसी कि जिसने नव / सितारों से जड़ित साड़ी उतारी / सिहर कर गौरवर्णी स्वस्थ / बाहें गोद में आपने पसारी।'' यहाँ पर प्रकृति का मानवीयकरण है जो बगैर रूपक विधान के सम्भव नहीं है। फिर भी यह उपादानों का कमाल है कि यह सौन्दर्यबोध उत्कृष्ट कलात्मक होकर भी रहस्यमूलक नहीं है। हालाँकि विस्तार है फिर भी रहस्य की छाया नहीं है। यह लिंग साम्य और क्रियात्मक साम्य का गतिशील बिम्ब है जो पूर्ण रूप से कलात्मक है। यह प्रयोग पूर्ण रूप से शास्त्रीय और काव्यशास्त्र के अनुरूप विधान है। इसी तरह वह उपमामूलक बिम्ब का निर्माण करते हैं। ये बिम्ब चाक्षुज हैं, जो कल्पना का सकारात्मक विधान करते हुए वस्तु के साथ पाठक के चित्त का तादात्म्य स्थापित कर देते हैं। ऐसे बिम्ब अधिकतर गत्वर होते हैं। इस विधान द्वारा गतिशील वस्तुओं की सहायता से स्थितियों, दृश्यों का सौन्दर्य उद्घाटित किया जाता है।

स्थिर वस्तु की अपेक्षा गतिशील वस्तु में स्थिर सौन्दर्य की संस्थापना कठिन काम है। भले ही उपमेय स्थिर हो,परन्तु उपमान की अस्थिरता बिम्ब को दोषपूर्ण कर सकती है। इस प्रक्रिया को प्रभावी करने के लिए सुधीर ऐसे अप्रस्तुत विधानों की योजना बनाते हैं जो तात्कालिक होते हैं। तात्कालिक अप्रस्तुत विधान गत्वर बिम्ब को भी स्थिर विधान की तरह आनुभाविक कर देते हैं। ऐसे गत्वर और तात्कालिक बिम्बों का जितना प्रयोग महेन्द्र भटनागर ने किया है उतना हिन्दी में शायद ही किसी कवि ने किया हो। तारक गीत, विहान, अंतराल, अभियान, नयी चेतना, प्रबोध, मधुरिमा, संतरण, संवर्त भावों की उनकी कविताओं में इन गत्वर बिम्बों को भली भाँति परखा जा सकता है।

महेन्द्र भटनागर की कविताओं और गीतों पर काम करते हुए विशेपकर जब मैं 'कविता पथ' का संपादन कर रहा था तभी मुझे अहसास हुआ कि इस गीतकार का मूल्यांकन किसी आलोचना परिपाटी में आबद्ध होकर नहीं किया जा सकता है।

ये कवि आधुनिक समीक्षा प्रतिमानों और क्लासिकल समीक्षा प्रतिमानों दोनों में बँधकर नहीं रहता है। यह जितना प्रगतिशील है उतना ही स्वच्छन्दतावादी भी है। जितना भावुक है उतना ही क्रान्तिकारी है, जितना कल्पनावादी है उतना ही यथार्थवादी है। अस्तु काव्य विरेचन व निकप दोनों के लिहाज से आलोचक के लिए चुनौती है। पहली बात इनका साहित्य विपुल है। संवेदना विपुल है। साथ ही शिल्पगत विविधता व कलात्मक अनुप्रयोग भी विपुल है। आम पाठक और आलोचक इस विविधता में उतरकर खतरा नहीं लेता। वह तो चलताऊ कविताओं को अधिक पसंद करता है। मुझे लगता है महेन्द्र की अनदेखी का एक कारण यह भी है। इन कविताओं को समझने के लिए शास्त्रीयता और व्यवहार का पारस्परिक समन्वय बेहद जरूरी है। यदि महेन्द्र की कविताओं की शास्त्रीयता और उसकी संवेदनागत विस्तार देखना है तो यथार्थ और कल्पना का जनवादी शिल्प समझना जरूरी है। तभी इस विलक्षण काव्य प्रतिभा का समुचित मूल्यांकन हो सकता है।

संपर्क :
मो : 09838610776
बांदा (उ.प्र)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महेन्द्र भटनागर की कविताएं - गाओ कि जीवन गीत बन जाए

कौशल किशोर

जब जग में आग धधकती है, लपटों से दुनिया जलती है
अत्याचारों से पीड़ित जब भू-माता आज मचलती है
ये दुख मिटाने वाले हैं, जग को शीतल कर जाएंगे !
ये हिम बरसाने वाले हैं, ये अग्नि नहीं बरसाएंगे !

आज जब दुनिया धधक रही है, मानवता अत्याचारों से पीड़ित है, भू-माता मुक्ति के लिए छटपटा रही है, ऐसे में महेन्द्र भटनागर अपनी कविताओं और गीतों से दुख हरने और जग को शीतलता प्रदान करने की बात करते हैं। कविता का काम यही है। वह लोगों को उनका अधिकार नहीं दिला सकती लेकिन उसे पाने की चेतना जरूर जाग्रत कर सकती है, मनुष्य की संवेदना के तारों को झंकृत कर सकती है, दुखी व अशान्त मन में ऐसे भावों-विचारों की गंगा बहा सकती है जिससे मन शीतलता से भर जाए, उसे सुकून व शान्ति मिले। महेन्द्र भटनागर की कविताएं यही काम करती हैं। उम्र 90 के पार है लेकिन मन-मस्तिष्क में नौजवानों सा कुछ करने का उमंग है, कलम में वैसी ही रवानी है। कहते हैं :

हंसी पर खून के छींटे
कभी पड़ने नहीं देंगे
नये इन्सान के मासूम सपनों पर
कभी भी बिजलियां गिरने नहीं देंगे।

उनके अन्दर इन्सान की खुशियों, अरमानों और उसके सपनों को बचाने का जज्बा है। जीवन में इतनी गहरी आस्था है कि वे मृत्यु को चुनौती देते हुए कहते हैं :

मृत्यु के भी सामने वह
मग्न होकर देखता है स्वप्न !
सपने देखना, मानों जीवन की निशानी है
यम के पराजय की कहानी है।

महेन्द्र भटनागर ने जब काव्य-सृजन का आरम्भ किया, वह छायावाद का काल था। उसके बाद हिन्दी कविता में प्रगतिवाद से लेकर आधुनिक काव्य के कई दौर आए। इन सभी दौर में महेन्द्र भटनागर रचनाशील रहे। इनकी कविताओं पर रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, शिवमंगल सिंह सुमन, शिवकुमार मिश्र, विद्यानिवास मिश्र जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों ने आलेख लिखे, इनकी पुस्तकों की भूमिकाएं लिखीं। इनकी पचास से अधिक पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका अधिकांश साहित्य 'महेन्द्र भटनागर समग्र' के छ: खण्डों तथा काव्य सृष्टि 'महेन्द्र भटनागर की कविता गंगा' के तीन खण्डों में संकलित है। 'सृजन यात्रा' इनकी कविता संचयिता है जो वर्ष 2016 में आई है। इसमें इनकी 220 कविताएं संकलित हैं जो 'सामाजिक यथार्थ की कविताएं', 'जीवन-राग', 'प्रणय-प्रेम की कविताएं', प्रकृति-प्रेम की कविताएं', मृत्यु बोध-जीवन बोध' तथा 'जीवन-त्रासदी' उपशीर्षकों से छ: खण्डों में बंटी है। यह संचयिता महेन्द्र भटनागर की कविता की जीवन यात्रा है जो समय के विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरती है तथा हर्ष-विषाद, सुख-दुख, जीवन-मरण, जय-पराजय, प्रकृति-प्रेम, त्रासदी-संघर्ष के बीच जीवन का राग रचती है।

'सृजन यात्रा' में महेन्द्र भटनागर की कविताएं जीवन के विविध रंगों में सराबोर है। वह सामाजिक यथार्थ को समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों में देखती है तथा इस सच्चाई से परिचित कराती है कि यह समाज दो घुरवों में बंट गया है जहां 'एक ओर-भ्रष्ट राजनीतिक दल/और उनके अनुयायी खल/सुख-सुविधा-साधन-सम्पन्न-प्रसन्न' तो 'दूसरी तरफ - जन हैं / भूखे-प्यासे दुर्बल, अभावग्रस्त.....त्रस्त'। मानव मूल्यों में ऐसी गिरावट आई है कि मनुष्य स्वार्थी हो गया है। उसकी आस्थाएं संकुचित हो गई हैं। वह अपने धर्म, जाति, प्रान्त, भाषा, लिपि के बारे में इतना संकीर्ण होकर सोचता है कि अपने भाई का रक्त बहाने से उसे गुरेज नहीं। वह बहशी, आदमखोर व हिंसक होता जा रहा है। यह गांधी का देश है जहां की संस्कृति शान्ति, अहिंसा, प्रेम, परमार्थ की रही है, पर उस महात्मा के साथ क्या सलूक हो रहा है, महेन्द्र भटनागर अपनी कविता में कहते हैं :

मुंह में
यथा पूर्व विराजमान हैं - गांधी
बंगलों और कोठियों में
दीवारों पर
टंगे हैं गांधी
या सलीब पर लटके हैं गांधी!

अर्थात गांधी का अपने मतलब के लिए तो खूब इस्तेमाल हुआ और हो रहा है पर हकीकत में उनके आदर्शों को भुला दिया गया, उन्हें सलीब पर लटका दिया गया।

महेन्द्र भटनागर की 'सृजन यात्रा' मात्र सामाजिक विद्रूपताओं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विसंगतियों का ही बोध नहीं कराती बल्कि वह प्रणय-प्रेम व प्रकृति-प्रेम के बीच से गुजरती है। यह प्रणय मांसल नहीं आत्मिक है। कविता 'राग-संवेदन' में इनका स्नेह-सिंचित भाव इस रूप में अभिव्यक्त होता है।

उम्र यों ढलती रहे
उर में
धड़कती सांस यह चलती रहे
दोनों हृदय में
स्नेह की बाती लहर बलती रहे
जीवन प्राणों में परस्पर
भावना-संवेदना पलती रहे!

इसी तरह महेन्द्र भटनागर का प्रकृति के प्रति भी अदम्य अनुराग है। वे 'बरखा रात', 'शिशिर की रात', 'हेमन्त' और इसकी धूप के साथ 'सुहानी सुबह', 'बसन्त' का वर्णन ही नहीं करते बल्कि कविता में 'मेघ-गीत' गाते हैं। प्रकृति कैसे मन से लेकर तन-बदन को रोमांचित कर देती है, 'आहलाद' से भर देती है, यह भाव द्रष्टव्य है :

बदली छायी, बदली छायी
दिशा-दिशा में बिजली कौंधी
मिट्टी महकी सोंधी-सोंधी
दुलहिन झूमी, घर-घर घूमी
मनहर स्वर में कजरी गायी
बदली छायी, वर्षा आयी !

महेन्द्र भटनागर का मानव प्रेम मनुष्य तक सीमित नहीं है। वे इस प्रेम में जो निहित स्वार्थ का भाव है, उस पर चोट करते हैं। इनकी कविता 'गौरैया' को देखें। इसके प्रति उसका प्रेम कैसा है? मनुष्य ऐसा कला प्रेमी है कि वह अपने ड्राईंग रूम की शोभा बढ़ाने के लिए दीवारों पर गौरैया के चित्र टांगता है। वे कहते हैं : 'गौरैया! यह आदमी है/कला का बड़ा प्रेमी है, पारखी है/इसके कमरे की दीवारों पर/तुम्हारे चित्र टंगे हैं' पर उसकी वास्तविक दुनिया में? वहां से गौरैया विलुप्त हो रही है। कोई और नहीं, यह मनुष्य है जो गौरैया को उजाड़ रहा है। इस सच्चाई को व्यक्त करती कवि की संवेदना गौरैया से जुड़ती है :

गौरैया, भाग जाओ
इस कमरे से भाग जाओ
अन्यथा यह आदमी
उजाड़ देगा तुम्हारी कोख
एक पल में खत्म कर देगा
तुम्हारे सपनों का संसार।

इस तरह महेन्द्र भटनागर की कविताएं बाहर की दुनिया के साथ भीतर की दुनिया में उतरती हैं। प्रणय और प्रकृति प्रेम पर लिखी इनकी कविताएं हमें केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शील, त्रिलोचन जैसे प्रगतिशील कवियों की इन्हीं विषयों पर लिखी कविताओं की याद दिला देती हैं। इनकी विशेषता है कि इन्होंने जो जीवन जिया, भोगा, देखा उसे सहज-सरल तरीके से व्यक्त किया। इसीलिए इसमें कृत्रिमता नहीं सादगी है, देशज भाव-संवेदना से संपृक्त भारतीय ठेठपन है और कविता इन्हीं संस्कारों से लैस मिट्टी व भाषा की सुगन्ध से भरी है। इन्होंने गीत लिखे, छन्द में रचनाएं कीं, मुक्त छन्द और छन्द मुक्त शैली में कविताएं लिखीं। इस मायने में महेन्द्र भटनागर हमारी जातीय चेतना के कवि हैं। इनकी कविताएं संघर्षधर्मी होने की जगह जीवन धर्मी ज्यादा है। मृत्यु में भी वे जीवन को देखते हैं। इस विषय पर संग्रह में कई कविताएं हैं। कैसे देखते हैं वे मृत्यु को, उन्हीं के शब्दों में :

मृत्यु - आना, एक दिन जरूर आना
और मुझे उड़नखटोले में बैठाकर ले जाना
दूर...बहुत दूर... नरक में
जिससे मैं नरक-वासियों को
संगठित कर सकूं
उन्हें विद्रोह के लिए ललकार सकूं
जिन्दगी बदलने के लिए
तैयार कर सकूं।

यह 'जिन्दगी बदलने की' अदम्य इच्छा मृत्यु के साथ भी समाप्त नहीं होती। दुख-दाह व ताप-त्रास के बीच जीवन को कैसे बचाया जाए, यह चिन्ता और इसे कैसे बदला जाए, यह चाह महेन्द्र भटनागर को काव्य-सृजन के लिए प्रेरित करती है। इसमें बढ़ती उम्र कोई बाधा नहीं और वे पूरे मनोयोग से कविता रचते हैं, किसी साधक की तरह उसमें डूबते हैं और आस्था का गीत गाते हैं :

गाओ कि जीवन गीत बन जाए!
हर तरफ छाया अंधेरा है घना,
हर हृदय हत, वेदना से है सना,
संकटों का मूक साया उम्र भर
क्या रहेगा शीश पर यों ही बना?
गाओ पराजय-जीत बन जाए!
गाओ कि दुख संगीत बन जाए!

संपर्क :
(लखनऊ) मो :- 08400208031/09807519227

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आशा-विश्वास और आस्था के कवि महेन्द्र भटनागर

डॉ. अजीत प्रियदर्शी

छह दशकों की सृजन-यात्रा में महेन्द्र भटनागर ने छायावादोत्तर तीन काव्य-धाराओं राष्ट्रीय काव्य-धारा, उत्तर छायावादी गीति-काव्य, प्रगतिवादी काव्यधारा से जुड़कर महत्वपूर्ण काव्य-सृजन किया। 'विशाल भारत' (कलकत्ता) के मार्च 1944 के अंक में उनकी कविता 'हुंकार' प्रकाशित हुई और 1946 में वे प्रगतिवादी काव्यान्दोलन से सक्रिय रूप से जुड़ गये। सुदीर्घ रचना-काल में उन्होंने अपने समय के सामाजिक यथार्थ को बखूबी पहचाना और बेलगाम बयान करके प्रगतिशील मानवतावादी कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। अपनी रचनात्मक शक्ति और सीमा के साथ वे प्रगतिशील हिन्दी कविता के द्वितीय उत्थान के दौर में कमोबेश चर्चा में रहे।

कवि महेन्द्र भटनागर की सृजन-मनोभूमि में मानवतावादी सामाजिक समता-समरसता की आकांक्षा है और इस परिवर्तनकारी आकांक्षा की अभिव्यक्ति में युवा ऊर्जा, जोश, ललकार के साथ ही अनुभव परिपक्व चेतावनी भरा उद्बोधन भीं है। निजी सुख-दुख में संकुचित युवाओं को संबोधित करते हुए वे उन्हें जन-जीवन से जुड़ने का आह्वान करते हैं -''आओ/ दीवारों के घरों/परकोटों से/बाहर निकलें!/मुरझाये रोते चेहरों को/ मुसकानें बाँटें/उनके जीवन-पथ पर/छितराया कुहरा छाँटें!'' (सार्थकता, पृष्ठ 43, सृजन और सरोकार, काव्य-संग्रह/संचयन, शांति प्रकाशन, रोहतक हरियाणा, 2013) महेन्द्र भटनागर जन-प्रतिबद्ध कवि हैं और जन-जीवन में व्याप्त आशा अवसाद को दूर करने के लिए 'संकल्पित' हैं एवं आम जनों में प्राणपद उत्साह का संचार करना अपने काव्य-सृजन का उद्देश्य निश्चित करते हैं- ''प्रतिबद्ध हैं हम/व्यक्ति के मन में उगी-उपजी/निराशा का, हताशा का/ कठिन संहार करने के लिए!/हर हत हृदय में/ प्राणप्रद उत्साह का संचार करने के लिए'' (संकल्पित कविता, वही, पृष्ठ 44)। जीवन में पराजय का दंश झेलने वाले आम जन को संघर्ष करते रहने की सीख देते हुए वे पराजय को विजय की भूमिका बताते हैं-''पराजय को! विजय की सूचिका समझो/अँधेरे को/सूरज के उदय की भूमिका समझो!'' ('दृष्टि' कविता, वही, पृष्ठ 27)

दलित-दलितजनों के शोषण के लिए उत्तरदायी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक स्थितियों को बदलने की तीव्र बेचैनी ने उनके रचनात्मक व्यक्तित्व में आक्रोश और ललकार का सृजन किया है। आम आदमी के जीवन में भूख, अभाव, शोषण की यथास्थिति से बेचैन होकर वे 'स्वराज्य' को प्रश्नांकित करते हैं, ''आजादी के तीन-तीन दशक/बीत जाने के बाद भी/....यह कैसा स्वराज्य है?/धन, पद, पशु/भारत-भाग्य विधाता है,'' ('विचित्र' कविता, वही, पृष्ठ 70)। वे साफ कहते हैं कि आम आदमी जब दो जून की रोटी ठीक से जुटा पाने में असमर्थ है तब वह कोई खूबसूरत ख़्वाब क्या देख पायेगा- ''दो जून/रोटी तक जुटाने में/ नहीं जो कामयाब/ जिन्दगी/उनके लिए/ क्या खाक होगी ख़्वाब!/कोई खूबसूरत ख़्वाब!'' ('दरिद्रनारायण' कविता, वही, पृष्ठ 63)।

आम आदमी के जीवन में भूख, अभाव, शोषण की यथास्थिति से बेचैन होकर वे 'स्वराज्य' को प्रश्नांकित करते हैं, ''आजादी के तीन-तीन दशक/बीत जाने के बाद भी/ ....यह कैसा स्वराज्य है?/धन, पद, पशु/ भारत-भाग्य विधाता है,''

असमानता और शोषण आधारित सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिए बेचैन कवि ललकारना चाहता है, मगर पूँजीवादी और सामंती व्यवस्था की कठोर जकड़बंदी की पोषण सत्ता के बीच पिसते आम आदमी के अवसादमय जीवन-यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करता है ''अब न हम ललकार पाते हैं/न चीख पाते हैं,'' ('इतिहास का एक पृष्ठ' कविता, वही, पृष्ठ 50)। संवेदनहीन सरकार में गरीब व्यक्ति बेकारी झेलता है, भूखा सोता है और भूख से मर जाता है, मगर सरकारी दस्तावेजों में वह कभी भी भूख से मृत नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिखलाया जाता। आम आदमी के जीवन में 'निर्धनता का दुष्चक्र' (रोजर नक्स का आर्थिक सिद्धान्त) कभी दूर नहीं हो पाता। वह भूखा पैदा होता है और भूख से मर जाता है। संवेदनहीन शासन सत्ता और सुविधासम्पन्न लोगों की दुनिया में घटि-घटि कर मर जाने को अभिशप्त अछूत गरीब की त्रासदी का भयावह यथार्थ 'करुणा-विडम्बना-व्यंग्य' को त्रि-आयामी भयावह चित्त महेन्द्र भटनागर ने एक छोटी सी कविता में इस तरह खींचा है "गरीब था/अछूत था/डर गया!/भूख से/मार से/मर गया! शोक से/लोक से/तर गया।" ('त्रासदी' कविता, वही, पृष्ठ 71)

परिवर्तन का भी उत्साह, उमंग से भरा कवि यथास्थितिवादी व्यवस्था के लिए जिम्मेदार शासन-सत्ता, शोषण पर आधारित पूँजीवादी-व्यवस्था तथा सामाजिक-राजनीतिक अन्तर्विरोधों को अनदेखा कर देता है। तब उसका आशावाद मासूम भोलापन से भर जाता है क्योंकि बदलाव का जैसा चित्र वह खींचता है, वह यथार्थ से दूर हो जाता है। तीव्र आशावाद से भरा रोमांटिक परिवर्तन का सपना कभी यथार्थ नहीं होता। द्वंद्वात्मक-भौतिकवाद के मार्क्सवादी दर्शन से अलग वह परिवर्तन के सपनों को यथार्थ जीवन पर बहुधा चस्पा कर देता है। अभाव, भूख और शोषण की यथास्थिति से मुख मोड़कर वह कहने लगता है-

हर दिशा में जल उठी ज्वाला नयी,
लालिमा जीवन-जगत पर छा गयी!
है नयी पदचाप से गुंजित मही
ज्योति अभिनव हर किरण बिखरा रही!
छिन्न सदियों का अँधेरा हो गया,
राह पर जगमग सवेरा है नया!
('चेतना' वही, पृष्ठ 147)

महेन्द्र भटनागर की कविता में युवा जोश, उत्साह और आशावाद भरपूर मिलता है। अति उत्साही प्रगतिवादी कवि का मुख्य स्तर जागरण और उद्बोधन परक है। उनके अनेक गीतों और कविताओं के शीर्षक प्रायः उद्बोधन और जागरण के द्योतक हैं; यथा जागते रहेंगे, बढ़ते चलो, भोर का आह्वान, दीप जला दो, जागो, नवजीवन, नवयुग, जयबेला। आशा, उत्साह और आस्था से लबरेज कवि में प्रगतिवादी रोमानवाद भरपूर मिलता है। समतामूलक लक्ष्यों के प्रति आस्था और भविष्य प्रतीक्षा में प्रायः भावुकता का दर्शन हो जाता है:

पीड़ित, त्रस्त, शोषित सर्वहारा की
उमड़ती बाढ़-सी धारा
लगाकर यह गगनभेदी सबल नारा
नयी दुनिया बनानी है!
न होगा चिह्न जिसमें एक भी
मृत 'घृणित पूँजीवाद' का,
(नई दिशा, वही, पृष्ठ 161)

जीवन की हर अंधेरी गली में नया सवेरा की तलाश करने वाले कवि की मुख्य टेक है 'सतत गाते रहो वह गीत जिसमें हो भरी आशा'। निराशा, अंधकार, अवरोधों, मुश्किलों और पराजय को नजरअन्दाज करके हमेशा समतामूलक परिवर्तन और मानवमुक्ति की आकांक्षा महेन्द्र भटनागर की ताकत भी है और सीमा भी। वे साफ कहते हैं, "आज भय की बात मुझसे मत कहो/आज बहकी बात मुझसे मत कहो! प्राण में तूफान-से अरमान हैं/कंठ में नव-मुक्ति के नवगान हैं!" (मत कहो, वही, पृष्ठ-172); 'हिम्मत न हारो!' की हमेशा गुहार लगाने वाला कवि अपनी लेखनी से निवेदन करता है : "भयभीत जो उसको सबल विकास दो।/रोते हुए मुख पर रुपहला हास दो।"

प्रबल आशावाद के बावजूद महेन्द्र भटनागर की कविता निराशा के अंधकार से बच नहीं पायी, क्योंकि उनकी भावुक आशावादिता कड़वी हकीकत को बदल नहीं पायी। 'काली घटाएँ वेदना की स्थिर रही है, 'दह का दाह अभावों का, हर सपना भस्म हुआ।' जैसी काव्य-पंक्तियाँ लिखने से वे बच नहीं पाए।

महेन्द्र भटनागर की कविता सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं और अन्तर्विरोधों का उद्घाटन नहीं करती। अन्तर्विरोधों और निराशाजनक वास्तविकता से प्रायः मुँह मोड़कर प्रगतिशील समतावादी दृष्टि से वे भविष्य-प्रतीक्षा करते दिखाई देते हैं। परिवर्तनकामी रूमानी दृष्टि के कारण उनके गीतों में छायावादोत्तर गीतिकाव्य की रूमानी-शैली मिलती है। उनकी अधिकांश कविताएँ और गीत सपाट और उद्बोधनपरक हैं। प्रगतिवादी जनवादी विषयवस्तु की सामान्यीकृत और सामान्य वर्णनात्मक अभिव्यक्ति की एकरसता के कारण उनकी किसी भी कविता की विशिष्ट छाप पाठक पर नहीं पड़ती। जागरण, उद्बोधन आक्रोश, क्रान्ति, नाश और निर्माण, इच्छित विश्वास से भरा भविष्य-चिन्तन जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काव्य-विषय उनकी रामानुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि बौद्धिक अभिव्यक्ति या सिद्धान्त कथन जैसे लगते हैं। डॉ. रणजीत ने बिल्कुल सही लक्ष्य किया है कि, ''वास्तव में महेन्द्र भटनागर की अधिकांश कविताएँ देशकाल निरपेक्ष आशा, विश्वास और आस्था की कविताएँ हैं : इसी कारण प्रभावशाली नहीं हैं। वे आस्था और आशा की बात तो करते हैं पर आस्था और आशा को किसी निश्चित देश, काल, घटना, पृष्ठभूमि में रखकर रूपायित नहीं करते, उनकी आशा और उनका विश्वास हवा में लटकते हुए अमूर्त आशा और विश्वास लगते हैं।'' (डॉ. रणजीत हिन्दी के प्रगतिशील और समकालीन कवि, साहित्य रत्नालय, कानपुर, संस्करण : 2001, पृष्ठ 148)।

महेन्द्र भटनागर की कविता में प्रगतिशील विषयवस्तु की वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन छायावादी शब्दावली का मोह उनकी काव्यभाषा में प्राय : दिखाई देता है ''प्रसुप्त/प्रस्तरों की चादरों को छोड़/प्रंशुभाल, प्राज्यशक्ति, ध्रुव प्रतीति ले/उठा रहा प्रहारना का अस्त्र!/है असांच गर्व मृत/असार अस्तमन, विधुर, विपन्न/अब विभीपिका-विभारी/विभास से विभीत पिंगला!'' ('जागते रहेंगे' कविता, 'नयी चेतना' काव्य-संग्रह में) लेकिन, उनकी तत्समनिष्ठ काव्यभाषा क्रमश : बोलचाल की भाषा के करीब होती गई। बाढ़ में फंसे 'विपत्तिग्रस्त' व्यक्ति के जीवन की त्रासदी को उकेरती पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं-''छप्पर-टप्पर,/बस, असबाब पड़ा है औंधा!/आटा-दाल गया सब बह,/देवा, भूखा रह!/औधन गीला/नहीं जलेगा चूल्हा,/तैर रहा है चौका/रहा-सहा!/घन-घन करते नभ में वायुयान/मँडराते गिद्धों जैसे!'' (विपत्ति-ग्रस्त कविता, 'सरोकार और सृजन' काव्य में)।

महेन्द्र भटनागर की कविता में पारम्परिक छंदों और मुक्त छन्दों का प्रयोग हुआ है। उनके कुछ गीतों में लोकगीतों का लय-प्रवाह मिलता है। लेकिन अधिकांश गीतों में हृदयहीन-रागविहीन सिद्धांत कथन और उद्बोधन ही मिलता है। अधिकांश कविताओं में भी प्रवाहहीन वर्णन-चित्रण, सामान्य कथन ही मिलता है। कवि ने अपने प्रगतिशील चिन्तन की अभिव्यक्ति जीवन-प्रसंगों में गहरे उतर कर नहीं किया है। इसलिए उसकी अधिकांश काव्य-अभिव्यक्ति सामान्य सिद्धांत कथन, उपदेशपरक भावोच्छवास बन जाता है। महेन्द्र भटनागर के काव्य-व्यक्तित्व का महत्व इस बात में है कि कथ्य-कथन की एकरसता, सिद्धांतकथन तथा उपदेशात्मकता की सीमा के बावजूद, प्रयोगवाद के आत्मकेन्द्रित व्यक्तिवाद और शिल्पगत परिवर्तन की आकांक्षा से जुड़कर समतामूलक समाज की स्थापना हेतु आशा-आस्था और संकल्पबद्ध-सजग गायक बने रहे।

संपर्क :
(लखनऊ)
मो :-07376620633

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिंदगी के हर रंग को उकेरती और उम्मीद जगातीं कविताएं : जीवन राग (महेंद्र भटनागर)

गीता दूबे

जनवादी कवि महेंद्र भटनागर एक लंबे अरसे से हिंदी काव्य-क्षेत्र में सृजनरत हैं, और उनकी एक बड़ी खूबी है उनकी निरंतर सृजनशीलता। उम्र के जिस पड़ाव में अधिकांश रचनाकार अपनी रचनात्मकता से मुक्ति लेकर भगवत भजन में डूब जाते हैं, उस दौर में भी महेन्द्र जी उम्मीद और आशा से उद्धासित निरंतर सृजनशीलता से अपनी रचनात्मकता का प्रमाण देते नजर आते हैं। महेन्द्र भटनागर को कई स्वनामधन्य आलोचकों ने जनवादी कवि के विशेषण से अलंकृत किया है, बहुत हद तक यह बात सही भी है। महेन्द्र जी की काव्य यात्रा का सर्वागीण अवलोकन करते हुए यह बात उभर कर सामने आती है कि अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के घेरे में आबद्ध रहने के बावजूद कवि का हृदय अत्यंत विशाल और कारुणिक जीवन प्रसंगों पर द्रवित होने वाला है, जहां वह परंपरा और इतिहास से प्राप्त मूल्यबोध को निश्छल भाव से ग्रहण करते हुए भावनात्मक संबल प्राप्त करता है, वहीं वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, वैश्विक घटनाओं का आकलन करते हुए उनके प्रभावों को अपने काव्य में उकेरते हुए भविष्य के प्रति आशा का संदेश भी देता है। साधारण आम आदमी की तरह वह भी आशा- निराशा के बीच हिचकोले खाता हुआ कभी - कभी घोर निराशा और व्यर्थताबोध से घिरा भी नजर आता है, लेकिन जल्दी ही वह इस नकारात्मकता पर काबू पाकर, फिर से जीवन की चुनौतियों को स्वीकार कर उम्मीद का गीत गुनगुनाते हुए पाठकों को प्रेरित करता नजर आता है।

किसी भी रचनाकार की रचना प्रक्रिया पर विचार करते समय यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ खड़ा होता है कि वह क्यों और किसके लिए लिखता है। महेन्द्र जी की कविताओं से गुजरते हुए इसका उत्तर भी मिलता है जिस पर श्री शिवकुमार मिश्र ने अपनी स्वीकृति की मुहर कुछ यूं लगाई है - ''कुल मिलाकर, महेन्द्र भटनागर की कविता धरती और जीवन के प्रति अकुंठ राग की कविता है। वह मानव - जिजीविषा की कविता है जो मरना नहीं जानती।'' (भूमिका)

तकरीवन छ दशकों से निरंतर सृजनरत महेन्द्र जी की सक्रियता का प्रमाण उनकी सद्य प्रकाशित कृति 'सृजन यात्रा' है। नाम के ही अनुरूप इस कृति में महेंद्र जी अपनी काव्य-यात्रा के विभिन्न पड़ावों, अनुभवों और सरोकारों को दर्ज करते नजर आते हैं। लंबे समय से सक्रिय कवि का अनुभव क्षेत्र तो व्यापक है ही, उसकी संवेदना भी उतनी ही द्रवणशील है जो हर थके, सारे शोषित दलित और पीड़ित के साथ खड़ी होकर आक्रोश का स्वर गुंजरित करती है। जिस तरह किसी भी मनुष्य की जीवन यात्रा क्रमशः विभिन्न पड़ावों में विभाजित होती है उसी तरह आलोच्य काव्य संग्रह भी विभिन्न खंडों में बंटा हुआ है। संवेदना या अनुभूति के मूल स्वर को ध्यान में रखते हुए कवि की यह काव्य-यात्रा कुल मिलाकर छ: खंडों में विभाजित है और कवि ने बाकायदा उन्हें विभिन्न शीर्षकों से नामित भी किया है।

कुल मिलाकर 279 पृष्ठों में फैले इस संग्रह में कवि की छोटी-बड़ी 220 कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं से गुजरते हुए कवि की काव्य-यात्रा को बखूबी समझा जा सकता है। कवि भी आम आदमियों की तरह ही एक आदमी होते हुए भी इस मायने में असाधारण होता है कि उसे जीवन के सुख-दुख दोनों ही आम आदमियों की तुलना में कहीं अधिक गहराई से संवेदित करते हैं और वह उन जीवनानुभवों को बड़ी सूक्ष्मता से अपनी रचनाओं में उकेरता है। कवि की गहरी दृष्टि और प्रभावशाली भाषा में बंधकर ये अनुभव प्रामाणिकता हासिल करने में तो सक्षम होते ही हैं, पाठकों पर गहरा प्रभाव भी छोड़ते हैं। 'सामाजिक यथार्थ की कविताएं' (प्रथम खंड) लिखते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुए कवि की दृष्टि सामाजिक विषमताओं को देखती समझती हुई उनके दुष्परिणामों की ओर भी इंगित करना नहीं भूलती। संग्रह की पहली कविता में ही कवि अपनी राजनीतिक विचारधारा को स्पष्ट करते हुए दो भागों में विभाजित समाज के यथार्थ को व्याख्यायित करता दिखाई देता है जिससे उसकी साम्यवादी विचारधारा का पता चलता है :

स्पष्ट विभाजित है
जन समुदाय
असहाय।
हैं एक ओर-छोर
भ्रष्ट राजनीतिक दल
उनके अनुयायियों कल,
सुख-दुख सुविधा-साधन-संपन्न
प्रसन्न। (पृ. 2)

और इन दो ध्रुवों पर खड़े लोगों में से जनवादी कवि निश्चित तौर पर शोषितों और वंचितों के साथ खड़ा दिखाई देते हुए उस सामाजिक 'परिवर्तन' को अंकित करना नहीं भूलता -

साम्य भाव के नारों से
नभ-मंडल दहल गया
कितना बदल गया। (पृ.5)

इन्हीं बदलावों ने आम आदमी को ही नहीं कवि को भी वह ताकत दी है कि अंधेरे की ताकत को पूरी शिद्दत से महसूसने और उससे घिरे समाज की विवशताएं को पहचानने के बावजूद वह 'रोशनी के गीत' गाने की इच्छा प्रगट करता हुआ बेहद आश्वस्त होकर कह उठता है -

तम घटेगा
तम छंटेगा
हटेगा। (पृ. 11)

साहिर लुधियानवी की मशहूर नज़्म 'वह सुबह कभी तो आयेगी' जैसी आश्वस्ति के साथ भटनागर साहब की ये कविताएं हमारे अंतर्मन को उम्मीद की उजली रोशनी से भर देती हैं। उजाले और अंधेरे की आंख-मिचौली इन कविताओं की विशेषता है। कहीं वह कवि निराला की कविता 'गहन है यह अंधकार' की तर्ज पर अंधेरे की भयावहता को कुछ यूं उकेरता है -

मनुष्य के भविष्य पर
अपार अंधकार है
प्रगाढ़ अंधकार है
न चांद है न सूर्य
बज रहा न सावधान- तूर्य। (पृ. 50)

मुक्त छंद की इन कविताओं में एक सहज छंद का सुर है जो इन्हें लय और ताल से समृद्ध करता है और इनके पाठ को भी संगीतमय बना देता है। कवि अंधेरे के खिलाफ अपनी लेखनी को निरंतर सृजनरत रखते हुए उससे क्रांति का गीत लिखना चाहता है और इसी कारण लेखनी के माध्यम से अपने अंदर के कवि का आह्वान करते हुए कहता है -

ध्वंस पर अभिनव सृजन आह्वान दो
हर आदमी के कंठ में
श्रम का संबल मधु गान दो।
प्रत्येक घर में प्यार का सागर भरो,
धुंधले नयन में रोशनी घर-घर भरो। (पृ.51)

'जीवन राग' (द्वितीय खंड) की कविताओं में जीवनानुभूतियों के सघन और मर्मस्पर्शी चित्र हैं जिन्हें पढ़ते हुए पाठकों को यथार्थ से गुजरने का अनुभव होता है, जो सुख-दुख, हर्ष-विषाद के मिश्रित भावों से गुंथा हुआ है। वैराग्य की एक चादर ओढ़े कवि जिंदगी को बेहद तटस्थता से देखते हुए उसके यथास्थितिवाद को रेखांकित करते हुए यथार्थ की क्रूरता को महसूसते हुए भी अपने अंतर्मन में आकांक्षा का वह दीप छिपाए बैठा है जिसके भरोसे जिंदगी घिसटती या कटती जाती है। यहां नाउम्मीदी में डूबते-उतराते हुए भी कवि उम्मीद का दामन थामे बैठा है। खामोश फिसलती जिंदगी में कवि की यह चाहत बेहद स्वाभाविक सी लगती है -

निपट सूनी अकेली जिंदगी में,
कूप में बरबस ढकेली जिंदगी में,
निष्ठुर घात प्रतिघात झेली जिंदगी में,
कोई तो हमें चाहे, सराहे!
किसी की तो मिले
शुभकामना / सद्भावना ! (पृ. 73)

इस खंड की कविताएं स्मृतियों की डोर थामे मनुष्य को जीना सिखाती हैं। कवि तमाम हताशाओं, निराशाओं और व्यर्थताबोध बोध के बावजूद जिंदगी के सूनेपन को अपनी रचनात्मकता के रंग से रंगा हुआ जिंदगी के गीत कुछ इस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तरह गाता है कि जिंदगी खुद ब खुद सुंदर बन जाती है।

प्रेम जिंदगी का सबसे खूबसूरत अहसास ही नहीं साहित्य का शाश्वत विषय भी है। कविता या तो प्रतिरोध के रूप में प्रस्फुटित होती है या प्रेम को अपना विषय बनाती है, विचारधारा के सवाल तो उसमें बाद में शामिल होते हैं और जैसे-जैसे वैचारिक परिपक्वता आती जाती है विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता भी बढ़ती जाती है। बिरला ही कोई कवि होगा जिसने अपनी काव्य-यात्रा के प्रारंभिक दौर में प्रेम कविताएं ना लिखी हों, बाद में भले ही उसने इन कोमल भावनाओं से स्वयं को मुक्त कर लिया हो। कवि महेन्द्र भटनागर जब मानवमात्र से प्रेम का दावा करते हैं तो उनके जीवन में किसी क्षण किसी व्यक्ति विशेष के लिए भी प्यार उमड़ा ही होगा और जीवन की वे मृदु स्मृतियां ही जीवन की सांध्य वेला में कवि के लिए संबल बन जाती हैं। कवि सिर्फ अपनी निजी अनुभूतियों को ही अभिव्यक्त नहीं करता बल्कि मानव मात्र के लिए प्रेम की आवश्यकता और अर्थवत्ता को रेखांकित करते हुए लिखता है-

जी रहा है आदमी
प्यार की ही चाह में
पास उसके गिर रही हैं बिजलियां,
घोर गहगह कर घहराती आंधियां,
पर, अजब विश्वास ले
सो रहा है आदमी
कल्पना की छांव में। (पृ. 165)

प्रणय / प्रेम की कविताएं (तृतीय खंड) लिखते हुए कवि की मन की कोमलता भावों को मृदुल भाषा के माध्यम से सामने रखती हैं। इन कविताओं में गेयता भी है और माधुर्य भी। कहीं -कहीं छायावादी प्रभाव से मंडित ये कविताएं जीवन में प्रेम के महत्व को कुछ ऐसे भी स्थापित करती हैं:

जिंदगी में प्यार से सुंदर
कहीं कुछ भी नहीं
कुछ भी नहीं। (पृ. 117)

प्रेम की इन कविताओं में शिकवा, शिकायतें, मनुहार, स्वीकार के साथ साथ विश्वास का भाव भी है। संयोग के चित्र हैं तो विछोह की पीड़ा भी। इस पीड़ा में सहभागी है प्रकृति। चांद कभी निर्मम निर्मोही लगता है तो कभी उसमें अपनी प्रेयसी का मासूम मुखड़ा नजर आता है। इस खंड में खूबसूरत गीत संकलित है जो बरबस किसी लोकगीत की याद दिलाता है। दाम्पत्य प्रेम की आभा से मंडित यह गीत सहजता से पाठकों को अपनी लय में बांध कर रिझा लेता है-

हे विधना! मोरे साजन का सितारा दूखे ना।
हे विधना! मोरे आंगन के बिरवा सूखे ना।(पृ.156)

इस खंड का समापन कवि की एक छोटी सी हृदयस्पर्शी कविता से होता है जो बरबस पाठकों का मन ही नहीं मोहती उसे सोचने के लिए विवश भी कर देती है, बानगी देखिए-

प्यार की जिसको मिली सौगात है
जिंदगी उसकी सजी बारात है!
भाग्यशाली वह; उसी के ही लिए
सृष्टि में मधुमास है, बरसात है! (पृ. 188)

प्रेम बड़ा ही व्यापक विषय है। मानवप्रेमी या मानवदरदी कवि सिर्फ मनुष्य से ही प्रेम नहीं करता बल्कि प्रकृति के कण-कण को देखकर उल्लसित हो उठता है। इस मनमोहिनी प्रकृति के सौंदर्य और प्रेम के बहुत से चित्र कवि ने 'प्रकृति प्रेम की कविताएं' (चतुर्थ खंड) में उकेरे हैं। यहां ऋतुओं का मनमोहक वर्णन है तो पक्षियों का कलरव संगीत भी पूरे माधुर्य के साथ संजोया गया है। बरसात की बरसती बूंदों की रसभरी छटा है तो हेमंत की सुखद धूप का कोमल संस्पर्श भी पाठकों को बरबस अपनी कोमल छुअन से बांध लेता है। बसंत तो खैर अपनी भुवनमोहिनी छटा के साथ उपस्थित ह ही जिसके स्पर्श मात्र से जगत उमंग से नाचने लगता है। बसंत के इसी व्यापक प्रसार को कवि ने अपनी छोटी सी कविता में कैसे बांधा है यह देखने और सराहने लायक है-

अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया!
दूर खेत मुस्करा रहे हरे-हरे
बोलती बयार नव-सुगंध को धरे,
प्राण! आज तो विशुद्ध भाव प्यार का
हृदय समा गया। (पृ. 209)

दिन के विविध प्रहरों का भी कवि ने मनमोहक चित्र खींचा है वह सुबह हो शाम या फिर ज्योत्स्ना ज्योतित रात। प्रकृतिपरक ये गीत और कविताएं अन्यान्य भावों की कविताओं की तुलना में संख्या में भले ही कम हैं लेकिन प्रभाव जरूर छोड़ते हैं। दिन का हर बदलता प्रहर किस तरह अलग-अलग मनुष्य पर अलग-अलग प्रभाव छोड़ता है इसका वर्णन कवि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

हर बार अलग ढंग से करते हैं। सांझ हर व्यक्ति के लिए अलग पैगाम लेकर आती है, उसका एक चित्र देखिए -

सांझ की बेला घिरी, मांझी।
अब जलाया दीप होगा रे किसी ने
भर नयन में नीर,
और गाया गीत होगा रे किसी ने
साध कर मंजीर,
मर्म जीवन का भरे अविरल बुलाता
सिंधु बिकता तीर,
स्वप्न की छाया गिरी, मांझी। (पृ. 217)

इसी तरह निशा या रात के सौंदर्य से प्रभावित होकर उसका वर्णन वह कुछ यूं करता है -

है बड़ी मोहक रुपहली रात,
दूर पूरब से बहा है वात,
व्योम में छाया हुआ निशि का नशा भरपूर। (पृ. 218)

अपनी तमाम रंगीनियों और खूबसूरतियों के बावजूद संसार को छोड़कर मनुष्य को जाना ही पड़ता है, मौत कितनी भी भयानक क्यों ना हो लेकिन उसे नकारा नहीं जा सकता। उसकी गोद में सोकर ही आदमी चिर विश्राम पाता है, लेकिन मौत का भय आदमी को निरंतर सताता भी रहता है। भले ही ग़ालिब कह गये हैं, 'मौत का एक दिन मुय्यन है, नींद क्यों रातभर नहीं आती।' लेकिन यह भी सच है कि मृत्यु निरंतर हमें चिंता मग्न किये रहती है। जिंदगी और मौत की इसी आंख-मिचौली को कवि 'मृत्यु-बोध : जीवन-बोध' (पंचम खंड) में अभिव्यक्ति देता है। जिंदगी और मौत की तुलनात्मक व्याख्या वह कुछ यूं करता है-

मृत्यु:
जन्म से बंधी अटूट डोर है।
जन्म :
एक ओर,
मृत्यु:
दूसरा प्रतीप छोर है।
जन्म - एक तक
मरण - विलोम तीर। (पृ. 226)

मृत्यु की अटलता को स्वीकार करने के साथ ही कवि उससे भयभीत भी नहीं होता। वह छायावादी कवियों की तरह मृत्यु का मानवीकरण करते हुए, कभी उसे नटखट बालिका कहते हुए उसका आह्वान करता है तो कभी उससे प्रेम करने की इच्छा प्रगट करता है। यह एक अद्भुत कल्पना है मृत्यु से प्रेम करने की, जिससे कवि महेन्द्र के चिंतन का अनूठा दृष्टिकोण प्रकट होता है। कवि मृत्यु को आमंत्रण देते हुए जब उसका स्वागत करता है वहां भी उसकी जनवादी चेतना का परिचय मिलता है। वह आमलोगों की तरह स्वर्ग जाने की बजाय नरक जाने की इच्छा प्रकट करता है ताकि नरकवासियों को संगठित कर सके-

मृत्यु -
आना, एक दिन जरूर आना।
और मुझे
अपने उड़नखटोले में बैठा कर ले जाना,
दूर... बहुत दूर.....नरक में।
जिससे मैं
नरक-वासियों को संगठित कर सकूं,
उन्हें विद्रोह के लिए ललकार सकूं,
जिंदगी बदलने के लिए
तैयार कर सकूं। (पृ. 238)

संग्रह के अंतिम खंड की कविताओं को कवि ने 'जीवन -त्रासदी' शीर्षक के अंतर्गत रखा है। साथ ही मानों इसकी व्याख्या करते हुए इन्हें 'अनुभूतियां : एक हताश व्यक्ति की' कहा है। यह प्रश्न बरबस पाठकों के अंतर्मन में उठ खड़ा होता है कि जिंदादिली के इतने जोशीले गीत गानेवाला जिजीविषा से लबालब भरा यह कवि अचानक इतना हताश या निराश कैसे हो सकता है। इसका जवाब यही हो सकता है कि जीवन की सांध्य वेला में संगीविहीन कवि अपने-आप को अकेला महसूस करता है और हताशा से भरकर अपनी अनुभूतियों को कविताओं में पिरो देता है। जिंदगी की इन कड़वी अनुभूतियों की विडंबना को वह कुछ यूं उकेरता है -

जिंदगी सुकून थी ; कराह बन गयी,
जिंदगी पवित्रता थी ; गुनाह बन गयी,
न्याय -सत्य-पक्ष की तरफ रही सदा
जिंदगी : फरेब की गवाह बन गई। (पृ. 249)

जीवन के अंतिम पड़ाव में जब शायद मृत्यु की प्रतीक्षा के सिवा और कुछ शेष नहीं रहता कवि अपने जीवन की सार्थकता और निरर्थकता पर विचार करते हुए कभी खुशी तो कभी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विपाद का अनुभव करते हुए कभी-कभी बेहद तटस्थ भाव से कह उठता है -

जिंदगी-
गुजर गयी
कराहते -कराहते।
आह, जी लिए
अनेक वर्ष
चाहते, न चाहते। (पृ.266)

पूरी व्यतीत जिंदगी किसी चलचित्र की तरह आंखों के सामने से गुजरती है और कवि इस भाव को कविता में पिरोने से खुद को रोक नहीं पाता-

दिख रहा अतीत
साफ फिल्म की तरह-तरह
सवाक रंगमय सजीव! (पृ. 263)

अंतिम खंड की इन कविताओं में एक उदासी या वैराग्य का भाव सहज रूप से पाठकों को भी उदास कर जाता है। कवि अपनी यादों की गठरी खोलकर बीती स्मृतियों और रीते स्वप्नों से अपना मन बहलाते हुए उदास तो दिखाई देता है पर हताश नहीं होता। महाकवि निराला की प्रसिद्ध कविता की पंक्तियों की बरबस स्मृति 'न होगा मेरा अंत' हमें आलोच्य संग्रह की अंतिम कविता परिचय की पंक्तियों को पढ़ते हुए आती है-यह

हारा नहीं हूं।
मैं अभी हारा नहीं हूं।
हां, कभी हारा नहीं हूं। (पृ. 268)

वस्तुत: शरीर भले ही थक जाए पर इंसान का मन कभी नहीं थकता। वह जिंदगी की अंतिम बूंद तक निचोड़ लेना चाहता है। कवि का हृदय तो साधारण मनुष्यों की तुलना में अधिक संवेदनशील ही नहीं होता बल्कि भरपूर जीवंत भी होता है इसीलिए तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद वह हार नहीं मानता। थोड़ी देर के लिए निराशा के बादल उसे घेरते जरूर हैं लेकिन जल्दी ही अपनी अपार जीवनी शक्ति से वह उस निराशा पर विजय प्राप्त कर लेता है।

वस्तुत: कहा जा सकता है कि महेन्द्र भटनागर आस्था और जिजीविषा के जीवंत कवि हैं जो जनपक्षधरता की मशाल जलाए रखते हैं। साथ ही कविता उनके लिए सिर्फ शौक नहीं बल्कि एक समर्पण या प्रतिबद्धता भी है और इसी कारण वह अपनी निजी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति के साथ ही विशाल मानव समाज की अनुभूतियों, विषमताओं और संघर्षों को पूरी प्रतिबद्धता के साथ उकेरते हैं। आम जन के प्रति प्रतिबद्ध जनवादी कवि एक सुंदर, शोषण मुक्त और प्रेम मंडित समाज का सपना देखता है लेकिन सामाजिक और निजी जीवन में जब यह स्वप्न पूरा नहीं होता तो उसका आक्रोश बरबस कविता में लाचारी बन कर बह उठता है। लेकिन परिवर्तन का आकांक्षी कवि इस विश्वास की डोर से अपनी सांसों की डोर बांधकर जीता है कि कभी न कभी तो मौसम बदलेगा ही, जिंदगी का भी और देश-दुनिया का भी-

एक दिन
सच, रिमझिमाएगा
अनेक-अनेक मेघों से लदा
आकाश!
देखेंगे हजारों लाल-लाल
पलाश!

सृजन-यात्रा (काव्य संकलन)
महेंद्र भटनागर
इंडिया पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली
2016
मूल्य : 495/-

संपर्क :
मो : 09883224359, 09163911021
(कोलकाता)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महेन्द्र भटनागर की कविताएं

1) हिम्मत न हारो !

हिम्मत न हारो !
कंटकों के बीच
मन-पाटल खिलेगा एक दिन,
हिम्मत न हारो!

यदि आँधियाँ आएँ तुम्हारे पास
उनसे खेल लो,
जितनी बड़ी चट्टान वे फेंकें तुम्हारी ओर
उसको झेल लो!

तुम तो जानते हो
आजकल बरसात के दिन हैं;
गगन में खलबली है,
दौर-दौरा है घटाओं का,
तुम्हारे सामने अस्तित्व हो उनका
सदाओं का!

लरजतीं बिजलियाँ;
माना,
तुम्हारे सामने हो खेल
आतिशबाज़ियाँ नाना!
निरंतर राह पर चलते रहोगे तो
तुम्हारा लक्ष्य तुमसे आ मिलेगा एक दिन!
हिम्मत न हारो!
कंटकों के बीच
मन-पाटल खिलेगा एक दिन!
हिम्मत न हारो!

2) अप्रतिहत

मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूँगा
आज जीवन में हुआ असफल भले ही !
एक पल को साधना की भावना सोयी नहीं,
और जाऊँ हार, ऐसी बात भी कोई नहीं,
मैं नहीं सुनसान राहों पर थकूँगा
दूर, बेहद दूर हो मंज़िल भले ही !

आज छाया है अमावस-सा अँधेरा सब तरफ़,
पर, अभी कल मुसकराएगा सबेरा सब तरफ़,
मैं न मन की पंगु दुविधा में रूकूँगा
पास में चाहे न हो संबल भले ही!

3) साथी

जो जीवन की विपदाओं को
हँस-हँस झेल लिया करते हैं
केवल वे मेरे साथी हैं!

शूल-ग्रस्त, बीहड़, पथरीली
शून्य डगर पर बड़ा अँधेरा,
पर, चलते, नयनों में भर जो
जगमग करता नया सबेरा,
निर्भय बन जीवन और मरण
से जो खेल किया करते हैं
केवल वे मेरे साथी हैं!

जब सिर पर क्रोधित हो-हो कर
गरजा करतीं तेज हवाएँ,
हो जातीं सभी विफल, भावी
की जब आशा-आकांक्षाएँ,
तब जो उस घोर निराशा में
पापड़ बेल लिया करते हैं
केवल वे मेरे साथी हैं!

बाधाओं से टकरा क्षण-भर
जो सीख न पाये हैं रूकना,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मंज़िल पा जाने से पहले
जो जान न पाये हैं थकना,
जीवन भर मन की तरुणाई
से जो मेल किया करते हैं
केवल वे मेरे साथी हैं!

4) हॉकर से

यह क्या
रोज़-रोज़
तरबतर खून से
अख़बार फेंक जाते हो तुम
घर में मेरे?

*

तमाम हादसों से रँगा हुआ
अंधाधुंध गोलियों के निशान
पृष्ठ-पृष्ठ पर स्पष्ट उभरते!

*

छूने में... पढ़ने में इसको
लगता है डर,
लपटें लहराता
जहर उगलता
डसने आता है अख़बार!

*

यद्यपि
यही ख़बर सुन कर
सोता हूँ हर रात
कि कोई कहीं
अप्रिय घटना नहीं घटी,
तनाव है
किन्तु नियंत्रण में है सब !

5) वोटों की दुष्टनीति

दलितों की गलियों से
कूचों और मुहल्लों से,
उनकी झोपड़पट्टी के
बीचों-बीच बने-निकले
ऊबड़-खाबड़, ऊँचे-नीचे
पथरीले-कँकरीले सँकरे पथ से
निकल रहा है
दलितों का
आकाश गुँजाता, नभ थर्राता
भव्य जुलूस!

*

नहीं किराये के
गलफोडू नारेबाज़ नक़लची
असली हैं, सब असली हैं जी
मोटे-ता़जे, हट्टे-कट्टे
मुश्टंडे-पट्ठे,
कुछ तोंद निकाले गोल-मटोल
ओढे महँगे-महँगे खोल!

*

सब देख रहे हैं कौतुक
दलितों के
नंग-धड़ंग घुटमुंडे
काले-काले बच्चे,
मैली और फटी
चड्डी-बनियानों वाले
लड़के-फड़के,
झोंपड़ियों के बाहर
घूँघट काढ़े दलितों की माँ-बहनें
क्या कहने !
चित्र-लिखी-सी देख रही हैं,
पग-पग बढ़ता भव्य जुलूस,
दलितों का रक्षक, दलितों के हित में
भरता हुँकारें, देता ललकारें
चित्र खिँचाता / पीता जूस!
निकला अति भव्य जुलूस!

कल नाना टीवी-पर्दों पर
दुनिया देखेगी
यह ही, हाँ यह ही
दलितों का भव्य जुलूस !

*

अफ़सोस!
नहीं है शामिल इसमें
दलितों की टोली,
अफ़सोस!
नहीं है शामिल इसमें
दलितों की बोली!

6) इच्छित

घूमा बहुत हूँ
घन-अँधेरे में,
भटका बहुत हूँ
मन-अँधेरे में!

लिए
तम-राख लथपथ तन,
अविराम घूमा हूँ,
दिन-रात घूमा हूँ!

अब तो
रोशनी की धार में
जम कर नहाऊंगा,
सत्य के
आलोक-झरने में उतर
शेष जीवन-भर नहाऊंगा!

रोशनी में डूब कर
रोशनी में तैर कर
तन बहाऊंगा
मन बहाऊंगा
जी - भर नहाऊंगा!

7) अदम्य

दूर-दूर तक
छाया सघन कुहरा
कुहरे को भेद
डगर पर बढ़ते हैं हम!

चट्टानों ने जब-जब
पथ अवरुद्ध किये
चट्टानों को तोड़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नयी राहें गढ़ते हैं हम!

ठंडी तेज़ हवाओं के
वर्तुल झोंके आते हैं
तीव्र चक्रवातों के सम्मुख
सीना ताने
पग-पग अड़ते हैं हम!

सागर-तट पर टकराता
भीषण ज्वारों का पर्वत
उमड़ी लहरों पर चढ़
पूरी ताक़त से लड़ते हैं हम!

दरियाओं की बाढ़ें
तोड़ किनारे बहती हैं
जल भँवरों / आवेगों को
थाम;
सुरक्षा-यान चलाते हैं हम!

काली अंधी रात क़यामत की
धरती पर घिरती है जब-जब
आकाशों को जगमग करते
आशाओं के / विश्वासों के,
सूर्य उगाते हैं हम!
मणि-दीप जलाते हैं हम!

ज्वालामुखियों ने जब-जब
उगली आग भयावह
फैले लावे पर
घर अपना
बेख़ौफ़ बनाते हैं हम!

भूकम्पों ने जब-जब
नगरों गाँवों को नष्ट किया
पत्थर के ढेरों पर
बस्तियाँ नयी
हर बार बसाते हैं हम!

परमाणु-बमों / उद्‌जन-शस्त्रों की
मारों से
आहत भू-भागों पर
देखो कैसे
जीवन का परचम फहराते हैं हम!
चारों ओर
नयी अंकुराई हरियाली
लहराते हैं हम!

कैसे तोड़ोगे इनके सिर?
कैसे फोड़ोगे इनके सिर?

दुर्दम हैं,
इनमें अद्‌भुत ख़म है!

काल-पटल पर अंकित है
'जीवन-अपराजित है!'

संपर्क :
मो :-08109730048
(ग्वालियर)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विष्णुचन्द्र शर्मा

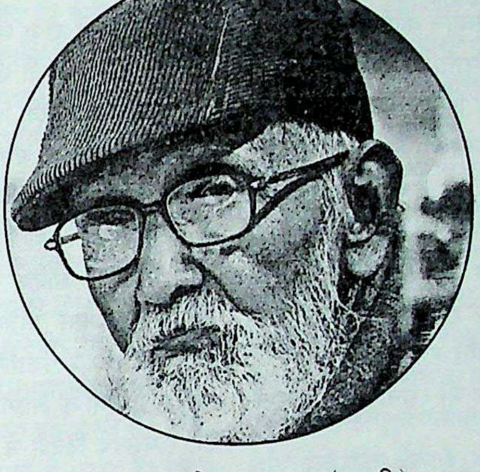

जन्म : 1 अप्रैल, 1933 (काशी)

शिक्षा : एम.ए.एस. (पूर्वार्द्ध), काशी विद्यापीठ (1955)
एम.ए. (हिंदी), काशी हिंदू विश्वविद्यालय (1957)

प्रकाशित कृतियां : मौन शांत सेंदुर जल का, आकाश विभाजित है, तत्काल, अंतरंग, नयन हैं हिंदुस्तानी, अनुबंध, धीरज का रथ, अनुभव की बात कबीर कहे, तलाश बसंत की, अव्वल तो मैं सनद हूँ, समय है परिपक्व (कविता) ; तालमेल, मंजरी, चाणक्य की जयकथा, बिडंबना, दिल को मला करे है (उपन्यास) ; अंत की शुरुआत, बेजुबान (नाटक) ; अपना पोस्टर, दोगले सपने (कहानी) ; यात्री का देश (यात्रा) ; इन लोगों के मध्य, घराना, अभिन्न, हम अकेले कहाँ हैं, मनमोहन ठाकौर, चुप हैं यों (संस्मरण) ; अग्निसेतु (नजरुल), स्वराज के मंत्रदाता (तिलक), मुक्तिबोध की आत्मकथा, समय साम्यवादी (राहुल), कबीर की डायरी (जीवनी) ; राहुल का भारत, काल से होड़ लेता शमशेर, नागार्जुन : एक लंबी जिरह, गालिब और निराला : मेरा काव्यानुमान (आलोचना) ।

संपादित कृतियां : पंडित रामनारायण मिश्र स्मृति ग्रंथ, यथार्थ से साक्षात्कार यशपाल, अमृतलाल नागर, रेणु, अमरकांत, नया मानदंड आचार्य रामचंद्र शुक्ल अंक, नया मानदंड शिवदान सिंह चौहान अंक, अरघान (त्रिलोचन की कविताएं), शिवदान सिंह चौहान की तीन पुस्तकों का संपादन।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फैशनपरस्त मार्क्सवादी बदल गए, परन्तु विष्णुचन्द्र शर्मा नहीं बदले

विष्णुचन्द्र शर्मा

संघर्षशील सर्जक विष्णुचन्द्र शर्मा

अमीर चंद वैश्य

अपने लेखन पर जीवित रहने वाले विष्णुचन्द्र शर्मा ने कभी समझौता नहीं किया और न सच बात कहने से हिचके। निर्भीकता उनके तेजस्वी व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है।

हिन्दुस्तानी संगीत के घरानों के समान कविता का भी एक घराना है, जिसे कविता का बनारस घराना माना गया है, कवि विष्णुचन्द्र शर्मा द्वारा। उनके मित्र कवि विजेन्द्र ने इस कथन का समर्थन भी किया है-''यह घराना वाल्मीकि, भवभूति, तुलसी, निराला, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, नागार्जुन, केदार बाबू, कुमारेन्द्र तथा ज्ञानेन्द्रपति तक फैला-पसरा है। यह महावृक्ष है जिसकी जीवन्त शाख हैं स्वयं विष्णुचन्द्र शर्मा जो स्वयं पका वृक्ष होने को हैं।'' विजेन्द्र का यह कथन ठीक है। विष्णुचन्द्र शर्मा अब सचमुच पके वृक्ष हैं जो अपने कर्मठ और रचनाशील जीवन के चौरासी शरद पूरे कर चुके हैं और आज भी रचनाकर्म में संलग्न हैं।

विष्णुचन्द्र शर्मा के संवेदनशील वामपंथी व्यक्तित्व के विकास में अनेक कारक सहायक हुए हैं। स्वतंत्रता सेनानी कृष्णचन्द्र शर्मा के आत्मज होने के नाते वह स्वाधीन चेतना के ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने समाज को शोषण मुक्त देखना चाहते हैं। अपनी माँ की उदार ममता ने उन्हें और अधिक संवेदनशील बनाया है। उनमें कबीर जैसा अक्खड़पन और फक्खड़पन है। तुलसी, गालिब और निराला जैसी गहरी मानवीय करुणा है। राहुल और नागार्जुन जैसा घुमक्कड़पन है। मुक्तिबोध जैसा रचनात्मक जोश है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसी वैचारिक निष्ठा है। शिवदान सिंह चौहान, डॉ. रामविलास शर्मा और त्रिलोचन जैसी वामपंथी आस्था है। शमशेर जैसा समर्पण भाव है। प्रेमचन्द के समान महाजनी सभ्यता के प्रति गहरी घृणा है। अपने देश-काल की सामाजिक गतिकी का विश्लेषण करने का नीर-क्षीर विवेक है।

बनारस के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिवेश ने उन्हें संपादन कला की ओर प्रेरित किया। उन्होंने 1957 में कवि नामक लघु पत्रिका का संपादन और प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसका पहला अंक जनवरी 1957 में छपा और कुल दस अंक प्रकाशित हुए, जिनमें त्रिलोचन, मुक्तिबोध आदि दस कवियों की कविताएँ छपीं और आलोचना ने उनका महत्व रेखांकित किया। उल्लेखनीय है कि मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'ब्रह्मराक्षस' का पहला ड्राफ्ट इसी पत्रिका में छपा था। इसी पत्रिका में डॉ. नामवर सिंह ने मुक्तिबोध और लम्बी कविता का महत्व बताया। इसके अलावा इस पत्रिका में अनेक हिन्दी कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुईं और साथ ही साथ जनकवियों की भी। भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से कविताओं के अनुवाद भी छपे। इस पत्रिका ने युवा साहित्य का विष्णुचन्द्र शर्मा की संपादन कला और आलोचनात्मक विवेक उजागर किया जो आगे चलकर उनके संपादित 'सर्वनाम' पत्रिका के अंकों में भी परिलक्षित होता है। 'कवि' पत्रिका के प्रकाशित अंक देखकर नलिनविलोचन शर्मा ने विष्णुचन्द्र शर्मा के आलोचनात्मक विवेक की प्रशंसा की थी और डॉ. रामअवध द्विवेदी ने कहा था-''कवि वह काम कर रहा है, जिस पर लोग बाद में इतिहास लिखेंगे।'' (पुस्तक पकी आँखें, पृ. 52)। अपने स्तम्भ कभी-कभार (जनसत्ता) में अशोक वाजपेयी ने भी कवि को याद किया है। वह लिखते हैं-''प्राय: हर अंक में हिन्दी की किसी बोली जैसे-भोजपुरी, अवधी, मगही आदि में भी एकाध रचना होती थी और हिंदीतर भारतीय और विदेशी भाषा से हिन्दी में अनुवाद भी। इलियट, लेर्मोतोव, होची मिन्ह, नाजिम हिकमत, कीट्स, निकोला वाप्तसरोव, रिल्के, लोर्का, बोदलेयर आदि के अनुवाद कवि में आए थे।'' (पुस्तक पकी आँखें, पृ. 68)

'कवि' पत्रिका ने विष्णुचन्द्र शर्मा को बनारस में कवि के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। बनारस के लोग उन्हें कवि कहकर संबोधित करते थे। इसलिए उन्होंने इस शब्द को सार्थक करने के लिए कवि-कर्म अपनाया, जो आज तक जारी है। सन् 1959 में उनका पहला कविता संकलन 'मौन सेंदुर शान्त', 'जल का प्रकाश में आया'। और आकाश विभाजित है (1965), तत्काल (1980), अन्तरंग (1980), नयन है हिन्दुस्तानी (1983), अनुबंध (1991), धीरज का रथ (1998), अनुभव की बात कबीर कहै (2000), तलाश वसन्त की (2001), अव्वल तो मैं सनद हूँ (2001), समय है परिपक्व (2003), मेरा एक बिम्ब बचा है (2009), शान्तिनिकेतन से हटकर (2011), यात्रा में कविताएँ (2013), कविता एक मोर्चा है (2013) शीर्षक संकलनों ने उनका कविकर्म

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जारी रखा है।

नई कविता और अकविता के दौर से वर्तमान समय तक विष्णुचन्द्र शर्मा की यह रचनाशीलता इस बात का सबूत है कि उनकी चेतना जनोन्मुखी है। उन्होंने मानवीय करुणा से प्रेरित होकर अपने पूर्ववर्ती लोकधर्मी कवियों निराला, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध के समान जनविरोधी राजसत्ता की नीतियों का रचनात्मक प्रतिरोध निरन्तर किया है और जनजीवन की वास्तविकता का संधान भी। परन्तु खेद की बात यह है कि उनका ठीक-ठीक मूल्यांकन अभी तक शायद नहीं हुआ है। उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में अपने देशकाल के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक अन्त:विरोधों का निरूपण आलोचनात्मक दृष्टि से किया है।

विष्णुचन्द्र शर्मा ने देश-विदेश की यात्राएँ करके जीवन-जगत् के अनेक अनुभव संचित किए और उन्हें अपनी कविताओं और गद्य रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। गद्य में उन्होंने स्वराज के मंत्रदाता तिलक से संवाद किया है और अग्निसेतु में प्रसिद्ध बांग्ला कवि काजी नजरुल इस्लाम के जीवन से साक्षात्कार। मुक्तिबोध की आत्मकथा में मुक्तिबोध की जीवन कथा वर्णित की है। कबीर की डायरी लिखकर कबीर को अपने समय से जोड़ा है। समय साम्यवादी में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की क्रियाशील जीवनयात्रा पाँच पर्वों में विस्तार से लिखी है। संस्मरण संकलन अभिन्न में उन्होंने निराला, राहुल, नागार्जुन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पिताश्री कृष्णचन्द शर्मा, ठाकुर प्रसाद सिंह, त्रिलोचन, जगत शंखधर, शमशेर बहादुर सिंह, नरेन्द्र शर्मा, कथाकार जितेन्द्र, लेखक मित्र रमाकान्त, कथाकार विद्यासागर नौटियाल, मनमोहन, ठाकौर, हरिशंकर परसाई के प्रेरक और मार्मिक जीवन प्रसंगों का वर्णन करके आत्मीय संस्मरण रचे हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक संस्मृत व्यक्तियों को पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाता है।

इनके अलावा विष्णुचन्द्र शर्मा के छह उपन्यास, दो कहानी संकलन, दो नाटक और संस्मरणों के कई संकलन प्रकाश में आ चुके हैं। वह सहृदय आलोचक भी हैं। काल से होड़ लेता शमशेर, राहुल का भारत, गालिब और निराला : मेरा काव्यानुमान, नागार्जुन : एक लंबी जिरह, रामविलास शर्मा का लोकपक्ष, त्रिलोचन का कविकर्म आलोचनात्मक पुस्तकें हैं, जो शर्माजी के काव्य-विवेक और विवेचन से साक्षात्कार कराती हैं। शर्मा जी वर्गीय जीवन-दृष्टि से कविता रचते हैं और आलोचना भी लिखते हैं। उनकी आलोचना अपने समय से निर्भीक संवाद है।

विष्णुचन्द्र शर्मा ने अपने अग्रज साहित्यकारों -आचार्य रामचन्द्र -शुक्ल, विजय शंकर मल्ल, शिवदान सिंह चौहान की गद्य कृतियों का संपादन भी किया है। वह जिस उत्साह से हिन्दी के कवियों और लेखकों से संवाद करते हैं, उसी जोश से विदेशी कवियों की लोकधर्मी रचनाओं का वैशिष्ट्य उजागर करते हैं। उनके द्वारा संपादित जमा खाता में चेखव, मार्खेज आदि के साथ हिन्दी कहानीकारों की कहानियाँ संकलित हैं।

अपने लेखन पर जीवित रहने वाले विष्णुचन्द्र शर्मा ने कभी समझौता नहीं किया और न सच्च बात कहने से हिचके। निर्भीकता उनके तेजस्वी व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है। प्रसिद्ध कवि त्रिलोचन ने विष्णुचन्द्र शर्मा के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ एक सॉनेट में इस प्रकार शब्दबद्ध की हैं- ''मेरे दुख की आँच देख कर तुम भागे/ नहीं विष्णु, जब समय मिला अपने से आए/ हालचाल पूछा, मेरे निर्जन पर छाए/ रहे। तुम्हारे भीतर शुद्ध भाव थे जागे/ कवि का आदर करे किन्तु मानव को त्यागे/ तुम हो उनमें नहीं। विभव कविता ने पाए/ मानव से ही, तुमने मानव के गुण गाए/ मन में रचना में मानव को रक्खा आगे।/ आँखों की वह ज्योति नहीं करुणा की बाँहें/ संतप्तों को सुख देती हैं, पाँव तुम्हारे/ तुमको ले जाते हैं, जहाँ तुम्हें जाना है।/ अपनी-अपनी ओर बुलाने वाली राहें/ तुम्हें खींच लेती हैं, कभी नहीं तुम हारे/ तुम को पथ पर दे दे कर जीवन पाना है। (फूल नाम है एक, पृ. 29)

मैं समझता हूँ कि इस रचना से बेहतर और कोई भी न तो कविता है और न ही कोई गद्यांश, जिसमें विष्णुचन्द्र शर्मा के पर्यटनशील घुमक्कड़ और करुणापरायण व्यक्तित्व की विशेषताएँ इस खूबी और सादगी से बताई गई हों। मानवीय करुणा से प्रेरित होकर शर्माजी ने उन अनेक कवियों-लेखकों पर कविताएँ रची हैं जो अपने जीवन में लोकोन्मुखी रहे हैं। शर्माजी ने कबीर, तुलसी, निराला, राहुल, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, चन्द्रबली सिंह, जगत शंखधर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, देवेन्द्र सत्यार्थी, डॉ. रामविलास शर्मा जैसे रचनाकारों पर प्रभावपूर्ण कविताएँ रची हैं।

शर्माजी का स्वभाव कबीर के समान अक्खड़ और फक्कड़ है। इसीलिए वह स्वयं को कबीर का चेला मानते हैं। वह कहते हैं- ''दरद दिवाना बावरा अलमस्त कबीरा/ चेला मैं, वह गुरु कला-कविता का हीरा/ हिरदय में सहबोध है जग में है धोखा/ पीने को है जहर, शहर रंगीन झरोखा।''... ''बंदे को कविता मिली फिर कहाँ तबाही।/ हूँ जनवादी। खल दरबारी राग गवाही।''(नयन है हिन्दुस्तानी, पृ. 64)

अपने प्रिय रचनाकारों पर रचित शर्माजी की कविताओं की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रमुख विशेषता है अपने लोकोन्मुखी रचनाकारों से गहरा रागात्मक सम्बन्ध, जो उनकी रचनाशीलता को हिन्दी जाति की परम्परा से जोड़ता है और अपने युगबोध के अनुरूप रचने को प्रेरित करता है। यही कारण है कि उन्होंने अपने प्रिय रचनाकारों के रंग में स्वयं को अनुरंजित करके अपना निजी स्टाइल विकसित किया है, जिसमें करुणा से प्रेरित सात्विक क्रोध है। अमर्ष और व्यंग्य है। वह हिन्दुस्तान की भूखी-नंगी किन्तु संघर्षशील जनता के पक्षधर हैं। उसकी बुलन्द आवाज हैं। इसलिए वह विश्वास भरे स्वर में कहते हैं- ''व्यापक अनुभव गाथा गहरी, जनता हिन्दुस्तानी।/ वाम रसायन नयन, नयन है हिन्दुस्तानी।''(नयन है हिन्दुस्तानी, पृ. 28) अतएव वह आजाद हिन्दुस्तान के पूँजीवादी शासकों की तीखी आलोचना बेहिचक करते हैं। वर्गीय दृष्टि होने के कारण वह शासकों की वास्तविकता उजागर करते हुए कहते हैं-''जग धंधा रे जग धंधा, दलमार बन गया अंधा।/ पैसों की माला लपटानी, प्रान्त है फंधा।'' (वही, पृ. 30) इन पंक्तियों में धंधा शब्द तुलसी की अर्धाली का स्मरण करा रहा है, जिसमें धर्म का धंधा करनेवालों को धिक्कारा गया है। आज के हिन्दुस्तान में राजनीति और धर्म का गठबंधन हुआ है कि राजनीति धर्म के नाम पर नफरत का जहर पूरे देश में फैला रही है। आज के वर्तमान शासकों ने अपने बड़बोलेपन से पूरे हिन्दुस्तान को साम्प्रदायिक हिंसा की आग में झोंक दिया है। इसी हिंसा के कारण हिन्दुस्तान का बँटवारा हुआ था और आजाद हिन्दुस्तान में दंगों की आग पूरी तरह शान्त नहीं हुई। विष्णुचन्द्र शर्मा इस साम्प्रदायिकता के सख्त विरोधी हैं। इस सन्दर्भ में उनकी लम्बी कविता गुजरात 2002 उल्लेखनीय है। गुजरात के साम्प्रदायिक दंगों पर अनेक कविताएँ प्रकाश में आई हैं। परन्तु शर्माजी की उक्त कविता जितनी प्रभावपूर्ण है दूसरे कवियों की कविताएँ उतनी प्रभावपूर्ण नहीं हैं। विजेन्द्र ने इस कविता का महत्व बताते हुए ठीक लिखा है-''गुजरात 2002 की पूरी संरचना में हमारे समय का भयावह त्रास बड़े खुदरे धागे से बुना हुआ है। ध्यान रहे बहुत कम कवि हैं जो देश की इतनी बड़ी त्रासदी के भयावह चित्र को कविता के स्थापत्य में बुन सकें। दरअसल यह प्रदीर्घ कविता गुजरात की महादुखांतिका पर अद्भुत सृजन है। इसमें महाकाव्यात्मक औदात्य प्रगीत की वेगमयता में अनुस्यूत है।'' (समय है परिपक्व में संकलित आलेख, विष्णुचन्द्र शर्मा का कवि, पृ. 09)

शर्माजी की यह कविता गहरी मानवीयता से प्रेरित है। उन्होंने गहरी सद्भावना से सन् 2002 में घटित हुए गुजरात में साम्प्रदायिक दंगों की वास्तविकता तीखे व्यंग्यात्मक ढंग से उजागर की है। इसमें उन्होंने तत्कालीन त्रासद घटना प्रसंगों को कलात्मक ढंग से संयोजित किया है। दंगों की मार से पीड़ित अनेक साधारण जनों के जीवन की त्रासदी पाठक को आन्दोलित कर देती है। कबीर के समान धार्मिक पाखंड का विरोध करते हुए शर्मा जी ने बड़ी धारदार भापा में लिखा है, चुभनेवाली बातें इस प्रकार लिखीं हैं-''एक मुसलमान चाहिए देश में मरने के लिए/ दूसरा मुसलमान चाहिए राष्ट्रपति भवन को सजाने के लिए।/ यह बयान है, या/ जगन्नाथ का रथ सजाया जा रहा है, पुरी में।/ कोई मुसलमान नहीं था रथ को खींचता या/ रथ के पीछे दौड़ता।/ यहाँ लेखक, बुद्धिजीवी, पत्रकार बयान/ दे रहे हैं, या पोस्टरों से भरी दीवार पर/ अपने एक नूर मोहम्मद का चेहरा/ बना रहे थे। चेहरे के नीचे लिखी थी इबारत/ एक मुसलमान चाहिए देश को कत्ल करने के लिए।/ दूसरा मुसलमान चाहिए/ राष्ट्रपति भवन को सजाने के लिए।/ तीसरा मुसलमान चाहिए आडवानी का जूता चमकाने के लिए।/ तुम कौन से मुसलमान हो नूर मोहम्मद।''(समय है परिपक्व, पृ. 47)

यह पूरी कविता तत्कालीन भारतीय जनता पार्टी के शीर्ष नेताओं पर तीखा व्यंग्य है। उस समय अटल विहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री थे और डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भारत के राष्ट्रपति। प्रधानमंत्री वाजपेयी के समझाने पर भी तत्कालीन गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने राजधर्म का निर्वाह ईमानदारी से नहीं किया। गुजरात जलता रहा और अपराधी जश्न मनाते रहे। शर्माजी की यह कविता अपनी रचनाशीलता से साम्प्रदायिक सौहार्द का सन्देश देती है। इस कविता की संरचना में शर्माजी ने वर्णनात्मक और नाटकीय शैलियों का कलात्मक प्रयोग किया है। यह कविता इस बात का भी प्रमाण है कि रचना का कथ्य यदि जीवन की वास्तविकता से भरा हुआ है तो आवेगपूर्ण गद्य में भी उत्कृष्ट कविता संभव है। यह कविता शमशेर की प्रसिद्ध रचना अम्न का राग का स्मरण अनायास कराती है कि यह भी आवेगपूर्ण गद्य में रची हुई प्रभावपूर्ण लम्बी कविता है।

विष्णुचन्द्र शर्मा का स्वभाव पर्यटनशील रहा है। उन्होंने देश, प्रदेश एवं विदेश की अनेक यात्राएँ करके अनुभव संचित किए और उन्हें कविताओं में रूपायित किया है। उनके एक संकलन का शीर्षक है यात्रा में कविताएँ। इसकी भूमिका में वह लिखते हैं-''मैं यात्रा में कविताएँ लिखता रहा हूँ। कभी स्कॉटलैंड घूमते समय रॉबर्ट बर्न्स की कविताएँ भीतर थीं। वह प्रेमी था, मैं भीतर से बाहर आता और कविताएँ कागज पर उतर आतीं। तब स्कॉटलैंड से न्यूयार्क पहुंचा था 1986 में और अनुबन्ध की कविताएँ आज भी याद हैं। 2009 में पेरिस, न्यूयार्क, वाशिंगटन, लॉस एंजेल्स,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुचामा से मैक्सिको गया था, वहाँ से हयूस्टन होते हुए बर्लिन पहुंचा था।''

यात्राओं ने विष्णुचन्द्र शर्मा को देश की संकुचित सीमाओं से बाहर निकालकर विश्वमानव में रूपान्तरित किया है। उनका संवेदनशील हृदय और अधिक उदार हुआ है। वह यात्राओं में भारतीय संस्कृति को विदेश तक ले जाते हैं और वहाँ की संस्कृति के मानवीय रूप को अपने व्यक्तित्व में समाहित करते हैं। लन्दन की खुशहाली के पीछे बदहाली का जो कारण छिपा है, उससे उनका दिल दर्द से भर जाता है। वह कालिदास के मेघ चकित हैं/ चेकोस्लॉव के आसमान में उन्हें आभास होता है कि कालिदास के मेघ चकित है/ आजादी के बंधु/ आयरिश मेघों से मिल/ कालिदास के मेघों ने/ बाँहों में भर कर/ सबसे अपना हृदय जुड़ाया।/ कहा एक के बाद दूसरे मेघबंधु से/ बंधु/ कभी भारत भी आना।''(अनुबन्ध पृ. 13) यह है विष्णुचन्द्र शर्मा का विश्वमानव रूप जो सांस्कृतिक राजदूत का काम संपन्न करता है।

शर्माजी यात्रा के दौरान अपने मन की डायरी पर बाहर और भीतर के अनुभव अंकित करते रहते हैं। कविताओं में वह कभी स्वयं से बात करते हैं, कभी प्रकृति से। कभी विदेशी मित्रों से। वायुयान से यात्रा करते हुए उन्हें ऐसा महसूस होता है-''अभी तक/ सूरज था मेरे साथ/ अभी तक/ रोशनी से भरा था आकाश/ अभी तक जहाज के नीचे/ बगीचा था/ रोशनी का/ बिछा।/ अब मैं अँधेरे का बन्दी हूँ।/ मेरे साथ/ जहाज अब/ अँधेरे को बेध रहा है।''(मेरा एक बिम्ब बचा है, पृ. 26)

इस छोटी सी कविता में कवि ने प्रकाश से अँधेरे में वायुयान के पहुँचने का गतिशील बिम्ब अंकित किया है। यहाँ यह ध्वनि भी है कि वर्तमान सभ्यता के दौर में आम आदमी अँधेरे के कारागार में बन्द है, जिसे प्रकाश से बेधना जरूरी है। यहाँ निराला की कविता अनायास याद आ रही है-''गहन है यह अन्धकारा/ स्वार्थ के अवगुंठन हमारा।''

विष्णुचन्द्र शर्मा ने भारत के अनेक राज्यों की यात्राएँ की हैं, जिनमें दक्षिण भारत के अलावा पूर्वोत्तर राज्यों के नागालैंड, शिलांग, गुवाहाटी, पहलगाँव, नारायणपुर, गंगोत्री आदि शामिल हैं। इन कविताओं में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों और मेहनतकश लोगों के प्रति गहरा अपनापन व्यक्त किया है। अपने संकलन 'शान्तिनिकेतन से हटकर' कि कविताओं में भी शर्माजी ने यात्राओं के प्रभावपूर्ण संस्मरण रचे हैं। ट्रेन में बैठकर वह बाहर के परिदृश्य दूर से और निकट से देखते हैं। उन्हें अपने स्टाइल में रूपायित करते हैं। सूरज की दस्तक और धूप की इबादत ऐसी ही प्रभावपूर्ण कविताएँ हैं। पहली कविता में छोटे-छोटे वाक्यों से परिदृश्य प्रत्यक्ष किया गया है-''ट्रेन की खिड़की पर/ सूरज दस्तक दे रहा है।/ जंगल के हर दरख्त हँस रहे हैं।/ घाटी में इत्मीनान से चर रही हैं बकरी-भेड़/ झोपड़ी के बाहर गाढ़े रंग की साड़ी में/ लुगाई हँस रही है।/ खेत कोड़कर किसान बीड़ी सुड़क रहा है।/ पेड़ हँस रहे हैं धूप में/ बस अकेला सूरज/ ट्रेन की खिड़की पर दस्तक दे रहा है।'' (पृ. 13)। यह कविता निरलंकृत है और स्वभावोक्ति का उत्तम उदाहरण भी, जो लोकधर्मी कविता की प्रमुख विशेषता है। दूसरी कविता इबादत में कवि का सम्बन्ध भाव व्यक्त हुआ है। वातानुकूलित बर्थ के यात्री का नाम-पता और गंतव्य बता रही है। प्रात: काल है। सूरज बाहर चमक रहा है। कवि पदों की आवृत्ति से गतिशील धूप का चमकदार बिम्ब प्रत्यक्ष कर देता है-''सूरज ने मुट्ठी भर धूप/ मेरी खिड़की पर फेंक दी।/ मुट्ठी भर धूप पेड़ पर अटकी रही।/ मुट्ठी भर धूप नदी में पसरी रही/ सूरज बिना कहे/ धूप की इबादत सबको पढ़ाता रहा।'' (पृ. 14)। यहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ ध्वनित हो रहा है कि ट्रेन में यात्री अपने-अपने धर्म के अनुसार अपने ईश्वर या खुदा से इबादत कर रहे हैं। परन्तु सवेरे की धूप समान भाव से सब के लिए गरमाहट की इबादत करती है।

टीका की रस्म शीर्षक कविता का सम्बन्ध भी यात्रा से है। संवादात्मक शैली में रचित यह कविता भाई-बहन का आत्मीय सम्बन्ध व्यक्त कर रही है। यात्रा में भाई सोचता है-''क्यून एक्सप्रेस में मिलेगा कहाँ अक्षत/ कौन मेरे माथे पर लगाएगी रोली/ थाल में ढेर सारी मिठाई रखकर कहेगा कौन-तेरी पसन्द की जलेबी है/ रसमलाई शालू की दुकान की है/ कौन कहेगा डाईबिटीज है/ पर भाई दूज कब आएगा/ मेरे इस जीवन में, ले चख ले।/ क्यून एक्सप्रेस पूना स्टेशन छोड़ रही है। और मैं बहन को याद कर रहा हूँ।'' (पृ. 60)

कवि ने स्वार्थ प्रधान वर्तमान समाज में टीका की रस्म याद करके मानवीय सम्बन्धों को गहरी आत्मीयता से याद किया है। ऐसे ही सम्बन्धों की कविताओं में -''महात्मा गाँधी रोड ईद की खुशी में/ दीवाली मना रही है।'' (पृ. 63) साम्प्रदायिक सौहार्द व्यक्त करने वाली यह कविता कवि के सद्भाव से साक्षात्कार करा रही है, जो आज हमारे समाज में कम होता जा रहा है। इसी भावभूमि से जुड़ी एक और कविता है 'जहीर मियाँ'। कवि ने संवाद के माध्यम से एक खास भारतीय मुसलमान की भाव-भंगिमा का निरूपण किया है जो सभी भारतीय मुसलमानों का खौफ व्यक्त कर रही है-''मैं देखता रहा गोल चेहरे के जहीर मियाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की आँखों में/ वहाँ था खौफ/... आजाद देश का/ मुम्बई खौफनाक दौर में याद कर रहा था/ मुसलमान होने की पहचान।'' (पृ. 25) कहने की जरूरत नहीं कि आज के आजाद हिन्दुस्तान में ऐसा जहर फैला है कि हरेक अल्पसंख्यक स्वयं को असुरक्षित महसूस कर रहा है। धर्मनिरपेक्षता का आदर्श धीरे-धीरे खण्डित हो रहा है, जो हमारे लोकतंत्र के लिए खतरे की घण्टी है।

मानवीय सम्बन्धों का एक रूप दाम्पत्य प्रेम है, जिसे कवि ने 'सुनती हो' शीर्षक तीन कविताओं में व्यक्त किया है। एकाकी जीवन बिताने वाला कवि अपनी स्व. पत्नी को सम्बोंधित करते हुए कहता है-''सुनती हो, सूरज एक लहरदार बादल है/ रोज-रोज मेरे भीतर चहकता है/ हँसता है/ और धीरे से कान में कहता है/ उसके बिना/ हँसना भूल गए हो।''(पृ. 72) कवि का हँसना भूलना उसकी उदासी की ओर संकेत कर रहा है और साथ ही साथ दाम्पत्य प्रेम की ओर भी।

शर्माजी ऐसे समर्थ कवि हैं जो पर्यविक्षण के आधार पर शब्द-चित्र प्रस्तुत करते हैं। वह मानवीयकरण से युक्त होता है। इस शैली का प्रयोग अनेक बार किया गया है। इस दृष्टि से एक छोटी सी कविता धीमी लय में पठनीय है-''सुबह के आसमान तले/ किसान ने/ खेत की निराई की/ पत्तों को समेटा/ और आसमान ने कहा लो आग ताप लो/ आग धीमी लय में गाती रही संगीत/ पहले किसान हँसा/ फिर हवा ने अपना हाथ तापा/ किसान ने इस बीच खेत को देखा/ धूप एक साथ/ उसके और खेत के चेहरे पर खिली/ और खिलती गई।'' (पृ. 65)

इस कवितांश में फिर हवा ने अपना हाथ तापा, वाक्य हवा से आन्दोलित आग की लपटों का बिम्ब प्रत्यक्ष कर रहा है।

शर्माजी किसी खास जनपद के कवि न होकर सम्पूर्ण भारत की भूखी-दुखी जनता के कवि हैं। वह जितनी शिद्दत से हावडा, विशाखापत्तनम, शान्तिनिकेतन, मुम्बई, छत्तीसगढ़ आदि के लोगों और घटना प्रसंगों का वर्णन करते हैं, उतनी ही शिदत से बनारस और सादतपुर के परिवेश का निरूपण करते हैं। वह बनारस के बारे में कहते हैं-''मेरा शहर मेरे एकान्त में/ रचता रहा मुझे/ मुझमें मज्जन करती रही गंगा/ मुझे खोलती रहीं गलियाँ। मेरा शहर/ एकान्त में बतियाता रहा/ मुझसे लम्बी कविता।'' उन्हें काशी कला भवन जैसी प्रतीत होती है। यही कारण है कि काशी के संगीत से उनकी रचनाशीलता प्रेरणा लेती रही है। इस सन्दर्भ में उनकी एक कविता उल्लेखनीय है-लच्छू महाराज के साथ तबले पर संगत। इस कविता में कवि ने तबले की ध्वनियों से प्रेरित होकर अपनी भावनाओं को शब्दबद्ध किया है, जिसमें तबले की गति जैसा तेज प्रवाह है।

दिन के खो जाने पर सादतपुर रचना में कवि ने सादतपुर के परिवेश का आलोचनात्मक वर्णन किया है। यह संश्लिष्ट कविता कवि के संघर्षशील व्यक्तित्व से साक्षात्कार कराती है जो वर्ग-संघर्ष की दृष्टि से समय, समाज और दुनिया को देखता-परखता है। सभ्यता-समीक्षा से युक्त यह लम्बी कविता कवि के आक्रोश, करुणा और निराशा का आख्यान है, जो फैंटेसी के संस्पर्श से रचा गया है।

कवि का यह विश्वास है कि 'सादतपुर नहीं बनेगा सिंगूर'। इस कविता में कवि की आलोचनात्मक दृष्टि अनायास उजागर होती है। तत्कालीन वामपंथी सरकार के गढ़ पश्चिम बंगाल के सिंगूर के लोगों पर अत्याचार हुआ था, जिसका सात्विक प्रतिरोध कवि ने उस सादतपुर के माध्यम से किया है, जहाँ नागार्जुन जैसे जन कवि रहा करते थे। कविता के अन्त.में कवि बेहिचक कहता है-''अब मैं गन्दी सड़क का नागरिक/कैसे आश्वस्त कर सकता हूँ/ बंगाल के मुख्यमंत्री को/ कि सादतपुर नहीं बनेगा बलात्कारियों का कुरूक्षेत्र।''(शान्तिनिकेतन से हटकर पृ. 20) यहाँ संकेत यह है कि भारतीय समाज अभी इतना सभ्य नहीं हुआ है कि वह नारी जाति का सम्मान हृदय से कर सके। आजकल हम देखते हैं कि समाचार पत्रों में आए दिन बलात्कारों की खबरें छपती हैं जो भारतीय समाज की पतनशीलता की ओर संकेत करती रहती हैं। इसलिए कवि को आशंका है कि सादतपुर जैसे नगर या उपनगर बलात्कारियों से कैसे मुक्त रह सकते हैं। शर्माजी ने अपनी एक छोटी सी कविता 'आत्म सत्य' में उत्पीड़ित भारतीय नारी की व्यथा-कथा मार्मिक ढंग से अंकित की है-''मैं खुश हूँ/ न मरी जले हुए जहाज में/ मैं खुश हूँ/ न महाकुंभ की लाशों के जाल में/सड़ती रही मेरी लाश/ मैं खुश हूँ/ बलात्कार के बाद/ मेरी माँ की गोद भर दी/ नेता ने रुपयों से/ मैं खुश हूँ/ बैनर हाथ में लिए लिए/ जेलर ने मेरी योनि में/ ठूँस दिए रोड़ी पत्थर/ आप जो खुश नहीं हैं/ संसद में, बड़ी नौकरी में/ दूरदर्शन के गरिमा-भरे जश्न में/ एक दिन जरूर/ अपनी बेटी की क्षत-विक्षत लाश/ को उठाए हुए/ दौड़ेंगे यहाँ वहाँ/और ज़ार-ज़ार रोएंगे/ मैं खुश हूँ।'' (कविता एक मोर्चा है, पृ. 30-31)। यह कविता संकेतों से बहुत कुछ कह रही है और सुविधाभोगी लोगों पर मार्मिक व्यंग्य भी कर रही है। ऐसा व्यंग्य वही लिख सकता है जिसके हृदय में गहरी मानवीय करुणा हो। कहने की जरूरत नहीं कि विष्णुचन्द्र शर्मा ऐसे ही कवि हैं जो करुणा से प्रेरित होकर कवि के समान तीखे व्यंग्य भी रचते हैं। उनकी एक छोटी सी कविता है-''सूर्यबली/चन्द्रबली/बाहुबली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहते हैं/ संसदीय देश में/ बोलो/ मैं कहाँ रहूँ।'' यहाँ कवि ने सूर्यबली और चन्द्रबली पदों के प्रयोग से उत्पीड़क जातिवाद की आलोचना के साथ-साथ बाहुबली पद के माध्यम से भारतीय राजनीति के अपराधीकरण का संकेत किया है। जब से आजादी मिली है, तब से हमारे संसदीय लोकतंत्र में सभी सुख भोग रहा है, किन्तु लोक दुखी है। उसके लिए न तो शिक्षा है, न स्वास्थ्य है, न तो सम्मान है। इस व्यवस्था में खाए-अघाए लोग सभी सुख-सुविधाएँ, पद-प्रतिष्ठाएँ, मान-सम्मान, पुरस्कार इनाम, अलक्षित अधिकार सुख निरन्तर भोग रहे हैं। शर्माजी ने वर्तमान समाज की समीक्षा करते हुए बुद्धिवादियों, संपादकों, प्राध्यापकों, समाजवादियों की वास्तविकता उजागर की है और निराशा भरे स्वर में कहा है- ''न मार्क्स हैं आज भारतवर्ष में न हैं मार्क्सवादी/ बस एक पुस्तकालय से कवि पास देख रहा है/ इस देश के गूँगे जनतंत्र का तमाशा/ मैं भी देखने जा रहा था ब्राजील देश में क्रान्ति की सुगबुगाहट/ लमही में नहीं है क्रान्ति का दस्तावेज/ नहीं है इस देश की आग और पानी का दस्तावेज/ नहीं है वर्षादास के खाए-अघाए कलाकारों का मिथ लमही में।''

आशय यह है कि सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत के वामपंथियों में निराशा ने घर कर लिया। फैशनपरस्त मार्क्सवादी बदल गए, परन्तु विष्णुचन्द्र शर्मा नहीं बदले। वह आज भी मार्क्सवादी हैं और अपनी कविता के मोर्चे पर डटे हुए हैं। उन्हें अपने हिन्दुस्तान के करोड़ों भूखे-नंगे किसानों-मजदूरों की चिन्ता सताती रहती है। यही कारण है कि वह क्षुब्ध होकर कहते हैं- ''देवता क्षीरसागर में नहीं/ काशी में मालपुआ/ हलुआ, चिउड़ा मटर/ चाभ रहे हैं/ और भक्त जेब में ठूँस रहे हैं/ रुपए, चेक, डालर/ नेता/ महाकुंभ में बटोर रहे हैं/ पुण्य बोट बैंक का/ मुजफ्फरनगर में/ ओलों के नीचे मर गए हैं/ दस जन/ दिल्ली में/ कुहरे में / दब गई हैं लाशें/ खुश हो न/ इस देश का देवता/ क्षीरसागर में नहीं है/ नहीं माँगते हैं/ मरे हुए अपना हक।''(कविता एक मोर्चा है, पृ. 32)

यह कविता संकेत कर रही है कि पूँजीवादी इस लोकतंत्र में दीन-हीन जनता के हक सुरक्षित नहीं हैं। इसलिए जरूरी है यह व्यवस्था बदली जाए। इसके भारत के उत्पादक वर्गों अर्थात् किसानों और मजदूरों को अखिल भारतीय स्तर पर एकजुट करना होगा। गाँधी जैसा कोई महान नेता ऐसी जनता का नेतृत्व करेगा। तभी कोई सार्थक परिवर्तन होगा। विष्णुचन्द्र शर्मा ऐसे ही परिवर्तन के पक्षधर हैं। इसलिए वह हारी हुई लड़ाई का नया पाठ तैयार करते हैं। मतलब यह है कि भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम की अधूरी क्रांति को पूरा करने की प्रक्रिया अपने ढंग से अग्रसर करते हैं। उल्लेखनीय है सन् 57 की स्वाधीनता संग्राम आधुनिक साहित्य का प्रेरणा स्त्रोत रहा है, इसलिए विष्णुचन्द्र शर्मा ने उसे अपनी चेतना का अभिन्न अंग बनाया है।

विष्णुचन्द्र शर्मा ने अपनी संवेदनशील जीवन-दृष्टि से अपने प्रिय रचनाकारों, कलाकारों, घटना-प्रसंगों और अनेक स्थानों के आकर्षक चित्र उकेरे हैं, जो उनकी गहरी आत्मीयता का प्रमाण हैं। अपना सर्जना-पथ आलोकित करने के लिए उन्होंने हिन्दी जाति की लोकधर्मी परम्परा से अपना गहरा रागात्मक रिश्ता जोड़ा है। यही कारण है कि उनकी कविता जन-जीवन के संघर्ष का प्रेरक आख्यान है। उसमें उनका संघर्षपूर्ण रचनाशील व्यक्तित्व भी उभर कर सामने आया है। वह राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय मामलों पर बेहिचक लिखते हैं, बोलते हैं और कहते हैं। यही कारण है कि वह जीवन भर सत्ता के प्रतिष्ठानों से दूर रहे। अपने लेखन पर जीवन का निर्वाह किया। वर्तमान भोगवादी युग में ऐसा रचनाशील व्यक्तित्व विरल है।

विष्णुचन्द्र शर्मा अपने आदर्श रचनाकारों कबीर, तुलसी, निराला, राहुल, शमशेर, त्रिलोचन, मुक्तिबोध के समान लगातार रचना संलग्न रहे हैं और बेहतर समाज की व्यवस्था के लिए हारी हुई लड़ाई का सपना साकार करने के लिए चिन्तनशील हैं। इस प्रक्रिया में वर्तमान काल के उत्पीड़क धर्मतंत्र, शोषक लोकतंत्र एवं अन्तरराष्ट्रीय अर्थ तंत्र की तीखी आलोचना निरन्तर करते रहे हैं। विचारों के कुरूक्षेत्रों में वह अपने अर्जित ज्ञान, स्मृति और तर्क की तलवार का सधा प्रयोग करते हैं। उनके पास लोकहित की एक मात्र कसौटी है, जिस पर स्वयं को परखते और दूसरे को भी। अतीत और वर्तमान दोनों के रचनाकारों को इसी कसौटी पर परखकर उनका मूल्य आँकते हैं। वह कबीर और तुलसी के लोकपक्ष का परीक्षण और उद्घाटन निष्पक्ष भाव से करके उन्हें अपने युग के अनुरूप प्रस्तुत करने का रचनात्मक प्रयास करते हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में निराला का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व से अनुप्राणित रहे हैं और विष्णुचन्द्र शर्मा इन सब से। इन कवियों की लोकधर्मी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले कवियों में विष्णुचन्द्र शर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने इस परम्परा को आत्मसात करके उसे नई भंगिमा प्रदान की है। उनकी कविता के वास्तुशिल्प में वर्णनात्मकता और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संवादात्मकता है। नाटकीयता और व्यंग्यात्मकता है। बिम्बात्मकता और सपाटबयानी का सहज समावेश है। वह केदारनाथ सिंह के समान भाषा के जादूगर नहीं हैं। वह ऐसी ताकतवर भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे सुनकर वर्ग शत्रु स्वयं को हारा हुआ महसूस करता है। उन्होंने मुक्तिबोध का फैन्टेसी शिल्प अपनी लम्बी कविताओं में कहीं-कहीं अपनाया है। लेकिन वह मुक्तिबोध के समान दुर्बोध नहीं है। उन्होंने जितने तीखेपन से दक्षिणपन्थी नेताओं की आलोचना की है, उतने ही तीखेपन से अवसरवादी वामपन्थियों की भी इस दृष्टि से उनकी लम्बी कविता- ''कामरेड गैंडा से एलिस की बहस पठनीय है। इस कविता में एलिस कामरेड पर व्यंग्य करती हुई कहती है-''सोते रहो कब्र में सत्ता की/ कॉमरेड एलिस सयानी है, सोते रहो अपने आश्चर्यलोक में।''(तत्काल, पृ. 23)

विष्णुचन्द्र शर्मा के रचनाशील व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों का उल्लेख कर चुके हैं। उनका प्रमुख रूप कौन सा है, इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं है। सम्भव है कि उनका गद्यकार रूप उनके कवि रूप पर भारी पड़े, लेकिन यह सच है कि वह सिर से पैर तक मूलत: कवि हैं। 'कवि' पत्रिका ने उन्हें कवि का गौरव प्रदान किया था। इसका निर्वाह वह आज भी क़र रहे हैं। कविता रचने का उनका उत्साह वृद्धावस्था में कम नहीं हुआ है। वह स्वयं कहते हैं-''नदी की नाराजगी/ बाढ़ है/ मेरी नाराजगी/ तबाही के दौर में जीना/ नदी मरती नहीं/ बस्ती, गाँव को तबाह करने के बावजूद/ मेरी नाराजगी/ खोजती है गाँव की उजाड़ बस्ती में/ अपनों को।/ नदी का अपना पथ है/ मेरा अपना/ फिर भी मैं खींच लेना चाहता हूँ/ नदी का वेग ताकि/ ज़ीवन में बचा रहे/ उत्साह।'' (संप्रेषण, 163,164 पृ. 55)

ऐसी अभिलाषा आज के उपभोक्तावादी समाज में कितने कवि करते हैं। शायद बहुत कम। विष्णुचन्द्र शर्मा ऐसे ही कवियों में अग्रगण्य हैं।

संपर्क :
चूना मंडी, बदायूँ (उ.प्र.)
पिन कोड : 243601
मो. : 09897482597

विष्णुचन्द्र शर्मा की कविता

शो केस में मुक्तिबोध

आपने कुछ किया
बीमार मुक्तिबोध को
अपने शो केस में जगह दे दी...
आपने पूछा :
'पार्टनर बीड़ी की तलब हो तो बताना
बहस के लिए लोग-बाग
तुम्हारा चेहरा देख रहे हैं'

मुक्तिबोध ने पहले अपनी मूर्ति तोड़ी
फिर अंधेरे में घूमता रहा
तालाब के किनारे

अखबारों में छपी
'अपने पहल से
दरबार से
चुनाव के दंगल से
मुक्तिबोध गायब हो गए हैं'
मुक्तिबोध कल बताएंगे :
'वे पार्टनर नहीं थे
मुझ पर सवार थे
भला मेरी मूर्ति
मांगने के अलावा
करता क्या!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विष्णुचन्द्र शर्मा

· 'सर्वनाम' की कहानी मेरी कहानी है

विजेंद्र

'सर्वनाम' उस जानी-मानी पत्रिका का नाम है जिसका संपादन लम्बे समय तक किया विष्णुचन्द्र शर्मा ने। इस पत्रिका का केंद्रीय कथ्य, स्वर और लय थे वर्गसंघर्ष। सर्वहारा की मुक्ति के लिए सतत संघर्ष। बहुत ही लघु आकार की पत्रिका थी। मेरे पास बराबर आती रही। हालाँकि मैं उसमें बहुत कम छपा। इसके दो कारण रहे होंगे, एक तो विष्णु ने मुझसे बड़ी आत्मीयता के साथ कविता भेजने को कभी नहीं कहा। दूसरा मेरा संकोच, क्योंकि उन्हीं दिनों मैं कविता पत्रिका, 'कृति ओर' का संपादन कर रहा था। विष्णु की कविताएं लगातार प्रकाशित होती थीं। अगर मैं 'सर्वनाम' में छपता तो साहित्य संसार इसे परस्पर लेन-देन का महोत्सव कहने लगता। यह मैं चाहता न था। ख़ैर...

विष्णु आज मेरे हमउम्र हैं। उन्हें 'लहक' ने सम्मानित किया, इसके लिए मैं विष्णु और 'लहक' को हार्दिक बधाई देता हूँ। दरअसल, साहित्य जगत यह नहीं जानता होगा कि विष्णु से मेरे रिश्ते बहुत पुराने हैं। कहना न होगा 1956 के आस-पास से। उस समय मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का स्नातक का छात्र था। विष्णु स्नातकोत्तर के छात्र रहे होंगे। मैं विश्वविद्यालय के बिरला छात्रावास में रहता था। त्रिलोचन का मुझे अत्यंत आत्मीय सान्निध्य प्राप्त था। वह मेरे पास बहुधा आते थे। एक दिन विष्णु भी त्रिलोचन के साथ आये। त्रिलोचन ने ही परिचय कराया। कवि रूप में उस समय तक मेरी कोई पहचान नहीं थी। पहली कविता 1956 में 'ज्ञानोदय' (कलकत्ता) में प्रकाशित हुई थी, लेकिन भविष्य में कवि-कर्म के लिए विचार पुख्ता हो चुका था। इस परिचय के बाद से विष्णु मेरे पास आते-जाते रहे। कविता के बारे में बातें होती रहीं, लेकिन कोई बहुत खुलापन न था। एक औपचारिक रिश्ता ही बना था, उन्हीं दिनों विष्णु ने 'कवि' नाम की मासिक पत्रिका शुरू की। मुश्किल से 20 -25 पृष्ठ रहे होंगे। उसके लिए मैंने विष्णु को बहुत ही क्रियाशील, आतुर और बेचैन देखा। उनमें कविता को लेकर बहुत बेचैनी थी। इसी पत्रिका में मुक्तिबोध पर सबसे पहले नामवर सिंह ने एक सार्थक और गंभीर आलेख लिखा था। इस आलेख का उल्लेख मुक्तिबोध ने बड़े सम्मान से कहीं किया है और नामवर सिंह के प्रति आभार भी। इस आलेख से पहले मुक्तिबोध की कविता को कोई गंभीरता से नहीं देख पा रहा था। उन्हें बहुत ही ऊबड़-खाबड़ कवि मानते थे। नामवर सिंह के इस आलेख ने एकदम मुक्तिबोध का नया रूप सामने रखा। 'कवि' पत्रिका के हर अंक में विष्णु किसी एक कवि को विशिष्ट रूप में प्रकाशित करते थे। उस समय के जितने प्रमुख प्रगतिशील कवि थे 'कवि' में प्रकाशित हुए। आश्चर्य होगा जानकर कि हजारी प्रसाद जी को भी विशिष्ट कवि के रूप में दिया गया था। नामवर सिंह की भी कविताएं विष्णु ने प्रकाशित की थी। इतनी लघु आकर की पत्रिका की पहचान एक सार्थक, दिशासूचक और गंभीर पत्रिका के रूप में बन चुकी थी। यह सब हुआ विष्णु की तत्परता, श्रम, निष्ठा और लगन के कारण। मेरे और विष्णु के रिश्ते और आत्मीय हुए। काशी में पत्रिका की चर्चा होने लगी। उन दिनों केदारनाथ सिंह नव गीत की तर्ज़ पर बहुत ही बेहतरीन प्रगीत रच रहे थे। बनारस में गीतों के लिए शम्भुनाथ सिंह बहुत ही लोकप्रिय थे। रामदरश मिश्र भी लोक परक गीत लिख रहे थे। त्रिलोचन की अभी लोकप्रिय पहचान नहीं बन पाई थी। उनकी पंक्ति याद कीजिए -

प्रगतिशील कवियों की नई लिस्ट निकली है
उसमें कहीं त्रिलोचन का तो नाम नहीं है।

1980 तक लगभग यही स्थिति थी त्रिलोचन की, लेकिन विष्णु, त्रिलोचन को एक समर्थ और कवि की तरह सम्मान देते थे। 1958 में मैंने बनारस छोड़ा, लेकिन त्रिलोचन और विष्णु से बराबर संपर्क बना रहा। विष्णु बाद में दिल्ली आ गए, सादतपुर में घर बनवा लिया, लेकिन मुझे जहाँ तक जानकारी है विष्णु ने नौकरी नहीं की। उनकी पत्नी भी नहीं रहीं। विष्णु अगर काशी न छोड़ते तो वे भिन्न किस्म के रचनाकार होते। विष्णु ने दिल्ली आकर अपनी जड़ें त्याग दीं। दिल्ली रहने का सबसे पहला दुष्प्रभाव होता है अपनी जड़ों को भूलना, लेकिन विष्णु रचनारत बराबर रहे। विष्णु ने कविता के अतिरिक्त अनेक विधाओं में भी रचा है। उन्होंने उपन्यास लिखे 'मंजरी', 'चाणक्य की जय कथा', 'विडंबना',

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'दिल को मला करे हैं', 'बेगाने अपने', 'रेखाएँ दु:ख की', 'बिगड़ी तस्वीर का अलबम'; कहानियां भी लिखीं, 'अपना पोस्टर', 'दोगले सपने'।

यही नहीं विष्णु ने नाटक भी लिखे- 'अंत की शुरुआत' और 'बेजुबान', साथ ही यात्रा संस्मरण 'यात्री का देश', 'इन लोगों के मध्य, 'घराना', 'अभिन्न', 'हम अकेले कहाँ हैं मनमोहन ठाकोर', 'चुप हैं यों' विष्णु ने जीवनियाँ भी लिखी हैं - 'अग्निसेतु' (क़ाज़ी नजरुल इस्लाम), 'स्वराज के मन्त्र दाता'(लोकमान्य तिलक), 'समय साम्यवादी'(राहुल सांकृत्यायन), 'मुक्तिबोध की आत्मकथा', 'कबीर की डायरी'। विष्णु ने आलोचना के क्षेत्र में भी सार्थक काम किया है। 'काल से होड़ लेता शमशेर', 'नागार्जुन: एक लम्बी जिरह', 'ग़ालिब और निराला','मेरा काव्यानुमान', 'रामविलास शर्मा का लोकपक्ष','त्रिलोचन का कवि कर्म'। इसी के साथ विष्णु ने संपादन कर्म भी किया है। जैसे 'पंडित रामनारायण स्मृति ग्रन्थ', 'यथार्थ से साक्षात्कार: यशपाल, नागर, रेणु, अमरकांत, नया मानदंड के आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा शिवदान सिंह चौहान पर केन्द्रित विशेषांक, 'अरघान': त्रिलोचन की कविताएं, शिवदान सिंह की तीन पुस्तकें, 'जमा खाता' (रूसी, अमरीकी, अर्जेंटीना, क्यूबा और हिंदी कहानी)।

विष्णु ने 'कवि' मासिक पत्रिका का संपादन किया। इसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। 'सर्वनाम' पत्रिका का संपादन शुरू में मासिक पत्रिका के रूप में हुआ। बाद में तिमाही (अंक 81) तक बदस्तूर निकलती रही 'सर्वनाम'।

पत्रिका बहुत ही चर्चित रही। इसने पाठकों में वर्ग-चेतना और वर्ग संघर्ष की समझ पैदा की। मुझे लगता है 'सर्वनाम' विष्णु के लिए पत्रिका निकालना कोई शगल न हो कर एक काव्य संकल्प ही था। 'सर्वनाम' विष्णु का धड़कता दिल है। इसलिए उनके कविता-संग्रह, 'शांति निकेतन से हटकर' में एक प्रमुख कविता भी है- 'सर्वनाम' की कहानी मेरी कहानी है और यह मेरे विचार से इस संग्रह की अंतिम और सर्वश्रेष्ठ कविता है। यह कविता आत्मपरक होकर भी बहुत ही विस्तृत और व्यापक सन्दर्भों से जुड़ी है। यहाँ कवि आत्मपरक होकर भी कविता को बहुत बड़े फलक से जोड़ता है-

मेरी उजाड़ बगिया में जो फूल
सागर के रंग-सा खिला है
उसे समुद्र का कवि पाब्लो नेरुदा कहते हैं .....

इसी प्रसंग में कवि को महाप्राण निराला भी स्मृत हो आते हैं:

फिर एक मासूम चेहरा है निराला का /...

उजाड़ बगिया शायद कवि के सादतपुर घर के आस-पास की वह धरती है जिसे उसने प्रकृति वातावरण बनाया हुआ है। सर्वनाम कवि की मनस्चेतना का जैसे अविभाज्य हिस्सा है जो उसे बार-बार याद आता है!

उजाड़ बगिया में सदाबहार का फूल
नीले आसमान में बदल गया था
कमरे में पंख फड़-फड़ा रहे थे 'सर्वनाम' के पन्ने।

कवि इस आत्मपरकता को बड़े सन्दर्भों से युक्त कर कविता की ध्वनि एक दम बदल देता है

मैं सिर्फ सुनता रहा...
और नाविक विद्रोह, अमेरिकी नीग्रो,
लातिन अमेरिकी के अंक बोलते रहे
अपने बोल
'सर्वनाम' की कहानी का प्लाट का मोर्चा।

शमशेर की एक दुर्लभ कृति का भी नाम है 'प्लाट का मोर्चा'। विष्णु के इस मोर्चे में विश्व के संघर्ष और शक्ति की ध्वनियाँ अंतर्निहित हैं:

'कहता रहा है हो-ची मिन्ह में
अमेरिका है हारा हुआ मोर्चा

सब जानते हैं दशकों तक अमरीका ने वियतनाम जैसे छोटे से देश को नष्ट करने की क्रूर कोशिश की, लेकिन अंत में अमरीकी साम्राज्यवाद को मुंह की खानी पड़ी।

पूरी कविता में कवि अपने को खोज कर दुनिया को खोजता है और दुनिया को खोज कर खुद को खोजता है। सादतपुर को पूरे विश्व से जोड़ता है। संकेत है सर्वहारा का संघर्ष एक देशीय न हो कर पूरे विश्व में व्याप्त संघर्ष है। कवि ने अपने समानधर्मा रचनाकारों को बराबर याद किया है। मार्क्सवादी कहानी लेखक विद्या सागर का उल्लेख कविता में बहुत ही मार्मिकता से हुआ है।

फोन पर विद्यासागर नौटियाल
बता रहा था
'' अमेरिका के कमरे में बंद हूँ
और लगातार वर्षा हो रही है
हावर्ड फास्ट के उपन्यास 'दि अमेरिकन'
और वाल्ट व्हिटमैन की
'आत्मगान'।'' (सांग आफ मईसेल्फ)।

कविता के अलावा पढ़ने को कोई नई किताब नहीं है।

जहाँ विष्णु इस तरह कविता को सहसा मोड़ देते हैं जैसे फंतासी में विचरण कर रहे हों, कहा है -

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैंने बताया इधर
''एक दिन और एक रात
'साधना टेम्पल' का मित्र कुंवर
निराला का संस्मरण सुनता रहा मैं और मरिया
रोटी बनाते हुए उजाड़ सादतपुर के घर को
निराला की उदात्त दिशाओं से भरते रहे हैं
....
भारत लौट आने पर नौटियाल
अपनी 'दस कहानिओं' का प्रूफ पढ़ रहा है
और अमेरिका में नहीं है एलियट
पाब्लो ने बताया है मुझे व्हिटमैन बेहद अनगढ़ है
बेहद 'प्रिमिटिव' यह एक जटिल मनुष्य है
उसके पास दुनिया को लेकर एक खुली दृष्टि थी।''

इस प्रकार के कथन विष्णु की कविता में भरे पड़े हैं। यह वे बातें हैं जिन्हें हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति जानता-बूझता है। आखिर इससे कवि क्या संकेत करना चाहता है? या तो पाठक कवि के ज्ञान से अनावश्यक रूप से आतंकित हो! या फिर कवि इन कवियों से अपनी चेतना को जुदा पाता है। दोनों स्थितियों में इन प्रसंगों का कोई समर्थ औचित्य मुझे दिखाई नहीं पड़ता। इससे तो बेहतर है इन कवियों से हम कुछ सीखें और अपनी कविता को बेहतर बनाएं। विष्णु बार-बार निराला, पाब्लो नेरुदा और व्हिटमैन आदि के नाम लेते हैं पर उनकी कविता में उक्त किसी कवि की कविता के गुण नहीं हैं।

विष्णु खूब घूमे हैं। अमेरिका भी हो आये हैं। वे इन स्थानों से जुड़ीं अनेक सूचनाएं पाठक को देते हैं। यह कविता में वास्तु का पुनर्सृजन न हो कर मात्र सूचनाएँ हैं। कई बार ऐसे ब्योरों से तबियत ऊबने लगती है। सूचनाएँ कविता को कमजोर करती हैं। कविता में सूचनाएँ देना अपने हृदय की रिक्तता का भी सूचक बनता है। विष्णु कहने को मार्क्सवादी हैं पर वे मन और मिजाज़ से निम्न मध्यवर्गीय ही हैं। उनकी कविता में जन-चरित्रों की सृष्टि नहीं मिलेगी। पढ़े-लिखे लोग ही सामने आते हैं। अगर किसी अभावग्रस्त व्यक्ति का सन्दर्भ आया भी है तो वह मात्र सन्दर्भ है। एक मार्क्सवादी कवि का पहला फ़र्ज़ है अपने देश की जनता से एकात्म होना, अभावग्रस्त किसान के जीवन की पीड़ा गहनता से समझना और उसके संघर्ष को बल प्रदान करना। विष्णु कुल मिलाकर महानगर बोध के ही कवि हैं। उनके अनुभव बहुत सीमित हैं। वे अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ बहुत देते हैं, पर अपने आस-पास और देश के जूझते आदमी के प्रसंग गायब हैं। इसीलिए -विष्णु बार-बार कहते मिलेंगे-

बची हुई रात के दूसरे या तीसरे पहर में मैं
पहुँच गया 1986 के न्यूयार्क शहर में
फिर कहते हैं
शहर एक जलाशय था
जहाँ लहरें थीं खुशी की
......
'साधना टेम्पुल' के संस्थापक कुंवर ने
देखा था एक सपना निराला रह रहे हैं
न्यूयार्क शहर में
मैंने पूछा यदि तुम आखिरी वक्त में ले जाते
निराला को अमेरिका ...
-हाँ यह सपना कभी देखा था मैंने
दारागंज की उसी गली में
......
निराला को मृदंग की तरह गाते और हँसते हुए
....
फिर हमने न्यूयार्क में मित्रों से कही थी निराला की कथा
......
'ध्यान' में फिलाडेल्फिया के मित्रों ने देखी थी
निराला की भव्य मूर्ति और सुने थे मृदंग से
बजते उसके गान ...
....
न्याग्रा फाल के करीब हमने
निराला की कविताओं का मंचन किया था
......
निराला तब 'मैजिक किंगडम' का जादुई कवि लगा था।

ध्यान दें शब्द 'जादुई कवि' अर्थात ऐसा कवि तो तिलस्म दिखाता है। यह निराला की कविता का अवमूल्यन है, उसे विकृत करना। इस पूरे प्रसंग में कवि ने अपनी अमेरिकी यात्रा की यशोगाथा का ही चित्रण किया है। निराला बने हैं सुरक्षा कवच, पूरी कविता एक दिवास्वप्न जैसा असर देती है। कवि ने कहा भी है-

25 साल पहले
देखी स्वप्न और जागरण
के बीच की फंतासी फिर याद आ गई
सादतपुर की उजाड़ बस्ती में हमें

विष्णु ने 'सर्वनाम' निकलने के दौरान आई आर्थिक कठिनाइयों का भी चित्र दिया है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गिनती है 300 प्रतियों का बिल
3,390 रुपये चुकाने हैं
.....
सर्वनाम को लादकर मुख्य डाकघर तक जाते हुए
मैं दोहराता हूँ
''दृढ़ता में जीवन की कथा रही ... सर्वनाम।''

निस्संदेह विष्णु को 'सर्वनाम' निकालना बहुत ही कठिन रहा होगा। मेरा भी पत्रिका निकालने का दो दशकों का बहुत ही दर्दनाक अनुभव है, पर अपने लक्ष्य के लिए साहस करके संघर्ष करना ही पड़ता है। विष्णु ने कभी कोई नौकरी भी शायद नहीं की। ऐसी हालत में जीवन यापन करना और अलाभकारी काम पत्रिका नियमित निकालना एक असाधारण काम ही है। विष्णु ने वह किया है, लेकिन इसका उन्हें कविता के लिए बहुत मूल्य चुकाना पड़ा है। साधन जुटाने में समय तो लगता ही है। हमारी रचनात्मक क्षमता भी क्षरित होती है। यही कारण है विष्णु हृदय से कवि होकर भी कविता को हर सांस का समर्पण नहीं कर पाए। जब साधन जुटाने होते हैं तब हम वे काम भी करते हैं जो हमारी प्राथमिकता में नहीं है। कई बार विष्णु की कविता पढ़ते हुए लगता है कि किसी हड़बड़ी में सब कुछ हो रहा है। विष्णु कविता को पूरा वक्त नहीं दे पाते।

वैसे विष्णु की कविता प्रगीत प्रधान है। प्रगीत में बड़ा फलक अपनाना मुश्किल है। बड़े फलक के लिए बहुत अधिक अवकाश और सिद्ध वर्णन कौशल की जरूरत पड़ती है। विष्णु में वह नहीं है। इसीलिए उनकी अधिकांश कविताएं लघु आकार की हैं। लगता है बात अधूरी रह गई। कवि को आन्तरिक दबाव से कविता को ख़त्म करना पड़ा है। 'शांति निकेतन से हट कर' संग्रह में भी लघु आकार की ही कविताएं हैं। अंतिम दो-तीन कविताएं कुछ आकार में लम्बी हैं लेकिन उन्हें लम्बी कविता के फॉर्म में नहीं गिना जा सकता। विष्णु की कविता में गहन भावबोध नहीं है। इसका सम्बन्ध इन्द्रियों की सक्रियता से है। विष्णु वाक् चातुर्य से काम अधिक लेते हैं। इसीलिए विष्णु की कविता में वाग्मिता तो है, पर गहन इन्द्रियबोध कम है। विष्णु मारवाड़ी हैं, पर उनकी कविता में चिंतन की न तो तीव्रता है, न उसकी गहनता। कविता निरे भाव, संवेदना और कल्पना से निर्मित हो सकती है लेकिन अगर कविता में गहन चिंतन का अभाव है तो वह विश्व-वन्द्य न हो पाएगी। कविता में चिंतन तभी आता है जब हम अपनी कविता की सैद्धांतिकी विकसित करते हैं। इसके लिए सबसे पहले हमें लोक से एकात्म होना पड़ेगा। यह कहना तो आसान है, पर करना बहुत कठिन है। मुक्तिबोध जैसे बड़े और प्रतिभा संपन्न कवि जीवन भर आत्म-संघर्ष करके भी अपने वर्ग को नहीं छोड़ पाए। यही कारण है मुक्तिबोध जनांदोलनों से कटे रहे। वे बहुत छोटे स्थानों में रहकर भी किसानों और श्रमिकों से एकांत नहीं हो पाते। यही कारण है कि वे इतने उलझे और दुरूह हैं, जबकि वे सर्वहारा की मुक्ति का समर्थन करते हैं। लेकिन लेखन में वे उस आदर्श का निर्वाह नहीं कर पाते! आखिर क्यों? क्योंकि वे नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल की तरह जनता से एकात्म नहीं हो पाते। विष्णु में मुझे एक बात और परेशान करती है। विष्णु अपने को मार्क्सवादी मानते हैं। समाज में क्रांति की जरूरत महसूस करते हैं, लेकिन वह रास्ता कौन-सा होगा जो समाज में बुनियादी परिवर्तन ला सकता है; उस शक्ति का दर्शन क्या है; वह कौन सी शक्ति है जो बुनियादी परिवर्तन ला सकती है; उसे कैसे संगठित किया जाए, जैसे एक मिसाल के तौर पर भारत जैसे कृषि प्रधान देश में मात्र श्रमिक क्रांति नहीं कर सकते हैं, शोषित किसान को भी अपने साथ लेना होगा-इन सवालों को विष्णु की कविता नहीं उठाती।

संपर्क :
हाउस न. 240, ई-स्पेस, निर्वाण काउंट्री,
सेक्टर- 50, गुडगांव - 122018
मो :-09928242515
(हरियाणा)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'अपनी लिखत में जन-मन की पीरा कहत कवि'

रजत कृष्ण

1950-60 का दशक हिंदी काव्य साहित्य का महत्वपूर्ण दौर रहा है। इस कालखण्ड में एक ओर मुक्तिबोध, शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल आदि प्रगतिशील और जनोन्मुखी कवि अपनी जड़ जमा चुके थे तो दूसरी ओर रघुवीर सहाय, गिरिजा कुमार माथुर, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, चंद्रकांत देवताले और विनोद कुमार शुक्ल जैसे युवा व नवोदित कवि अपनी सार्थक सृजनात्मक उपस्थिति दर्ज करा रहे थे। विष्णुचंद्र शर्मा इसी युवा पीढ़ी की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं।

वर्तमान में इस कड़ी के तीन कवि विनोद कुमार शुक्ल, केदारनाथ सिंह और विष्णुचंद्र शर्मा न सिर्फ हमारे बीच हैं बल्कि तीनों ही सृजनरत भी हैं। पेश की कविताएँ ही रह गई हैं। प्रसंगवश यहाँ जिन कवियों की चर्चा की गई है उनमें और विष्णुचंद्र शर्मा में एक बुनियादी व बड़ा अंतर यह है कि इकलौते विष्णुचंद्र शर्मा ऐसे कवि हैं जिन्होंने कविता के समानांतर अपने शुरुआती दौर से ही एक ओर 'कवि' और 'सर्वनाम' जैसी संघर्षधर्मी पत्रिकाओं का संपादन-प्रकाशन किया तो दूसरी ओर तिलक, राहुल सांकृत्यायन, काजी नजरुल, इस्लाम, मुक्तिबोध आदि की जीवनी सहित संस्मरण, यात्रा संस्मरण, उपन्यास, कहानी, आलोचना, डायरी जैसी तमाम गद्य विधाओं पर विपुल लेखन किया। और अभी तिरासी की उम्र में भी गतिमान हैं।

विष्णुचंद्र शर्मा ने 1951-52 में सक्रिय रूप से कविता कर्म को अपने जीवन का हिस्सा बनाया और कविता से अनुराग इतना सघन था कि कविता केंद्रित पत्रिका 'कवि' का संपादन-प्रकाशन (1957-58) में शुरू किया! 'कवि' के कुल दस अंक प्रकाशित हुए-जिन्हें आज पढ़ते हुए स्पष्ट होता है कि विष्णुचंद्र जी नई कविता दौर की काव्य प्रवृत्तियों और सरोकारों को न सिर्फ जानने-समझने का सृजनात्मक यत्न कर रहे थे बल्कि अपने आगे की वह जमीन भी तैयार कर रहे थे जहाँ खड़ा होकर नई पीढ़ी की नई दृष्टि और चेतना का संधान किया जा सके। विष्णु जी ने 'कवि' के प्रथम अंक के संपादकीय 'वागद्वार' में लिखा कि ''आज भी कवि आस्था के बिखरे हुए जगत में सांस्कृतिक एकता का संदेशवाहक है। उसने कविता के माध्यम से नए युग की जटिल गंथियों को सुलझाने का व्रत लिया है। कविता प्राचीनकाल से संस्कृति की सहज अभिव्यक्ति मानी गई है। हर युग की सभ्यता के परिवर्तन को पहचानने का एक माध्यम कविता मानी गई है।''

उम्र के महज चौबीसवें साल में कविता और कवि कर्म के प्रति ऐसी आस्था व समझ परिचायक है कि युवा विष्णुचंद्र शर्मा की सृजनात्मक चेतना और आवेग शुरू से ही कितनी गहरी व तीव्रतम रही। 1935-50 के उस कालखण्ड में अस्तित्वमान प्रगतिवादी कविता अपनी अतिशय प्रगतिशीलता के आग्रह के चलते नारेबाजी बनकर दम तोड़ने लगी थी और प्रयोगवादी स्वर 'तार सप्तक' के संपादन प्रकाशन से उभर रहा था। अन्य युवा कवियों की तरह विष्णुचंद्र शर्मा के सामने भी बड़ी चुनौती थी-किस राह जाएँ! तब एक राह अराजक हो गई ठस प्रगतिवादी स्वर के कवियों की थी और दूसरी प्रयोगवाद के नाम पर कविता के 'स्वत्व' और 'स्वर' दोनों को ही प्रयोग की वस्तु बना देने वाले कवि-आलोचकों की।

विष्णुचंद्र शर्मा ने उस दौर में जो पथ चुना वह 'नई कविता' के स्वाभाविक विकास से आगे बढ़ रही काव्य धारा थी - जिसकी केंद्रीय भूमिका मनुष्यता की रक्षा, पोषण मुक्त समाज का निर्माण और साहित्य की तमाम विधाओं में मनुष्य के नए स्वप्न, नई सोच, नई चुनौतियों को शब्द देने में ही थी। विष्णु जी के 'अंतरंग' संग्रह की कविताएँ यहाँ याद आ रही हैं - जिसमें उस 'घर और परिवार' को कविता के केंद्र में रखते हैं जिसे प्रयोगवादियों ने कविता की बस्ती से ही हकाल दिया था। द्रष्टव्य हैं ये पंक्तियाँ-

> मनीष ने गुल्ले के लिए मुँह खोला
> माँ ने हँसने के लिए झुर्रियों से कसा अपना चेहरा।
> बहन ने बाल्टी भर जल को दूसरी मंजिल तक पहुँचाया
> एक की गुल्ले की चाह दूसरे की उत्साह से मिलकर
> तीसरे की मेहनत को ऊँचा उठाती रही।
> एक सिलसिला दूसरे के दिल में पैठता रहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीसरे की मेहनत की कसौटी में खरा उतरने के लिए।

1960 के आसपास हिंदी कविता में असंतोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर बहुत मुखर रूप से उभरता है। यह स्वतंत्रता से मोहभंग के उभार का दौर था। स्वतंत्र भारत में बेहतर जीवन, बेहतर समय और समाज के प्रति जो स्वप्न पल रहा था उसका बिखराव होने लगा। जो आशा और आस्था स्वराज तथा जन प्रतिनिधियों के प्रति थी वह टूटन की कगार पर चली गई। परिणामत: इस समय की कविता-कहानी में स्वाभाविक रूप से टूटन की तल्खी और सामंती पोषण-दमन के प्रति कहीं आक्रोश तो कहीं व्यंग्यपूर्ण भाषा में उभरती गई। विष्णुचंद्र शर्मा ने निरंतर अपना मोर्चा खोले रखा और कभी बड़ी तल्खी से लिखा कि -

एक मुँह हमारा/अंग्रेजों ने गुलामी में कुचला था
दूसरे मुँह से हम आजाद रानी का / चरण चूम रहे हैं
तो कभी यह कि - मेरे हाथ उठे हैं। संसद के बाहर सेना है।
चमरू की बेटी के हाथ एक पोस्टर है।
कौन बड़ा है तीस साल के लूटतंत्र में....मैंने पूछा
चमरू की बेटी ने टोका: एक साल से चमरू सूली पर है।

आपातकाल के दौर में जब रचनाकारों का एक बड़ा वर्ग अपनी वर्गीय पक्षधरता और जनोन्मुखता को लपेट करके स्वार्थ के बिल में छुपाए मौज करने में मगन होना श्रेयस्कर समझा तब विष्णुचंद्र शर्मा ने साहस के साथ कहा -

काले नाग लगाते हैं चंदन के टीके
आज देश के कवि को।
काले नाग चढ़ाकर हाला
राष्ट्र पुरुष को अब पहनाते सोने के जूतों की माला।

स्पष्ट है कि विष्णुचंद्र शर्मा समाजोन्मुखी और प्रतिरोधी चेतना के मुखर स्वर वाले कवि शुरू से रहे। निर्भीकता और सत्ता के उज्जर गलियारों से सदैव दूर रहते हुए उन्होंने वही कहा-लिखा जो मनुष्य समाज के पक्ष को मजबूत करता और संघर्ष की प्रेरणा देता हो। दरअसल कविता विष्णुजी के लिए बैठे-ठाले का शगल न होकर समाज से एक संवाद है और अपने स्वत्व की सतत तलाश भी। यह अकारण नहीं है कि बड़ी मुखरता से विष्णु जी कहते हैं-

कविता मेरा घर है
जहाँ न अलगाव है/न दुराव
बस जीवन की बनी-अनबनी / बस्तियों में
आदमी तलाश कर रहा है मुझे / मेरी कविता में।

सृजनकर्म और सामाजिक व पारिवारिक जीवन में फाँक आज के लेखक/कवि बिरादरी का कटु यथार्थ है, लेकिन विष्णुचंद्र शर्मा मनसा-वाचा-कर्मणा एक सत्यप्रिय और समर्पित रचनाकार हैं जो सत्य की कसौटी में स्वयं को कसने से भी पीछे नहीं हटते - जो उन्हें अन्य कवियों से अलग भी बनाता है।

विष्णुचंद्र जी का चरित्र जागने और जिरह करने वाले कवि का है। जिनकी कविता में जीवन की गतिकी और सभ्यता के बदलाव के चिन्हों का सहज व प्रामाणिक अंकन हमें दिखता है, इस परिप्रेक्ष्य में विष्णुचंद्र शर्मा एक मानक की तरह हैं- जिन्होंने अपने आपको जोखिम में डालकर भी यह काम अद्योपांत किया।

विष्णुचंद्र जी एक ओर रोजमर्रा के संघर्ष, पोषण व दमन के शिकार जन समुदाय की व्यथा कथा अपनी कविता में सिरजते हैं तो दूसरी ओर युगीन राजनीतिक-सामाजिक जड़ता व विषमता के मुद्दे पर सत्ता, राजनीति और समाज के उस बुद्धिजीवी वर्ग को सवालों के घेरे में लाते हैं जो अपनी भूमिका का निर्वहन करने के बजाय 'सत्ता सुख' और 'पूंजी संग्रहण' को ही जीवन लक्ष्य बनाए चालाकी पूर्वक समाज को ठगते हैं। स्थिति पर कटाक्ष करते हुए विष्णु जी कहते हैं -

''क्या नंगे क्या बांधे चाम
क्यों नहीं बदलते जनमन
नंगे फिरते गजब ढहाते, सेठ सभ्य अमरीका जाते।
तस्कर देशी जोधा होते, संसद में बैल दिखलाते।।
नेता परखनली में भूले, जन पातालीपुरी में झूले।
पढ़े-गुने फैलाते नाम, अधर डूबे वार न पार।।
कहता विष्णु सोचो भाई। आधी आजादी है हार।।

आपातकाल के दिनों में जब देश अराजकता से कराह रहा था, सत्ताधारी के साथ-साथ विपक्ष का एक बड़ा वर्ग व साथ में बुद्धिजीवी लेखक, कवि-पत्रकार भी संघर्ष की बजाय सत्ता सुख को ध्येय बनाए हुए थे, तब विष्णुचंद्र शर्मा ने मानो प्रतिरोध का मोर्चा ही खोल दिया था। 'आधी आजादी' को देखते और उस पर कड़ी प्रतिक्रिया के साथ अपना 'सृजनात्मक मोर्चा' संभालते हुए लिखा यह भी कि-

आवेश में टूट जाते हैं छंद बंद।
दरवाजे बंद रहने पर नहीं रुकती है क्रांति बूचड़खाने के बाहर!
बीमार आदमी से अभी मिलता है उसका चेहरा अस्पताल के बाहर
खाली बोतलों को खरीदती हैं क्रांति फिलहाल
दफ्तरों के बाहर क्यूं में खड़ी नहीं रहती हैं क्रांति!

किसी भी कवि की जड़ को पहचानना हो या उसके विकास व वैशिष्ट्य को रेखांकित करना, अपने परिवेश व प्रकृति से उसके जुड़ाव को देखना चाहिए। विष्णुचंद्र शर्मा की सुदीर्घ काव्य-यात्रा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में यह तथ्य पूरी तरह उभरकर सामने आता है कि उनका अपने परिवेश से गहरी संलग्नता और प्रकृति से तादात्म्य व संवाद कभी न छुटने वाला तत्व है। उनका परिवेश व्यापक है। घर-परिवार, अड़ोस-पड़ोस व गली-मुहल्ला ही नहीं समूचा नगर उनके परिवेश की जद में आता है। इससे आगे पूरा देश उन्हें अपना घर लगता है। वह जहाँ भी जाते हैं वहाँ अपना परिवेश ऐसा गढ़ लेते हैं कि अपनेपन की महक से पूरा वातावरण सराबोर होता है1 'बना' 'लूँगा दोस्त' कविता में विष्णुचंद्र शर्मा कहते हैं -

मुझे छोड़ दो/भीड़ में/जंगल में/सागर में
बंजर जमीन में / मैं बना लूंगा दोस्त
फिर भिण्ड-मुरैना के डाकू की लिखूँगा दास्तान
फिर जंगल में ताल्सताय और हेमिंग्वे की/पढूंगा दास्तान
मुझे छोड़ दो / मैं बना लूंगा दोस्त।

विष्णु जी की दोस्ती का दायरा वैश्विक परिवार के साथियों तक फैला पसरा है। इसीलिए उनकी कविता का एक सिरा भारत में होता है तो दूसरा विश्वग्राम के अमेरिका, क्यूबा, अर्जेंटीना, इंग्लैण्ड, जर्मनी, वियतनाम, श्रीलंका, नेपाल, भूटान और बांग्लादेश में। 'समग्रतया समृद्ध जातीय परंपरा के कवि वाल्मीकि तुलसी, कबीर के साथ क्लासिकी के आधुनिक कवि गालिब, मीर, निराला, नागार्जुन, शमशेर, मुक्तिबोध को आत्मसात करने और विश्व साहित्य के ब्रेख्त, लोर्का, नेरूदा, मायकोव्स्की, नाजिम हिकमत, वाल्ट व्हीटमेन आदि की रचनाओं में व्याप्त जीवनलय और संघर्ष चेतना को साधन वाले विष्णुचंद्र शर्मा के काव्य में समकालीन जीवन बोध और वैश्विक बदलाव के प्रामाणिक व बहुविध चित्र हम देख सकते हैं।

यहाँ अंतरंग यात्रा कविता सुनाते हुए यह निर्णय आप पर छोड़ता हूँ कि विष्णुचंद्र शर्मा की कविताएँ क्या हमें स्वयं से संवाद के सूत्र देते हुए विश्व समुदाय से नहीं जोड़ती!

मेरी पृथ्वी/ एक अंतरंग यात्रा है
जहाँ हर आदमी/ एक लहरदार लहर/ नृत्यरत है।
मेरी पृथ्वी की/ कोई सरहद नहीं है।
कोई पारपत्र नहीं चाहिए
सिर्फ स्वर शब्द को उदात्त बनाती
और धीरे-धीरे खोलती / और खोलती चली जाती है
और लय में बांध देती है / हमें तुम्हें !

''विष्णु जी का जीवन संघर्षों से भरा है और विकट अनुभव उनके जीवन का बड़ा हिस्सा है। इन्हीं संघर्ष और अनुभवों से उपजी है उनकी कविताएँ - जिनमें मनुष्य समाज की आंतरिक जद्दोजहद व विसंगतियों का प्रामाणिक अंकन है। उनकी कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में हो रहे नित्य बदलावों, बढ़ती बेचैनियों के बीच अपने स्वत्व के लिए जूझते कलाकार, कवि, कथाकार, पत्रकार की नियति इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में आज कैसी है-इसे भी विष्णु जी खुलकर बयां करते हुए पूछते हैं कि -

सूर्यबली / चंद्रबली
बाहुबली रहते हैं/ संसदीय देश में
बोलो मैं कहाँ रहूँ।

पनसारे, दाभोलकर, कलबुर्गी और गौरी लंकेश जैसे संस्कृतिकर्मियों, पत्रकारों की हत्या भले ही आज की घटना हो, लेकिन इसके सूत्र हमारी व्यवस्था में आजादी के महज दो दशकों बाद ही गढ़ लिए गए थे- जिसका एक परिणाम आपातकाल था तो दूसरा अभी दिख रहा है। ऐसे में विष्णुचंद्र शर्मा के कवि का जो चरित्र उभरता है वह प्रतिपक्षी की आँखों में आँखें डालकर बात करने वाले ऐसे कवि का चरित्र है जो अपने लिए नहीं, देश-दुनिया की जनता के लिए लिखता है और अपनी लिखत में अपना दुखड़ा नहीं बल्कि जनता की पीरा कहता और उनके संघर्ष से अपने संघर्ष को जोड़ते हुए अपने जीवन को नवगति, नव लय देता है।

संपर्क :
बागबाहरा, जिला: महासमुंद
(छ.ग.) पिन - 493449
मो: 09755392532/08959271277

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरा पूरा लेखन, विरोध का लेखन है : विष्णुचंद्र शर्मा

विष्णुचंद्र शर्मा / भास्कर चौधुरी

श्रीपत राय लंच के समय कर्मचारियों को दफ्तर से बाहर जाने से रोकते थे। मैं चाय पीने रेडियो स्टेशन जाता था। दफ्तर में जिनके मुँह से आवाज़ नहीं निकलती थी वे भी लंच करने बाहर जाने लगे। एक दिन श्रीपत राय ने मुझसे पूछा, ''क्या आप लोगों को यहाँ चाय नहीं मिलती ?

17 फरवरी 2002 को दंतेवाड़ा (बस्तर-छ.ग.) में आयोजित 'सूत्र सम्मान समारोह' में शामिल होने आदरणीय विष्णुचंद्र शर्मा जी छ.ग. प्रवास पर थे, तब बागबहरा से दंतेवाड़ा के बीच आठ घंटे के सफर में छ.ग. के युवा कवियों नंद कुमार कंसारी, संजय शाम, निर्मल आनंद, भास्कर चौधुरी, सूरज प्रकाश राठौर, नंदन और शैलेश ने वि.चं. शर्मा जी से विभिन्न प्रसंगों/विषयों पर बहुत ही अनौपचारिक बातचीत की थी। बातचीत का सार यहाँ प्रस्तुत है। - **संपादक**

मेरी रचना और जीवन में परिवार स्थायी रूप से रहा है। नाना सामाजिक साहित्यिक और भाषायी संबंधों से जुड़े हुए थे। माँ की आस्तिकता ने मुझे बिगड़ैल आस्तिक होने से बचाया। पिता के नाते तो पूरी भारतीय राजनीति मेरे घर से जुड़ी हुई थी। पिता कांग्रेस में थे, उनका संबंध चीफ मिनिस्टिर, केंद्रीय मंत्रियों आदि से था। मेरे लिए परिवार ही एक राजनैतिक मंच बन चुका था। मैं जब गुर्जर पाठशाला, कालभैरव में 10 वें दर्जे में पढ़ रहा था तभी मेरे दोनों हाथों में खुजली के दाने निकल आए थे इसलिए हाई स्कूल की परीक्षा में मैं नहीं बैठ सका था। साल खराब न हो जाय इसलिए सम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा में बैठ गया।

मैंने अहिंदी भाषी होने के नाते 'विशारद' की परीक्षा दी थी। मैं स्व. आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के पास गया और उनसे कहा, 'आप मुझे एक प्रमाण-पत्र दे दीजिए'। उनके पूछने पर क्या पढ़ा है, एक दोहा सुनाया मैंने 'रहिमन वे नर मर चुके, जो कछू माँगन जाहि। उनसे पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि।' मैंने उनके पूछने पर दोहे का अर्थ भी बताया था। मैंने कहा, मैं आपसे प्रमाण माँग रहा हूँ। उन्होंने मुझे प्रमाण-पत्र दे दिए। इस तरह विशारद की परीक्षा मैंने दी और पास भी हो गया। उसके बाद मैं बिना किसी से कहे काशी विद्यापीठ गया। विद्यापीठ में भी 'विशारद' की परीक्षा होती थी। मैंने रजिस्ट्रार से कहा, 'विशारद' की परीक्षा मैंने दी है। रजिस्ट्रार ने कहा, 'तुम ऐसे घर से आए हो कि तुम्हारी परीक्षा लेने की जरूरत नहीं, तुम दो विषयों में परीक्षा दे दो, अंग्रेजी और गणित की'। उन्होंने अंग्रेजी की परीक्षा ली। अंग्रेजी मेरे नाना की भाषा थी। उन्हें मैं 'लीडर' पढ़कर सुनाता था। वे अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे। मैं पढ़ता, वे मेरे उच्चारण को ठीक करते। इस तरह अंग्रेजी का मन में जो डर होता है, वह 8-10 वर्ष की उम्र में ही खत्म हो गया था। उस समय मेरे मित्रों में कुछ अंग्रेजी से हिंदी का अनुवाद करते थे तो कोई कविता लिखते थे, हिंदी में या अंग्रेजी में। इसका असर यह हुआ कि मेरे मन में कविता की रूपरेखा बनती गई। आप कल्पना कीजिए, तब मैं 22-24 वर्ष का था, अज्ञेय जैसे कवि ने मेरी कविता देखकर कहा, ''आप यात्री हैं।'' ठाकुर प्रसाद सिंह चकित थे। स्वभावत: मैं कविता में एक यात्री था भी।

पिता की मृत्यु उस समय हुई जब मैं 15 वर्ष का था। एक बार जब मेरे पिता जेल में थे, मुझे पता चला और मैं जेल पहुँच गया।

आज़ादी के बाद उनके मित्र गृहमंत्री हुए। मैं उनसे मिलने गया। चौकीदार ने बंदूक तान दी और कहा, ''हॉल्ट! गृहमंत्री थे संपूर्णानंद जी। पिता की याद में, वह मुझे सहानुभूति से देख रहे थे। उन्होंने कहा, ''सुना है तुम कविता लिखते हो'। उस समय तक मैंने कई कविता लिखी थी- दोनों कविता मुझे याद थीं, वह निराशा भरी थीं। सहानुभूति से संपूर्णानंद जी ने कहा, ''तुम्हारे पिता मेरे मित्र थे'। मुझे रात को एक कमरे में ले आए, खाना मँगवाया और कहा, ''खाओ और सो जाओ''। इस तरह मैं उनके परिवार का ही सदस्य हो गया। मैं पिता और नाना के कारण सामाजिक एवं राजनैतिक संबंधों से जुड़ता गया।

उस समय आ. जानकी वल्लभ शास्त्री ने 'त्रिधा' नाम से 'छायावाद' के तीन कवियों पर समीक्षा लिखी थी। उसकी पहली प्रति उन्होंने मुझे दी थी। उस समय बनारस में दो संस्थाओं - एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'साहित्यिक संघ', दूसरी 'साहित्य परिषद' थी। मैं दोनों का संचालक था। हर सप्ताह एक गोष्ठी होती थी। उसमें महेंद्र चंद्र राय, केदारनाथ सिंह, चंद्रबली सिंह, जगत शंखधर, लालजी सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, नामवर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री सभी आते थे।

'सर्वनाम' के एक अंक में मैंने नामवर सिंह का उस समय का एक पत्र छापा है, जिसमें नामवर सिंह ने गोष्ठी में न आने की सफाई दी है। इसी तरह काशी में एक अच्छा साहित्यिक माहौल मुझे मिला था।

मुझे अपने पिता से स्वाभिमान मिला, अपने रास्ते खोजने की एक शक्ति मिली। 1957-58 में मैंने 'कवि' नाम से कविता का एक मासिक पत्र संपादित किया था। 'कवि' के विशिष्ट कवि थे नामवर सिंह, त्रिलोचन, भवानी प्रसाद मिश्र, मुक्तिबोध, दुष्यंत कुमार, कीर्ति चौधरी। उस पर डॉ. रामअवध द्विवेदी ने एक टिप्पणी लिखी थी। उस समय 'हिंदी रिव्यू' अंग्रेजी में एक मात्र पत्रिका थी। 'कवि' में विशिष्ट कवियों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी भी आलोचक लिखते थे। 'कवि' के आलोचक थे - पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह, चंद्रबली सिंह और मैं।

गांधी जी की हत्या गोडसे ने की थी। गोडसे का समर्थक था रा. स्व. संघ। तब बनारस में संघ की ओर से गोलवलकर आए थे। मैंने उनका एक साझा विरोध किया था। प्रो. विजय देव नारायण साही के पास मैं गया कि हम उसका विरोध करेंगे। कोतवाली का आदेश था कोई जुलूस नहीं निकालेगा। फिर भी हमने विद्यापीठ से जुलूस निकाला और मंच तक गए। सौ लोगों के साथ हम 'धर्मनिरपेक्ष' युवक गिरफ्तार कर लिए गए। राजनैतिक संगठन के रूप में यह मेरी पहली जेल यात्रा थी। आज़ाद भारत में, हमें बनारस जिला जेल भेजा गया था। शहर कोतवाल ने बाद में हर युवक के घर जाकर क्षमा माँगी थी, क्योंकि आज़ाद देश के मुख्यमंत्री ने हमारे विरोध को 'धर्मनिरपेक्ष एकता' कहा था। रात को ही फोन आ गया-मुख्यमंत्री का।

जब मैं जेल से बाहर आया तब मेरे पिता ने गौदोलिया में मेरा स्वागत किया था और मुझसे कहा कि 'तुम्हें गिरफ्तार करने के लिए अभी कोतवाल अफसोस करने आया था।' मेरे नाना गोलवलकर के स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। अखबार में खबर छपी थी, 'नाना स्वागताध्यक्ष नाती जेल में'। इस घटना से नाना भी नाराज थे।

दूसरी बात, उत्तर प्रदेश में महँगाई की भयावह स्थिति थी। सरकार कुछ नहीं कर रही थी। मंदी और अकाल की स्थिति उत्तर प्रदेश में थी। सारी विरोधी पार्टियाँ जिसमें जनसंघ भी थी, विरोधी जुलूस निकाल रहे थे। वे गिरफ्तारियाँ दे रहे थे। मैं जब कम्युनिस्ट पार्टी का जुलूस लेकर चौक थाने पर पहुँचा तो समाजवादी पार्टी के नेता प्रभु नारायण सिंह वहाँ बैठे हुए थे। उन्होंने कहा: "तुम्हें थाना इंचार्ज छोड़ देगा।" मैं चुपचाप हँसता रहा। जीप में बैठाकर हमें कोतवाली ले जाया गया। कांग्रेसी नेता हमारा मज़ाक उड़ा रहे थे।

जेल में कम्युनिस्टों ने बैरक में एक पुस्तकालय खोला। मुझे कम्युनिस्ट नेता रूस्तम सेटिन ने लाइब्रेरियन बनाया। तब हम नाटक खेलते थे। एक नेता जो मेरे पिता का चेला था, उसने कहा कि वह अपने शर्मा जी का बेटा है। नाटक खेलना चाहता है। राजनारायण सिंह को तब दलित नेता बनने का शौक था। राजनारायण एक गमछा पहनकर लैट्रिन साफ करने गए। जमादार से हमने पहले ही कह दिया था कि जब भी कोई लैट्रिन साफ करने जाए उसका गमछा खींच लेना और कहना कि 'तुम नेता हो तो हमारी तरक्की करवाओ। हमारा वेतन बढ़वाओ।' उस दिन जेल में जमादार एक महिला थी। नाटक में, जब राजनारायण आए तो सचमुच उसने उसका गमछा खींच लिया। झाड़ू और बाल्टी भी छीन ली। हमारे नाटक के बाद सोशलिस्ट तो हमसे नाराज़ हो गए, पर भीतर-भीतर सभी राजनारायण का मज़ाक उड़ाने लगे। कांग्रेस के विरोध के बावजूद एक दिन जेलर ने हमें बुलाया और कहा: 'आज कविता-पाठ होगा।'

इस नाटक के समय वहाँ जेलर भी था। मज़ाक में उसने पूछा, "शर्माजी आपको जेल में क्या कष्ट है...?" मैंने कहा, "कोई कष्ट नहीं है, पर मुझे बनारस के 'दि रेस्तराँ' की चाय बहुत अच्छी लगती है और 'जयश्री' रेस्तराँ का समोसा।'

दूसरे दिन कविता पाठ के बाद जेलर आया और उस रेस्तराँ से चाय लेकर आया। इस तरह मैं एक महीने जेल में रहा था। जेल के एक-एक बेजोड़ चरित्र थे। सभी गायक थे, अभिनेता थे, पर गरीब थे। मैं उन्हें आज भी याद करता हूँ।

- फिर शादी की। जो हूँ तुम्हारे सामने हूँ। कि शादी क्यों? वह दोस्त थी, ज़िंदगीभर की दोस्ती रही उससे।

- मैंने यात्राओं पर संस्मरण लिखे। मैं बनारस से दिल्ली चला आया।

- मेरे नाना थे स्व. रामनारायण मिश्र। वे शिक्षाविद थे। हिंदू स्कूल के प्राचार्य थे, 'प्रथम एशियाई शिक्षा सम्मेलन' उन्होंने आयोजित किया था। उन पर 'पं. रामनारायण मिश्र स्मृति ग्रंथ' का संपादन मैंने किया था। पं. रामनारायण स्मृति ग्रंथ में तब उनके विद्यार्थी लालबहादुर शास्त्री भी संस्मरण लिखना चाहते थे, पर वे मास्को गए और वहाँ से न आ सके। उस स्मृति ग्रंथ को पढ़कर मेरे नाना के शिष्यों ने मुझे बहुत सम्मान दिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिल्ली में एम.ए.एस. (पूर्वार्द्ध) करने के बाद एक सह-संपादक के पद का इंटरव्यू देने आया था तभी साहित्य अकादेमी में भी एक सहायक का पद था। वहाँ सभी कवि-लेखक मेरे परिचित थे। जैसे बालकृष्ण राव, प्रभाकर माचवे, अमृत राय। इंटरव्यू औपचारिक था। क्षेमचंद्र 'सुमन' को पहले ही चुना जा चुका था। मैंने तभी नाराज़ होकर कहा था - ''मुझे रखना नहीं था तो दिल्ली क्यों बुलाया?'' सब चुप रहे।

पर दिल्ली में अशोक बाजपेयी जी ने मुझे काम दिलवाया और वे मुझसे जुड़ गए कि एक दिन भी न मिलते तो दुखी हो जाते थे। मुझसे पूछा करते थे कि, ''खाना खाया कि नहीं।'' अशोक जी मेरे लिए काम खोजते थे। मेरे लिए कोई रेडियो प्रोग्राम खोजते। कोई अनुवाद खोजते। बाद में अमृतलाल नागर जी से अशोक जी ने मुझे मिलाया। सभी सोचते थे मेरे बारे में।

मेरे स्व. पिता कृष्णचंद्र शर्मा थे। रघुनाथ सिंह तब कांग्रेस के महासचिव थे। एक दिन आचार्य बीरबल सिंह एम.पी. के घर से वह मुझे 15 कैनिन लेन ले आए। वह जानते थे, मैं कम्युनिस्ट हूँ तब कांग्रेस में इतना घटियापन नहीं आया था। मैं उनके बंगले में सात साल रहा। धीरे-धीरे दिल्ली मेरा शहर हो गया।

साल भर के भीतर मैंने एम.ए.एस. में बहुत काम किया। विद्यापीठ में एक साल तक छात्रसंघ की कोई मीटिंग नहीं हुई थी। एक बार वहाँ दिल्ली से समाज कल्याण मंत्री आने वाले थे। उन्होंने कहा कि विद्यापीठ के पास नया मुद्दा नहीं है। विद्यापीठ का चुनाव हुआ था। लड़कों ने मेरा नाम चुन लिया। सोशलिस्ट कंडीडेट हार गया, कम्युनिस्ट जीत गया। राजाराम जी ने मुझे बुलाकर कहा, ''ये अच्छा नहीं हुआ।'' मैंने कहा इसमें मेरी गलती कहाँ है। मैं तो यह सब अखबार में छपवाने नहीं गया। उन्होंने कहा तब तक बनारस की संस्थाओं की डायरेक्टरी तैयार की। उस पर टिप्पणी करते हुए राजाराम जी ने मुझ पर जो कुछ लिखा वह दस्तावेज है। उन्होंने कहा, ''मेरे बाद यदि विद्यापीठ में सोशल साइंस की मौलिक ढंग से कोई बात कर सकता है तो वह विष्णुचंद्र शर्मा है। वे चाहते थे कि मैं विद्यापीठ में रहूँ। कुलपति संपूर्णानंद जी ने मुझसे तभी पूछा था, एम.ए.एस. करके क्या करोगे? एम.ए.एस. करने से दो ही नौकरी मिलती है, एक जेलर की दूसरी लेबर अफसर की।

तुम लेबर अफसर रहोगे तो ताला लगवा दोगे फैक्टरी में, हड़ताल करवाओगे, जेल में रहोगे तो तीसरे दिन बेकार हो जाओगे। इसलिए एम.ए.एस पढ़कर क्या करोगे?

पूर्वार्द्ध एम.ए.एस. पास करने के बाद मैं हिंदू विश्वविद्यालय में आ गया। वहाँ तब पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी और पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सम्मानित प्राध्यापक थे। वहाँ पं. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा जो मेरे पिता के मित्र थे। क्लास में पहले दिन प्रो. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने मेरे पिता, कृष्णचंद्र शर्मा के नाम से मुझे पुकारा। तब मैंने कहा, ''आप मुझे पढ़ा सकते हैं मेरे पिता जी को नहीं।'' इसके बाद अगले दो साल तक जब भी मेरा नाम आता तो वे मेरा नाम न लेकर आगे बढ़ जाते थे। वह सब देखकर एक दिन मैंने कहा कि, क्या आपने मेरा नाम काट दिया है? तब उन्होंने कहा,''बस, तुम चुप रहो, तुमने ऐसी बात कह दी कि तुम्हारा चेहरा देखकर तुम्हारे पिता की याद आ जाती थी; जो मेरे साथ जेल में रहे हैं।''

इस तरह कहीं नाना के नाम पर, तो कहीं पिता के नाम पर मेरी पहचान बनती रही। जब मैं दक्षिण भारत की यात्रा पर गया तब मैं इलाहाबाद में 'कहानी' में काम कर रहा था। उस समय 'कहानी' के संपादक थे श्रीपत राय। उन्होंने मुझसे कहा कि ''विष्णु, तुम 'कहानी' को फिर से अच्छे ढंग से निकालो।'' मैंने उनसे कहा, ''मैं दो कॉलम चालू करवाना चाहता हूँ।'' इलाहाबाद में उपेंद्रनाथ 'अश्क' और नरेश मेहता भी थे। वे मेरे सह-संपादक बनने पर बेहद खुश थे। एक दिन खुश होकर नरेश मेहता ने कहा, 'कहानी' में अपनी कहानी मैं तुम्हें दूँगा, पर श्रीपत राय से पारिश्रमिक पचास रुपये मुझे मिलना चााहिए। उन्होंने कहा,''यदि मेरी रचना तुम्हें पसंद नहीं आई तो मुझे पारिश्रमिक मत देना।'' अश्क जी वहाँ बैठे हुए थे। उन्होंने कहा, ''अगर मैं तुम्हें रचना देता हूँ तो वह तुम नहीं छाप पाओगे।''

मैंने जितने नए लेखक थे उन पर टिप्पणी लिखी। रामनारायण शुक्ल और रामनंद मेरे बाद कहानी में आए। दूधनाथ सिंह एवं काशीनाथ, शेखर जोशी अक्सर मुझसे मिलते थे। सभी कहानी में सहयोग देना चाहते थे। मैंने हर नए लेखक को पत्र लिखा, शिवप्रसाद सिंह, विद्यासागर नौटियाल ने नई कहानी भेजने का वायदा भी किया था। वहाँ एक क्लर्क था। वह श्रीपत राय से छोटी-छोटी बातों पर शिकायतें करता था। 'विष्णु जी बहुत पत्र लिखते हैं।' मैं जो कहानी पढ़ता उस पर पत्र लिखता था। क्लर्क अक्सर कहानी में आए लिफाफों से टिकट चुरा लेता था। मैंने उनसे कहा, 'लिफाफे में टिकट नहीं लगी है', तो वह मुझसे नाराज़ हो गया।

श्रीपत राय लंच के समय कर्मचारियों को दफ्तर से बाहर जाने से रोकते थे। मैं चाय पीने रेडियो स्टेशन जाता था। दफ्तर में जिनके मुँह से आवाज़ नहीं निकलती थी वे भी लंच करने बाहर जाने लगे। एक दिन श्रीपत राय ने मुझसे पूछा, ''क्या आप लोगों को यहाँ चाय नहीं मिलती?'' मैंने चपरासी से कहा, ''भाई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाय पिलाओ साहब को, यह घोड़े का पिसाब को पीकर आप उसे चाय कह दें तो मैं उसे भी पी लूँगा।'' मैंने कहा कि ''आधे घंटे के लिए लंच में जाते हैं, कोई शमशेर के यहाँ तो नहीं जा रहा हूँ। मैं तब शमशेर के यहाँ रहता था। कुछ खाने-पीने की इच्छा हो तो आप तो नाश्ता भेजेंगे नहीं, तो क्या करें हम।'' बहरहाल मैंने एक दिन 'कहानी' से इस्तीफा दे दिया। आकाशवाणी में नमदेश्वर उपाध्याय, गोपीकृष्ण गोपेश मुझसे मिलते। कुछ कविताएँ, कुछ अनुवाद आकाशवाणी से मुझे उनके जरिए मिल जाता, तो दो-चार पैसे मिल जाते।

और तभी दक्षिण भारत की यात्रा। एक तरह से यात्रा मेरी दास्तां है। दक्षिण भारत की ही देन है 'आकाश विभाजित है'।

साम्राज्यवाद ने तब एक ही काम किया था - भारत का विभाजन। वियतनाम विभाजित हुआ। मेरी लंबी कविताओं की यही पृष्ठभूमि है। ऐसी लंबी कविताएँ प्राय: सबकी प्रिय कविताएँ थीं। 'आयात-निर्यात' इसी तरह की लंबी कविता है। सामाजिक संदर्भों को लेकर किसी ने नहीं लिखा था तब।

दिल्ली में तब राजकमल चौधरी, श्रीकांत वर्मा, नरेश मेहता, मेरे नज़दीकी थे। उस समय नियत समय पर श्रीकांत, मोहन राकेश आदि मिलते थे, जनपथ कॉफी हाउस में। इस तरह कविता, संस्मरण और जीवनी ये मेरी दिल्ली का उपार्जन है।

'गालिब और निराला' दोनों स्वाभिमानी थे और स्वाभिमानी व्यक्ति अपने जीवन में अपने स्वाभिमान की रक्षा जरूर करता है। निराला स्वाभिमानी थे, वे कहते थे कि 'मैं बसंत का अग्रदूत'। उनके स्वाभिमान से टकराने वाले ईर्ष्यालु आलोचकों ने ही निराला को 'कठिन कवि' कहा। सादगी और पुरकारी के लिए गालिब को याद किया जाता है। दोनों पुरानी परंपरा से बहुत कुछ स्वीकारते हैं और कुछ को बुरी तरह नकारते भी हैं। 'मीर' के पास हिंदुस्तान की सरज़मीं की कविताएँ हैं। वे इन्हें अपने से जोड़ते हैं, आकाश, भूमि, पत्ते और हवा की बातें करते हैं।

गालिब का एक बिंब है- 'काग़ज़ी है पैरहन'। कागज़ आज के पत्रकारों का पहनावा है। कागज़ तो गल जाएगा पर रहेगा स्वाभिमान। स्वाभिमान व्यक्तित्व है जिसे व्यक्ति खुद अर्जित करता है। मैं इस दृष्टि से गालिब और निराला को पढ़ता हूँ। आप जैसी पीढ़ी जब उसे पढ़ेगी तो शमशेर की याद आएगी आपको। मीर भी समझ में आएँगे आपको। निराला के साथ की समीपवर्ती परंपरा याद आएगी। इसको पढ़ेंगे तो मध्ययुग के संत कवियों की तरह आप अपने 'ईश्वर' से आत्मालाप करेंगे। यह 'ईश्वर', 'मीर', 'कबीर', शमशेर का अपना ही प्रतिरूप है।

'पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार', कबीर कहते हैं कि मैं पर्वत की पूजा करूँगा, उस मूर्ति को क्यों पूजूँगा जहाँ एक हरिजन को प्रवेश वर्जित है। वह कोई आदमी नहीं, गरीब है। भीतर ही भीतर पुजारी लड्डू खाता है और गरीब आदमी बाहर खड़ा रह जाता है, तो यह कबीर का सिद्धांत है, कवि कर्म है। कबीर के स्वाभिमान का वर्ग संघर्ष इसमें है।

प्रेमचंद का 'होरी' मर जाता है पर ज़मीन से अपना लगाव नहीं छोड़ता। 'रंगभूमि' का सुरा है। मर जाने के बाद उसकी मूर्ति स्थापित की जाती है। उसका वर्ग शत्रु उस मूर्ति के नीचे दब जाता है। यह है प्रेमचंद की महाजनी सभ्यता की दृष्टि। 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद समय का पर्यविक्षण करते हैं। जिसे आप जितना पढ़ेंगे, समझेंगे उतनी ही गहराई से जान पाएँगे। अपने पूर्ववर्ती समय की यात्रा या संघर्षगाथा को।

मुझे बागबहरा से दावत मिलती है या बाम्बे से, तो मैं सोचूँगा कि बागबहरा जाऊँगा कि बाम्बे? मैं सोचूँगा बाम्बे में मुझे सबकुछ मिलेगा; बागबहरा में कुछ नहीं; तो यह मेरा गहरा अंतर्द्वंद्व है। यदि मैं यहाँ आऊँ और आपसे कहूँ आप अपने देश को बदल दीजिए और फिर सोचूँ मैंने इस देश को कितना बदला है, तो यह मेरा अंतर्विरोध है। आज के मध्यवर्ग का यही अंतर्विरोध है।

आप पुश्किन की कविताएँ पढ़िए और कीट्स की और शेली को याद कीजिए। तीनों की कविताएँ कहीं न कहीं अपने देश की आज़ादी की कविताएँ हैं। शेली भारत देश की आज़ादी चाहते थे और अपने आयरलैंड की आज़ादी भी चाहते थे। वे आज़ादी, जनवाद, गणतंत्र और अंतर्राष्ट्रीयता से जुड़ते थे। ताज़महल को आज हड्डियों का ढाँचा ही कहेंगे। इस तरह हर आदमी अपनी दृष्टि और इतिहास के अनुसार एक दूसरे से कहीं न कहीं जुड़ता है। 'मीर' अपनी ''शायरी में अपने वक्त के विडंबनाओं की डायरी लिखते हैं। उसके बाद मोहन राकेश को पढ़ लीजिए। राहुल की जीवनी पढ़ लीजिए, नागार्जुन की यात्रा 'हरिजन कथा' पढ़ लीजिए। इन सबों में कहीं न कहीं समानता नज़र आएगी। ''शमशेर की हर कविता में शमशेर का व्यक्तित्व ही दिखाइ देता है। चाहे 'बैल' क्यों न हो। ''शमशेर के दिल में, मुक्तिबोध के दिल में, हमारे समय की लड़ाई दिखाई देती है। कोई आदमी किसी कवि की ज़मीन पर खड़ा होकर नया नहीं हो जाता। वह उसका अनुकर्ता हो सकता है, उसकी कार्बन कॉपी हो सकता है। एक बार हेमिंग्वे ने एक लाइब्रेरी में ''शेक्सपीयर और टॉल्स्टॉय की रचनाएँ पढ़ीं तो सोचा कि मैं ऐसी दुनिया में आ गया हूँ जिसे मैं जानता ही नहीं।''

रूसी क्रांति के बाद लैटिन अमेरिका में उस समय यदि कोई व्यक्ति काम कर रहा था तो वो था 'चे गेवारा'। हेमिंग्वे को देखिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तो कहीं न कहीं टॉलस्टॉय, कहीं न कहीं दोस्तोवस्की भी उनकी रचना में मिल जाएँगे।

त्रिलोचन में एक ऐसा कवि है, जिसमें 'सरलता का आकाश' मैंने देखा है। ''शमशेर जिसे 'जटिलता' का कवि कहा जाता है वो शमशेर त्रिलोचन के लिए पूरा हिंदुस्तान है।

किसी चीज़ को आप बार-बार पढ़ेंगे तभी आप उसकी सरज़मीं की पहचान कर सकते हैं। किसी चीज़ को आप पढ़ते हैं तो आप उससे कहाँ जुड़ते हैं ये आप पर निर्भर करता है। कोई कहे कि महाभारत किसने लिखा, तो हम कहेंगे व्यास ने। परंतु कइयों ने महाभारत पर किताबें लिखीं। किसी ने द्रौपदी पर किसी ने कर्ण पर। कर्ण को दलितों के साथ आरोपित किया है, तो पांचाली को स्त्री की आज़ादी के साथ। इसलिए हम कह सकते हैं कि निराला की तरह हम 'चतुरी चमार' नहीं लिख सकते।

आप टॉलस्टॉय को पढ़कर डायरी लिखते हैं, तो भी आप टॉलस्टॉय की डायरी नहीं लिख सकते। परंतु टॉलस्टॉय को समझने के लिए आपकी डायरी हमारे लिए बहुत उपयोगी होगी। तुम डायरी में अपना दुख लिखोगे तो वह केवल तुम्हारा ही दुख नहीं होगा। आस्त्रोवस्की का 'अग्निदीक्षा' उपन्यास है। यदि वह दुख लिखता है तो वह केवल आस्त्रोवस्की का दुख नहीं है; वह आपके समय का भी दुख है।

कल्पना भी एक तरह से भविष्य का मानचित्र ले आती है। एक रचनाकार की कल्पना का स्रोत मर या सड़ जाए तो उसकी सभ्यता भी मर जाती है। हर व्यक्ति काल की सीमा के पार देखता है अपने में एक समानधर्मा की तलाश करता है। रजत की माँ मुझे देखकर यदि सोचे कि वह भी हमारे जैसा ही है। हमारे जैसा ही इसका दुख-सुख है तो वह हमारे समानधर्मा हुई। यदि आप रजत की माँ पर कविता लिखते हैं परंतु आपकी माँ में रजत की माँ जैसा गुण नहीं है, तो आपकी कविता में वैसी अंतरंगता नहीं होगी। पाब्लो नेरुदा जब एक लड़की को देखकर कविता लिखते हैं तो वह केवल एक लड़की पर कविता नहीं लिखते, बल्कि लड़की के माध्यम से समय की सभ्यता के एक कोने को रेखांकित करते हैं। सौंदर्य को परखते हैं।

अज्ञेय का 'शेखर' मध्यम वर्ग की रूढ़ियों को तोड़ता है। रामविलास, केदारनाथ अग्रवाल को स्वकीया यानी अपनी पत्नी का कवि मानते हैं। रघुवीर सहाय को पत्रकारिता का कवि कहते हैं। मुक्तिबोध को आज के साहित्य से यदि निकाल दिया जाय तो आज का पूरा साहित्य लंगड़ा हो जाएगा। रघुवीर सहाय की पत्रकारिता में आज की पत्रकारिता के सापेक्ष कवि रूप को यानी मुक्तिबोध को देखना होगा।

जैसे नेपाल के माओवादियों को हम यदि 'आतंकवादी' कहेंगे, तो आपकी-हमारी समझ भोथरी कहलाएगी। उनकी लड़ाई सत्ता से है। सत्ता की नीति से है। तेलंगाना में किसान आज भी जमीन की लड़ाई लड़ते हैं, अपनी ज़मीन, अपनी शिक्षा से वे जुड़े हुए हैं। राजनीति में परिपक्व क्या हैं? क्यूबा के मुकाबले अमेरिका की जनता आज स्वयं को अपमानित महसूस करती है। जब तक संसदीय राजनीति में जनता की हिस्सेदारी नहीं होगी तब तक हम यह तमाशा देखते ही रहेंगे। यह एक सब्जबाग है। हमारे देश में मजदूरों में असंतोष व्याप्त नहीं है। यह सोचकर मज़दूरों को सरकार सुविधाएँ दे रही है। एक तरह यह मज़दूरों में क्रांति पैदा न हो; इसलिए सरकार की यह एक सोची समझी चाल है।

गालिब हमारे समय में जीवित हैं। आधुनिकता के सारे पुट उसमें मिलेंगे। अकेलेपन, निजी विडंबनाओं से दैनिक स्थितियों का लेखा-जोखा इनमें मिलते हैं। आप जब भी तन्हाई में हों, तनाव की स्थिति में रहेंगे, तो आपको कोई शेर याद आएगा। वह शेर गालिब का होगा।

मेरे मन में यह सवाल उठा कि गालिब हमारे बीच कहाँ है? यदि आप एक बड़े व्यक्ति से मिलते हैं तब आप उस व्यक्ति के बारे में क्या सोचते हैं? कालिदास से आप यदि मिलते तो आप क्या बातें करते। गालिब से मिलेंगे तो क्या बातें करेंगे। निश्चय ही गालिब और अपने दौर की 'आयरनी' की बातें करेंगे। उनके माध्यम से हम दोनों के दौर को समझ सकते हैं। आज के दौर जिससे हम गुज़र रहे हैं उसे समझ सकते हैं। उस समय को पुनर्नवा कर सकते हैं। समय की जटिलताओं को समझ सकते हैं। गालिब और निराला हमें परंपराओं से जोड़ते हैं। वो परंपरा कहीं न कहीं हमें भविष्य की ओर ले जाती है। गालिब और निराला में एक जगह मैंने 'सुखराम' नाम दिया है कि गालिब जा रहे हैं और सुखराम के घर से आवाज़ आ रही है। गालिब देखते हैं कि भाई ये किसकी आवाज़ आ रही है और वे देखते हैं कि सुखराम के घर से हीरा, मोती पकड़ा जा रहा है उनके साथ पुलिस लगी हुई है। वे उन्हें तस्कर की तरह देख रहे हैं।

समकालीन रचनाकार अपनी 'आयरनी' में किसी न किसी व्यक्ति को जोड़कर रखना चाहते हैं। कहीं न कहीं तुम्हारे भीतर भी मीर बैठे हुए हैं। जरूरी नहीं मीर की बेचैनी, आपकी भी बेचैनी हो। मीर ज़रूर तब आपके भीतर की बेचैनी का गवाह बन जाते हैं। आपकी 'आयरनी' को सार्वजनिक करना चाहते हैं। यह बड़े रचनाकार की ख्वाहिश होती है। शमशेर की कविता में एक बात आती है कि इन जंगलों को कौन बचाता है। शमशेर कहते हैं कि हर कवि में साँसों की स्वयं की पहचान होती है। ये अपनी रक्षा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वयं कर रहे हैं। कोई सरकारी मुलाज़िम, कर्मचारी इसे नहीं बचा रहे हैं।

एक बार मैं जी. शंकर कुरूप से मिला था। वे बता रहे थे कि हिंदी कविता में समुद्र नहीं है। मैंने कहा निराला जी ने समुद्र को इतनी अच्छी तरह व्यक्त किया है कि जो हमारी संवेदनाओं को विचलित करते रहता है। 'अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुध अपार'। इस एक पंक्ति से मैं कह सकता हूँ कि निराला जी समुद्र के एकमात्र कवि हैं।

हम जहाँ के हैं वहाँ के परिवेश ही हमारा है। वैसा नहीं है तो वह परिवेश कविता में भी व्यक्त नहीं होगा। बड़े रचनाकार बड़े परिवेश पर लिखते हैं। बड़ा परिवेश यानी गरीबी, तंगहाली, बदहाली। आज भी अमेरिका से बड़े आदमी आते हैं, इसका मुआयना करने उस मुआयने में अमेरिका का परिवेश है। यहाँ का परिवेश नहीं है। तुम लोगों की कविता में यहाँ की जनपदीय बोली, भाषा की संस्कृति, बोली, भाषा और संस्कृति का चित्र मिलता है। मैं चाहूँगा तुम्हारी कविता से मैं यहाँ की संस्कृति और बोली के बारे में और आधिकारिक जानूँ।

निराला पर जब चारों तरफ से प्रहार हो रहे थे, तब उसने एक तरफ अपनी रचना 'सरोज स्मृति' लिखी दूसरी तरफ 'दुख ही जीवन की कथा रही' लिखा। अपनी निराशा का विकल्प खोजते हुए गालिब कहते हैं 'बेदरो दीवार का एक घर बनाना चाहिए'। कब्रगाह में कोई दीवार नहीं होती। गालिब जिस समय में लिख रहे थे उस समय आज़ादी की पहली लड़ाई चल रही थी। 'बेदरो दीवार' का अर्थ है आज़ादी के मतवाले आज़ादी के लिए कुछ भी कर सकते हैं। गालिब और निराला आज़ादी के समानांतर कवि हैं। ''शमशेर की कविता में एक अंत तक दृढ़ मार्क्सवाद बैठा रहा। हिंदी का दुर्भाग्य है कि जो हिंदी में 'नई कविता' का दौर था उसमें गालिब से ''शमशेर तक की ज़ीवन की आधुनिकता को निकाल दिया गया था।

कविता के जो जीवित तथ्य थे, वे मुक्तिबोध, शमशेर, त्रिलोचन, नागार्जुन में थे। मेरा पूरा लेखन विरोध का लेखन है; नागार्जुन विरोध का, मुक्तिबोध असंतोष का, इस तरह ये सभी हमारे समय की कविता का आधार बनाते हैं।

प्रेमचंद 'मालती' (गोदानं) में आधुनिक आदर्श नारी खोजते हैं। मेहता में जीवन के दर्शन को स्थापित करते हैं। टॉलस्टॉय ने अतीत को मोड़ दिया, प्रेमचंद ने गोदान लिखकर भारतीय समाज के किसान जीवन को पुनर्जीवित कर दिया; अपनी आयरनी को स्वीकार किया।

'काहूँ की बेटी से बेटा न ब्याहब' तुलसीदास कहते हैं। मैं किसी की बेटी से अपने बेटे की ''शादी नहीं करूँगा, बल्कि मैं तो राम को मानता हूँ। 'कबीरा खड़ा बाजार मे' कबीर बाजार में खड़ा होकर अपना ही घर फूँक रहा है। कबीर का घर सुख-सुविधाओं का घर नहीं था। ये कुछ अनुभव के परिपक्व सूत्र हैं। कबीर इन्हें अनुभव की बात कहते हैं।

मुक्तिबोध प्रेमचंद से कहाँ जुड़ते हैं? मैं मानता हूँ कि गोदान के मेहता का मुक्तिबोध अगला कदम है। मार्क्सवाद अपने दौर के अतीत और भविष्य का विवेचन करता है। रामविलास चिंतन का इतिहास लिखते हैं। लोकायत दर्शन महाभारत से प्रारंभ होता है। कुछ एक तरह से व्यक्ति को 'लोकायत दर्शन' से जोड़ते हैं।

यदि आप अवधी से हिंदी लिखते हैं तो आपके मन में आएगा कि आप जायसी से जुड़ रहे हैं। आप ऐसे छंद लेते हैं जो बरवै में गाए गए हों तो आप त्रिलोचन, तुलसी और निराला से जुड़ते हैं - बरवै के माध्यम से।

हर बड़ा कवि अपने समय की ट्रेजिडी में भी उदारता को तलाशता है। वह उदारता क्या है? मार्क्सवाद हमारे समय का ऐसा ही आईना है। वह एक संभावना को तलाशता है। मनुष्य का जातीय इतिहास पानी के बुलबुले की तरह नहीं है, तो भविष्य संभावनाशील कैसे होगा। यह हमें देखना है, शोक उस माहौल को स्वत: दबा देता है, पर शोक का कवि आद्र होता है। इसलिए वाल्मीकि ने शोक में ही काव्य की उत्पत्ति की है। भवभूति करुणा के महाकवि कहे जाते हैं। आपकी निराशा आपके भीतर नई संभावना को जन्म देती है।

'दो टके की टोपियाँ...स्वराज लो, स्वराज लो', लिखकर नागार्जुन राजनीतिक समय को देखते हैं और क्षुब्ध हो जाते हैं कि देश का बादशाह ज़मीन के एक चप्पे के लिए महरूम हो रहे हैं। गालिब की उदासी भी क्या है? उनके दोस्त लोग नहीं होते तो उसे यह भी मालूम नहीं कि एक टुकड़ा शोरबा या शराब मिलेगा कि नहीं। दोस्तों के लिए गालिब के शोरबे से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है ज़िंदगी के प्रति उसका लगाव।

संपर्क :

प्रस्तुति : भास्कर चौधुरी, सूरज प्रकाश राठौर

मो :- 09098400682 / 09425282460

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साक्षात्कार :

'मैं जिस राजकमल से मिला हूं, वह या तो यात्री है या भागा हुआ युवक'

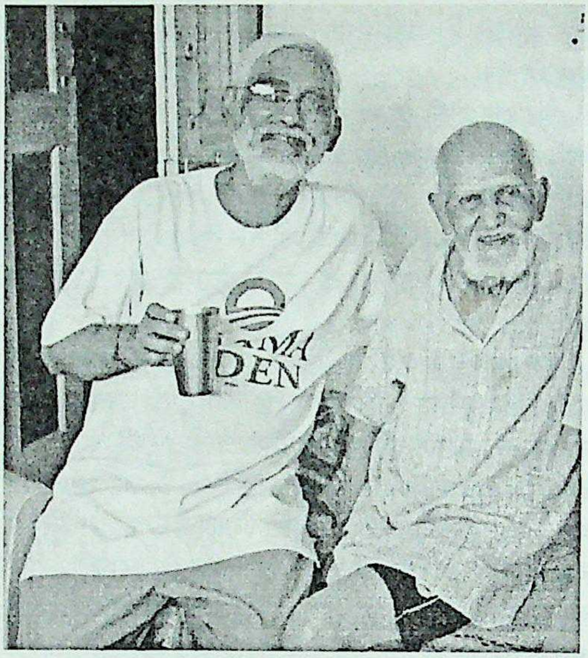

राजकमल प्रसंग में विष्णुचन्द्र शर्मा से
महेश दर्पण की बातचीत

राजकमल चौधरी का एक समय था। देश भर में उनकी चर्चा एक विलक्षण रचनाकार के रूप में होती रही। लेकिन फिर जैसे सब भुला दिया गया। विष्णुचन्द्र शर्मा राजकमल जी के मित्रों में से हैं। उनसे राजकमल प्रसंग पर एक अनौपचरिक बातचीत।

प्र : आपका परिचय पहले राजकमल चौधरी से हुआ या उनकी रचना से?

उ : राजकमल से पहली मुलाकात मधुछंदा के नाते हुई। वह बनारस आया था, मधुछंदा की तलाश में। इसकी सूचना मुझे शंभुनाथ ने दी थी। उस समय ये सभी लोग ठर्रा की तलाश में ऐसा कोई होटल खोजते थे, जहां दस रुपये में एक बोतल मिल जाए। यह 'कवि' के प्रकाशन से पहले की बात है।

प्र : मधुछंदा कौन थीं?

उ : एक दिन शराब पिलाते हुए कंचन ने अनिल करंजई से पूछा था कि मधुछंदा कौन है? राजकमल ऐसी चर्चा में बहुत रस लेता था। उसकी आंखें चमक जाती थीं। वह चश्मा उतार कर ऊपर रख देता था। कहता था- 'वह मुझे बहुत मानती है। मुझे लम्बे ख़त लिखती है। इसे केवल मैं जानता हूं या शंभुनाथ।' कंचन ने कहा- 'तुम दोनों मिथिला के हो। फिर इस बंगाली लड़की से तुम्हारी दोस्ती कैसे हो गयी?' उसने कहा-'दोस्ती तो ऐलेन गिंसबर्ग से भी थी। उस पर तू क्यों नहीं पूछ रहा।' उस समय पूरा बंगाल गिंसबर्ग का भक्त था। सभी राजकमल और गिंसबर्ग का इंतज़ार कॉफी हाउस में करते थे। गिंसबर्ग मिलनसार था। अपनी ज़िंदगी के बारे में खुलकर बात करता था। हिप्पोक्रेसी से नफ़रत करता था और हम बंगाल से बनारस तक छिपी-दबी कुंठाओं के शिकार थे। गिंसबर्ग से मिलकर हमने अपनी कुंठाओं का सामना किया। मधुछंदा से मैं उसके बंगाली होने के नाते बांग्ला में बातचीत करता था।

प्र : कभी आप राजकमल के घर भी तो गये थे?

उ : हां, मैं पटना में राजकमल के घर एक बार गया था। उसके दादा संस्कृत के विद्वान थे। वह उनसे संस्कृत में बात कर रहा था। शिवचंद शर्मा से वह मैथिल में बात कर रहा था। लेकिन शिवचंद शर्मा की बेटी से बांग्ला में बात कर रहा था। बातचीत बहुत सहज थी। मुझे पहले पहल राजकमल भाषा के इस संगम में बेहद दिलचस्प और डायनेमिक लगा। डायनेमिक इस अर्थ में कि वह दादा का सम्मान करता था। शिवचंद शर्मा और उनकी बेटी का सम्मान करता था। लेकिन बातें अपने खुलेपंन की करता था। शिवचंद शर्मा उसके खुलेपन के नाते उसके करीब आये थे। उन दोनों ने उसी समय मिलकर 'नयी धारा' का संपादन किया था। और अगर मैं भूल नहीं रहा हूं तो वह उस समय एक साहित्यिक पत्रिका थी। उसके मालिक ज़मींदार थे। पैसे वाले थे।

प्र : 'नयी धारा' में तो आपने भी लिखा है।

उ : हां, पहली बार राजकमल ने मुझसे एक कविता मांगी थी। मैंने पोस्टकार्ड पर एक छोटी-सी कविता उसे भेजी। उसने 'पोस्टकार्ड कविता' स्तंभ के अंतर्गत अपनी और मेरी वह कविता छापी थी। यह मेरी साहित्यिक दोस्ती का एक हिस्सा था।

प्र : कलकत्ता में राजकमल और गिंसबर्ग का असर कैसा था?

उ : गिंसबर्ग के कलकत्ते प्रवास में राजकमल और बंगाल की पूरी नयी पीढ़ी कॉफी हाउस में बैठती थी। एक बार वहां मैं भी गया था। कॉफी हाउस के टेबल पर एलेन गिंसबर्ग खड़ा हो जाता और अपनी 'हाउल' कविता सुनाता। खालीपन। उसके बाद बंगाल की नयी पीढ़ी सुनाती। उस समय सिगरेट में गांजा या कोई चीज़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मिलाकर ये लोग पीते थे। मेरा परिचय एलेन गिंसबर्ग से कॉफी हाउस में ही हुआ था। कॉलेज स्ट्रीट में किताबों की दुकानें पटरी पर थीं और ज़्यादातर लेखक अपनी-अपनी पसंद की किताबें वहीं से खरीदते थे। इनमें ज़्यादातर अमेरिका या इंग्लैंड की एंग्री जेनरेशन की किताबें आती थीं। तब पूरा माहौल एक जनतांत्रिक सोच का था। एलेन की पहली कविता थी- 'द ओल्ड डेमोक्रेटिक पोएट वाल्ट व्हिटमेन'। वाल्ट व्हिटमेन के डेमोक्रेटिक संघर्ष का हिस्सा अमेरिका की आज़ादी के संघर्ष से जुड़ा हुआ है। एलेन बंगाल या हिन्दी के रचनाकारों की मध्य वर्ग की कुंठा या निराशा पर खुलकर बात करता था। यह ठीक है कि उनकी बातचीत का केंद्र अजीब-अजीब तरह के नशे थे। सिगरेट में एलेन कुछ मिलाता, राजकमल कुछ मिलाता, बंगाली रचनाकार कुछ मिलाते, और उस नशे में वह अपने बंगाली या मैथिल कल्चर की धज्जियां उड़ाते। मुझे कलकत्ते में पता लगा कि ऐलेन बनारस आयेगा, वह आया भी।

प्र: राजकमल को इस सबके बीच आपने कैसा देखा?

उ: राजकमल के मूल संस्कार मैथिल के थे। वह शिवचंद शर्मा को मैथिल में अपनी कविताएं सुनाता। मुझे हिन्दी की नाराज़ पीढ़ी की कविताएं सुनाता। कुछ लोगों ने उसी समय 'नाराज़ पीढ़ी' नाम से एक कविता-संग्रह भी निकाला था। लेकिन राजकमल न बहुत करीब एलेन गिंसबर्ग के रहा और न ही नाराज़ पीढ़ी के कलकत्ते के रचनाकारों के। कलकत्ते में उसकी ज़िदगी बहुत बेचैनी भरी थी। उस बेचैनी को मैं अभी समझ रहा हूं 'तद्भव' में प्रकाशित संस्मरण से। वह पिता से दूर था और पिता उसे आवारा समझते थे। मिथिला में भी उसका कोई एक स्थान नहीं था। उसके इस भटकाव को करीब से या तो शिवचंद शर्मा ने देखा या शंभुनाथ मिश्र ने। वह राजकमल के पड़ोसी थे। विद्यापति उत्सव में ये सब शरीक होते थे। लेकिन मैं जिस राजकमल से मिला हूं, वह या तो यात्री है या भागा हुआ युवक।

प्र: एक समय आप राजकमल चौधरी के काफी निकट थे। इस निकटता में आप लोगों की रचनाएं सहयोगी रहीं या उस समय की पत्रिकाएं?

उ: पटना में दो व्यक्ति राजकमल के बेहद प्रशंसक थे। एक नलिन विलोचन शर्मा, दूसरे नागार्जुन। राजकमल इन सबसे जुड़े थे। 'कवि' 57-58 में शुरू हुआ था। 'कवि' के कम से कम जनवरी से अप्रैल तक के अंक राजकमल ने देखे थे। कंचन कुमार के 'मराल' में मेरा संस्मरण पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' पर और दूसरा नागार्जुन पर प्रकाशित हुआ था। नागार्जुन ने उस पर बहुत उत्साहवर्धक पत्र मुझे लिखा था। उसी सिलसिले में राजकमल से मेरा साहित्यिक लगाव रहा। कलकत्ते से निकलने वाले 'ज्ञानोदय' (जिसके संपादक जगदीश जी स्वयं एक अच्छे कवि थे। नामवर और शमशेर के निर्माण में उनका हाथ है) में मुद्राराक्षस, राजकमल चौधरी लिखने लगे थे। मेरी दक्षिण भारत की यात्रा में लिखी कविताएं 'धर्मयुग' और 'ज्ञानोदय' में छपी थीं। इस लेखकीय निकटता के नाते राजकमल मुझे बहुत अपना मानते थे।

प्र: राजकमल चौधरी ने आपके संग्रह पर लिखा भी तो था...

उ: 'आकाश विभाजित' की कविताएं मैंने खुद छापी थीं। उस पर राजकमल का 'माध्यम' में एक लम्बा लेख प्रकाशित हुआ था। विजयमोहन सिंह और इब्बार रब्बी का लेख था। मेरी रचनाओं से राजकमल बेहद प्रभावित था। इसी नाते उसने एक मित्र के जरिए संदेश भेजा था कि 'मुक्ति प्रसंग' मैंने खुद कंपोज किया है। खुद खादी भंडार से काग़ज़ लाया हूं। लेकिन यह पुस्तक तभी छपेगी जब आप 'मुक्ति प्रसंग' के कवि का परिचय लिखकर भेजेंगे। अगर आपने नहीं लिखा तो मैं इस किताब को रोक दूंगा।

प्र: तो फिर लिखा आपने उस पर?

उ: मेरे और उसके स्वभाव व रचनात्मक दृष्टि में एक अंतर था। मैं पटना गया। तब राजकमल अस्पताल में था। 'मुक्ति प्रसंग' की छपी हुई प्रति उसके बगल में थी। केवल कवर पर मेरा लेख छपना था। मुझे देखते ही वह बेहद खुश हुआ। उस खुशी में उसने अपनी लुंगी, जिसमें दाग़ मवाद और खून के थे, दिखाते हुए कहा- 'विष्णु, ये हिंदुस्तान का नक्शा है।' मैंने कहा-'हां राजकमल, ये तुम्हारी कुंठाओं का यात्रा प्रसंग है या चित्र।' वहां तीन-चार लड़के थे। उनमें एक आलोक धन्वा थे। उन्होंने सबको इशारे से कहा- 'जाइये।'

मेरा हाथ पकड़कर राजकमल फफक कर रो पड़ा। उसने कहा- 'विष्णु, वाकई ये मेरी कुंठा या पराजय का नक्शा है। इसीलिए मैं चाहता हूं कि तुम इस 'मुक्ति प्रसंग' पर लिखो।' हम लोग कुछ देर तो चुप रहे। मैंने 'मुक्ति प्रसंग' पर लिखा अपना एक पेज का नोट उसे दिया। उसने उसे पढ़ा और किसी व्यक्ति को बुलाकर कहा- 'कवर के लास्ट पेज पर विष्णु जी का यह लेख जाएगा।' तभी अचानक मेरी निगाह 'मुक्ति प्रसंग' के पहले पेज पर गयी। वह समर्पण का पन्ना था। लिखा था- स.ही. वात्स्यायन अज्ञेय जी को। अज्ञेय उस समय तक प्रभाकर पादे के साथ सोवियत विरोधी अमेरिकी कल्चर के सदस्य थे और मैं या मेरी तरह के युवक उनके सोवियत विरोध से नाराज थे। उस समय सेठाश्रयी अख़बारों के खिलाफ़ एक आंदोलन चल रहा था, जिसमें व्यक्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वतंत्रता के बहाने श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय टिप्पणियां लिखा करते थे कि रूस में व्यक्ति स्वतंत्रता नहीं है।

मेरी बेचैनी को देख कर राजकमल ने कहा- 'इन टिप्पणियों से मैं परिचित हूं। मैं सोवियत विरोधी नहीं हूं। न ही अमेरिका मेरे लिए सपना है। मेरी एक निजी समस्या थी, जब मैं अस्पताल आया तो न मेरे परिवार के किसी व्यक्ति ने यहां मुझे देखा, न पटना का कोई साहित्यकार मुझसे मिलने आया। अचानक एक दिन लम्बे स्वस्थ व्यक्ति को मैंने देखा। वह अज्ञेय थे। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा। मेरे सिर पर अपना हाथ रखा। उनके मौन से मुझे अपार शक्ति मिली। मैं उठ नहीं सकता था। मेरे तकिए के नीचे उन्होंने एक लिफाफा रखा जिसमें 300 रुपये थे।'

भरी हुई आंखों से राजकमल ने मेरी ओर देखा और कहा-'मेरे जीवन का यह पहला अवसर है कि अज्ञेय मुझे देखने आये। उनकी सहानुभूति मेरे युवा लेखक पर थी।' 'तुमने समर्पण की जगह अगर यह प्रसंग लिखा होता तो 'मुक्ति प्रसंग' में तुम सचमुच एक सांस्कृतिक मुक्ति के मित्र होते।' 'विष्णु, ऐसे ही समय तुम्हारी ज़रूरत थी। मैं बार-बार सोचता था कि तुम होते तो मैं इस समर्पण के पेज को नये रूप में दे सकता था। इसीलिए मैंने तुम्हारे पास बनारस एक मित्र को भेजा था। तुम पत्र को पाते हुए मेरे पास आये।'

अब मुझे यह याद नहीं है कि 'मुक्ति प्रसंग' के ब्लर्ब पर मैंने क्या लिखा था। उसके बाद पटना के अनेक लेखक, राजकमल के मित्र मेरे भी मित्र बन गये थे।

प्र: राजकमल की ख्याति तो उस वक़्त दूर-दूर तक पहुंच चुकी थी...

उ: हां, राजकमल की कविताओं का असर मैंने नेपाल की यात्रा में देखा था। 'मुक्ति प्रसंग' की अनेक कविताएं वहां युवा लेखकों को याद थीं। वे सम्मान के साथ राजकमल के मित्र के रूप में मुझे देख रहे थे। विवादों के बीच राजकमल नयी पीढ़ी का जनतांत्रिक कवि था। विद्यापति, नागार्जुन, राजकमल, रेणु मिथिला प्रदेश में पड़ोसी थे। मिथिला की समृद्धि का एक चित्र 'तद्भव' में तारानंद वियोगी ने दिया है। मैंने उस संस्कृति को रामविलास शर्मा की किताब के अनुसार 'नया जागरण' कहा था। आज सोचता हूं तो नागार्जुन अगर विद्यापति की संस्कृति के नवजागरण के भीष्म पितामह थे, तो राजकमल युवा चेतना का प्रतिनिधि था।

नेपाल में वासु शशि से मैंने राजकमल चौधरी पर लम्बी बातें की थीं। नेवारी भाषा में वासु शशि ने एक कविता लिखी थी जिसका अनुवाद शंभुनाथ मिश्र ने किया था और वह 'धर्मयुग' में छपी थी। मैं कहना चाहता हूं कि नेपाल से बनारस तक जो पीढ़ी नयी आ रही थी, वह राजकमल के मुहावरे दुहरा रही थी। एलेन गिंसबर्ग का ज़िक्र मैंने इसीलिए किया कि 'हाउल' के कवि ने डेमोक्रेसी के कवि पर पहली कविता लिखी थी। राजकमल सांस्कृतिक ठहराव के विरुद्ध इसीलिए सांस्कृतिक बदलाव का कवि था।

प्र: यह एक विचित्र बात है कि राजकमल के अद्भुत गद्य की ओर कम लोगों का ध्यान गया है...

उ: राजकमल के गद्य के नागार्जुन, नलिन विलोचन शर्मा और नकेन के केसरी कुमार बेहद प्रशंसक थे। एक आश्चर्य की बात यह है कि 'मुक्ति प्रसंग' के साथ ही साथ इन लोगों का कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हुआ था। केसरी कुमार को छोड़कर। यह बात मैं इसलिए भी कह रहा हूं कि जब मैं दूसरी बार पटना गया तो नलिन जी ने अपना कहानी-संग्रह मुझे भेंट किया और कहा था- मैं राजकमल के गद्य का प्रशंसक हूं। उस समय तक केवल 'ज्ञानोदय' और 'नयी कहानी' में राजकमल की एक-दो कहानियां छपी थीं। यह बात मुझे उस समय याद आयी जब जगदीश चतुर्वेदी ने 'प्रारंभ' नाम से एक संकलन निकाला था। उसमें मैं, राजकमल, मुद्राराक्षस, जगदीश चतुर्वेदी, सौमित्र मोहन और मणिका मोहिनी की कविताएं थीं। उस संकलन को हम लोगों ने एक साथ तैयार किया था। जगदीश चतुर्वेदी तब केंद्रीय हिन्दी निदेशालय की पत्रिका 'भाषा' के संपादक थे। उस समय उनका ऑफिस दरियागंज में था। कहानी का ज़िक्र मैंने इसलिए किया कि राजकमल ने उसी समय आत्माराम के यहां उग्र की कहानियों का एक संकलन तैयार किया था। उसकी विशेषता यह कि हर कहानी पर उस कहानी के मर्म को छूती टिप्पणियां थीं। ऐसी टिप्पणियां फिर मुझे 'बीसवीं शताब्दी की हिन्दी कहानियां' में ही पढ़ने को मिलीं।

प्र: नये समय की नयी कविता के प्रमुख कवि के रूप में राजकमल चौधरी ने अपनी पहचान बनायी थी। यह असंतुष्टि से भरी कविता थी जिसमें जनतांत्रिकता प्रमुख थी... उनके विद्रोह को आप किस रूप में देखते हैं?

उ: राजकमल को विद्रोही कवि के रूप में कम लोगों ने याद किया है। आज़ादी के बाद जो हिप्पोक्रेसी मध्य वर्ग में नज़र आने लगी थी, उसका विरोध राजकमल ने किया था। कहीं न कहीं उन चरित्रों को एक्सपोज किया था। उसके मूल में था आज़ादी के बाद का मोहभंग। नेहरू समाजवाद की बात करते थे, पर समाजवाद का आज़ादी के बाद कोई स्वरूप सामने नहीं आया था। उलटे नंबूदरीपाद ज़मींदार थे। कम्युनिस्ट सरकार ने दो बड़े कदम उठाये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे। एक-स्कूलों का राष्ट्रीयकरण, दूसरा ज़मीन पर अधिकार। ज़्यादातर स्कूल, कॉलेज या अस्पताल ईसाइयों के थे। खुद कम्युनिस्ट सरकार में जोसेफ मोंटेसरी शिक्षामंत्री थे। जिनके कार्यकाल में भारत में पहली बार राइटर्स को-ऑपरेटिव बनायी गयी। लेखक को 20 प्रतिशत रॉयल्टी मिलती थी। सीनियर राइटर्स को देश-विदेश घूमने के लिए अग्रिम राशि की व्यवस्था भी थी। इस असंतोष के पीछे कम्युनिस्ट मूवमेंट का इलाकाई संघर्ष था। हर इलाके में तब सांस्कृतिक समारोह होते थे। नेहरू ने पहली बार एक संविद सरकार को गिराया था। इसका देशव्यापी असर पड़ा। और केरल से बंगाल तक व उड़ीसा से छत्तीसगढ़ तक सांस्कृतिक केंद्र बनते गये। राजकमल और नागार्जुन इस दौर के विरोधी कवि थे। उनका सीधा विरोध सत्ता से था। मुक्ति प्रसंग के बाद राजकमल चौधरी मार्क्सवाद को फिर से पढ़ा। विशेषकर मार्क्स की इंग्लैंड में अर्थनीति को लेकर कुछ पुस्तकें। तब मजदूरों का समय निर्धारित रहता था। चार्टिस्ट आंदोलन का असर सारे देश के अंदर था। राजकमल मूवमेंट का तो कवि नहीं था, लेकिन मिथिला की धार्मिक रूढ़ियों का, सामंती प्रथा का वह विरोधी था। खुद उसके घर में सामंती दबदबा था। उसके असंतोष का एक कारण मिथिला में उसका परिवार था। शायद राजकमल और नागार्जुन को एक साथ महसूस हुआ था कि मैथिल का दायरा स्थानीय है। राष्ट्रीय संघर्ष के लिए हिन्दी की ज़मीन बहुत असरदार रहेगी। नागार्जुन 'यात्री' के नाम से लिखते थे, लेकिन राजकमल 'फूलबाबू' के नाम से याद किये जाते थे। लेकिन 'मुक्ति प्रसंग' से बाद की कविताओं में असंतोष के कई रूप नज़र आते हैं। हिन्दी कविता में पहली बार उसने देशज मुहावरों का प्रयोग किया है।

प्र: राजकमल की कविता के प्रभाव को आपने भी महसूस किया?

उ: हां, इससे बेहद प्रभावित था धूमिल। धूमिल का 'संसद से सड़क तक' संग्रह छप चुका था। मैंने उससे पूछा था- 'क्या ये कविताएं तुम अपनी पत्नी और गांव के सामने पढ़ सकते हो?' उसमें ज़्यादातर बिम्ब स्त्री के अवयव को लेकर थे। पेटीकोट, ब्लाउज, चोली को लेकर थे... कुछ लोगों ने इसीलिए अश्लील कविता या अकविता का नाम दिया। वे लोग खुद अपने मध्यवर्गीय जीवन में हिप्पोक्रेट थे। आलोचना की इस हिप्पोक्रेसी में आलोचना नहीं होती थी, फिकरे उछाले जाते थे। इस आलोचनात्मक गतिविधि का मूल्यांकन पहली बार देवीशंकर अवस्थी ने कानपुर में और सुरेंद्र चौधरी ने बिहार में किया। 'स्टेट्समैन' में चंचल सरकार का एक लेख छपा था अमेरिका में गालियों के ऊपर। उसमें उसने साफ कहा था कि अमेरिका की कविता में स्लैंग बहुत आते हैं। वे कौन से हैं? एक नीग्रो को नीचा दिखाने के लिए, दूसरा नारी को अपमानित करने के लिए गालियां ईजाद की गयी हैं। अगर आलोचकों ने उसका अध्ययन कविता के सामाजिक परिवर्तन को ध्यान में रख कर किया होता तो ... कि गालियां सामंती सभ्यता को एक्सपोज करती हैं। दलित और नारी, जो समाज का सबसे अपमानित और पिछड़ा हिस्सा था, पर गालियां चस्पां की जाती थीं।

प्र: जिस सामाजिक परिवर्तन की बात आप कर रहे हैं, वह कैसे सामने आया?

उ: बंगाल से केरल तक जो सामाजिक माहौल था, उसमें युवक और युवती एक साथ सामंती परिवार से बाहर आते हैं। सत्यजित रे की फिल्में, मृणाल सेन की फिल्में... वही नहीं, जापान की एक फिल्म 'बाइसिकिल थीफ' के जरिए पहलेपहल असंतुष्ट नारी और दलित सामने आते हैं। यहां एक प्रसंग याद आ रहा है-राजकमल और रेणु शाम को रेस्त्रां की जिस टेबल पर बैठते थे, वह घोषित किये बगैर उनके लिए रिजर्व रहती थी। वह समय पहली परम्परा, यानी किसान आंदोलन का था। 33 के भूकंप में बहुत बड़ा रोल इन असंतुष्ट युवकों का था। उनमें राहुल, कार्यानंद, सहजानंद आदि किसान आंदोलन की जबर्दस्त कड़ी थे। राहुल जी के विरोध को दबाने के लिए एक ज़मींदार ने हाथी पर एक व्यक्ति को बैठाया था। हाथी और उस व्यक्ति को शराब पिलायी गयी थी। उसने राहुल पर प्रहार किया था। इस एक घटना ने बिहार के हर लेखक को विरोध की अगली पंक्ति में पहुंचा दिया था। रेणु और राजकमल उसी आंदोलन की उपज थे। हिन्दी में उस समय नामवर जी दूसरी परम्परा के नाम पर शुक्ल जी को गिराने के लिए हजारी प्रसाद द्विवेदी को सांस्कृतिक परम्परा का आलोचक सिद्ध करने में लगे थे। नामवर सिंह ने कहीं नहीं बताया कि पहली परम्परा क्या है? लेकिन राजकमल का लेखन, विशेषकर उसकी कहानियां, रिपोर्ताज और स्केच और रेणु के रिपोर्ताज, कविताएं, उपन्यास व स्केच इसी दौर के दस्तावेज़ हैं। नागार्जुन की दृष्टि नयी पीढ़ी पर थी। 'रतिनाथ की चाची' के चरित्र को लेकर उसके बेटे को लेकर, 'बलचनमा', 'नयी पौध' और उस पीढ़ी को लेकर रेणु, राजकमल और नागार्जुन पहली परम्परा रच रहे थे।

प्र: यह माहौल दरअसल था कैसा?

उ: बिहार में 'जनता' अख़बार निकलता था। उसके पन्ने उलटने पर आपको उस दौर का समाजवादी आंदोलन समझ में आ जाएगा। राहुल और रामवृक्ष बेनीपुरी की अधिकतर रचनाएं वहीं छपती थीं। ये सब मिथिला के धार्मिक, सांस्कृतिक आंदोलन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को एक नया रूप दे रहे थे। नाटक खेले जा रहे थे गांव-गांव। नागार्जुन ढपली लेकर कविता सुनाते थे। नयी पीढ़ी के इस असंतोष को देवीशंकर अवस्थी ने गहराई से समझा और कहानी की रचना-प्रक्रिया के बहाने सुरेंद्र चौधरी ने बदलते हुए इंसान की मानसिकता को कहानी में पहचानने की कोशिश की। एलेन गिंसबर्ग इसका बाहरी रूप था। अमेरिका में नयी पीढ़ी गिंसबर्ग के साथ आ चुकी थी। इंग्लैंड में नये गायक आ चुके थे। उनका गहरा असर नयी पीढ़ी पर था। इन चीज़ों का सामाजिक मूल्यांकन आलोचकों ने नहीं किया। इसीलिए रेणु, राजकमल और नागार्जुन का समाजशास्त्रीय अध्ययन नहीं हुआ। हर आंदोलन का एक रूप पॉजिटिव होता है, एक निगेटिव। पॉजिटिव के लेखक राजकमल थे, रेणु थे और निगेटिव रूप के जरिए गांजा, चरस, अफीम और शराब का प्रचलन शुरू हुआ। मैंने पहले जिस होटल का ज़िक्र किया है, वह निगेटिव पहलू है। जब इन दोनों पहलुओं क़ा समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाएगा तब पता चलेगा कि बेनीपुरी, राहुल, कार्यानंद, सहजानंद आदि का बहुत बड़ा रोल था। इन्हीं से जन्म लेता है दार्जिलिंग में नक्सलवाद मूवमेंट। नक्सलवाद तब बंगाल और केरल में बहुत गहराई तक फैल चुका था। महाश्वेता देवी की आत्मकथा और उनके उपन्यास इस दौर को समझने के लिए दस्तावेज़ का काम करते हैं। दो सीधी धारा ही बन चुकी थी- एक सत्तापरस्तों से मोहभंग की, दूसरे उससे संघर्ष की। केरल उस समय नक्सलवादी आंदोलन का केंद्र था। हर इलाके में जनवादी नाटक खेले जाते थे। समारोह होते थे। नागार्जुन और रेणु इस आंदोलन की नब्ज को पकड़ रहे थे। राजकमल ने इस नब्ज को महसूस तो किया था, पर वह उसका हिस्सा नहीं बने थे। इसके पीछे बिहार, बंगाल, यूपी के हिप्पोक्रेटिक कल्चर से असंतोष का मुद्दा था।

प्र: 'प्रारंभ' का भी तो इससे गहरा नाता था...

उ: हां, 'प्रारंभ' के कवि इस असंतोष को उभार रहे थे। सौमित्र की कविता 'लुकमान अली' ने उस असंतोष की रेखाओं को अबिक विडंबनाओं के साथ चित्रित किया। राजकमल और रेणु का ही अगला रूप सौमित्र मोहन हैं। रमेश गौड़ ने इस दौर को अपनी लम्बी कविता में 'पतन गाथा' कहा है। प्रगतिशील आंदोलन में अगर कॉडवेल के 'इल्यूजन एंड रिअलिटी' का गहरा असर था तो इस पीढ़ी के सामने 'स्टडीइंग इन डाइंग कल्चर' और 'फर्दर स्टडीइंग इन डाइंग कल्चर' का भी बड़ा गहरा असर था। इस दृष्टि से रेणु और राजकमल का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए। प्रेमचंद ने अपने एक लेख में इस सभ्यता को महाजनी सभ्यता का तिलस्म कहा है। प्रेमचंद ने जो समाजवादी सोच का पहला पत्थर रखा था, उसमें धन से मान पाने वालों का विरोध है। ऐंद्रिय लिप्सा से जुड़ी हुई सभ्यता का विरोध है। प्रेमचंद के उस लेख को अगर गोर्की के एक लेख के साथ देखा जाए कि पूरा यूरोप दूसरे महायुद्ध के बाद विभाजित व्यक्तित्व का लेखक था। इस विभाजित व्यक्तित्व का ही रूप श्रीकांत वर्मा, निर्मल वर्मा थे, जिन्हें आधुनिकता के नाम पर ज्यों का त्यों उभारा गया। उसी तरह सभ्यता के तिलस्म में बुद्धिजीवी अवसरवादी होता गया।

राजकमल के असंतोष को उनकी कहानियों में गहराई से देखा जा सकता है। कविता में उसका परिवेश अवसरवाद के विरोध का परिवेश है। कुमरेंद्र पारसनाथ सिंह और बहुत से व्यक्ति उस दौर में आये, पर वे राजकमल, रेणु और नागार्जुन की ज़मीन के लेखक नहीं बन सके। इसकी वजह ये थी कि जहां आंदोलन था, आदिवासी, किसानों और युवकों में, उससे ये लोग लगातार दूर होते गये। इसी समय दिल्ली से कलकत्ते तक मध्य वर्ग के लेखकों ने नारा दिया था कि ये दौर सन्नाटे का दौर है।

प्र: इस दौर में लघु-पत्रिकाओं ने भी तो बड़ी भूमिका निभायी थी..

उ: बिलकुल। लघु-पत्रिका 'लहर' इस दौर की महत्वपूर्ण पत्रिका थी। जहां सेठाश्रयी पत्रिकाओं को एक्सपोज किया जाता था। उस दौर में ऐसे भी लोग थे, जैसे रमेश बक्षी ने एक पत्रिका निकाली थी। वह शहरी जीवन के भ्रम का, इल्यूजन का पत्र था। उसमें सब कुछ था, लेकिन राजकमल जैसी राजनीति और विचार की समझ नहीं थी। इसी सन्नाटे के बीच में अज्ञेय ने एक शब्द दिया था-

'शांति, कितनी शांति
यहां भी समाहित क्यों नहीं होती
मेरे हृदय की भ्रांति...'

ज़्यादातर सप्तक के कवि प्रगतिवाद से दूर होने के लिए नयी कविता के कवि हुए। जिसका मोटो था- हम हृदय की भ्रांति के रचनाकार हैं। पराजय और अतीत की स्मृतियां इस दौर की दो प्रवृत्तियां थीं। निर्मल वर्मा का पूरा लेखन ही अतीतजीवी रहा है। पर मूलत: वह लेखक हृदय के भ्रम में जाता रहा है। मोराविया का उपन्यास 'एम्पटी कैनवस' था। श्रीकांत वर्मा ने द्वितीया यानी पत्नी के बाहर सम्बन्ध पर एक उपन्यास लिखा 'दूसरी बार'। यूरोप में मोराविया को एक फ्रस्टेटेड लेखक के रूप में याद किया जाता है। 'दूसरी बार' उसी फ्रस्टेशन का प्रतीक है। राजकमल के बाद के लेखक राजकमल के मुहावरे तो इस्तेमाल करते हैं, पर वे उन्हें मुख्यधारा से कटे हुए लेखक मानते हैं। इसीलिए लम्बे समय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तक रेणु, नागार्जुन, राजकमल को आलोचकों ने मजाक के रूप में ही याद किया। इन तीनों का संघर्ष अवसरवाद के इस तिलिस्म को तोड़ना था। व्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर रघुवीर सहाय, श्रीकांत, सोवियत संघ के विरोध में उस दौर को समझने का अर्थ है कि राजकमल की, उसके 'मुक्ति प्रसंग' की फिर से पहचान की जाए।

प्र : फिर से क्या, साठोत्तरी कहानी में आलोचकों द्वारा उनके लिए जगह ही कहां रखी गयी थी...

उ : यह बात सही है। बनारस में मैं प्रेमचंद के भाई महताब राय के बाद प्रेस मैनेजर था। वहीं एक दिन विजयमोहन सिंह आये। कहा- 'विष्णु जी, यह किताब छापनी है'। मैंने कहा- काग़ज़ का इंतजाम कर दो। मेनिस्क्रिप्ट देख कर मैंने पूछा- 'दूधनाथ सिंह और मधुकर सिंह कहानीकार हैं और राजकमल नहीं? मेरी समझ में राजकमल सबसे समर्थ कहानीकार है। फिर तुमने साठ के बाद के कहानीकारों में उसे क्यों नहीं लिया?' मेरे सवाल से विजयमोहन पसोपेश में पड़ गये, क्योंकि उस समय तक काशीनाथ की भी कोई कहानी याद नहीं की गयी थी। जबकि राजकमल की हर कहानी पर कलकत्ते और पटना में बात हुई थी। मुझे दुख भी हुआ और आश्चर्य भी। विजयमोहन ने राजकमल के निधन पर मुझे एक पत्र लिखा- 'राजकमल पर आपको लिखना है।' मैंने कहा- 'विजयमोहन, जब तुम उन्हें कहानीकार ही नहीं मानते हो तो यह औपचारिकता क्या ज़रूरी है?' विजयमोहन तब राजकमल और शिवचंद शर्मा के बाद 'नयी धारा' का संपादन कर रहे थे। राजकमल के न रहने पर उनकी इतनी चर्चा हुई कि विजयमोहन जैसे व्यक्ति हतप्रभ थे। मैंने कहा- राजकमल, नलिन जी और शिवचंद शर्मा पर तो मैं लिख सकता हूं, पर तुम्हारे यहां राजकमल पर मैं नहीं लिखूंगा। उनके उस अंक में ज़्यादातर औपचारिक प्रसंग थे। राजकमल की बीमारी, परिवार से उसकी उदासीनता पर किसी ने 'मुक्ति प्रसंग' और उनकी कहानी पर कोई चर्चा नहीं की। उस समय कुछ नये लेखकों ने रेणु के लेखन और चरित्र पर कुछ चर्चा की थी। रेणु मुझे अपने घर ले गये थे। 'अग्निगर्भ' या इसी तरह की नाराज पीढ़ी पर एक बहुत तीखी कहानी लिखी थी। मूलत: वह आलोकधन्वा पर थी... लेकिन उसमें राजकमल का नाम नहीं आया था। बाद में जब दूसरा 'नीलपत्र' प्रेस में था, रेणु और शंभुनाथ मिश्र ने उसमें राजकमल की चर्चा एक निर्भीक लेखक के रूप में की थी। उसमें एक लेख राजकमल का था और एक मेरा। मैंने राजकमल की कुछ रचनाओं, उसके विरोध के चरित्र पर खुलकर लिखा था। बाकी साहित्य के आलोचकों ने राजकमल का नाम लेना तक ज़रूरी नहीं समझा था। हां, मधुछंदा ने मेरे कहने पर अपने और राजकमल के कुछ पत्र उस अंक के लिए दिये थे। उस समय तक कुछ छुटपुट विरोध राजकमल का लेखकों के बीच चर्चा में आ गया था। पर वो भी ऐसा कि राजकमल झूठ बोलता है, राजकमल कुछ विदेशी लेखकों के नाम पर 'इलस्ट्रेटेड वीकली' और 'धर्मयुग' में लेख लिखता है आदि चर्चा तब राजकमल के साथ नत्थी हुई थी। मुझे याद है कि केवल तब राजकमल का एक लेख, उस पर मेरा और कंचन कुमार का लेख 'मराल' में प्रकाशित होकर चर्चा में था। नागाजुर्न ने उसी समय 'लाल बाबू' नाम से एक कविता लिखी थी और बताया था कि ज़्यादातर लोग राजकमल का नाम तक कहानी-कविता में लेने से बचते थे। जिस मैथिल समाज की इधर 'तद्भव' में चर्चा की गयी है, वैसी चर्चा भी तब राजकमल की मेरे देखने में नहीं आयी थी। ज़्यादातर लोगों ने राजकमल के साथ अपनी दोस्ती की बातें ही उछाली थीं। अज्ञेय ने उसी समय एक लेख लिखा था- हिन्दी का आलोचक अपने साथ चलता है। अपने साथ चलने वाले आलोचकों में उन्होंने नामवर का खाका खींचा था। तभी अज्ञेय ने एक कविता भी लिखी थी- 'आ, मेरे पीछे आ...'। उस पर कई लोगों ने कविता लिखकर अज्ञेय का विरोध किया था। मुझे लगता है कि देवीशंकर अवस्थी और सुरेंद्र चौधरी के अलावा किसी आलोचक ने राजकमल की कहानी और कविता को तरीके से याद नहीं किया।

साभार : ('दुनिया इन दिनों' अंक - 15 अक्टूबर 2017)

संपर्क :
विष्णुचन्द्र शर्मा : 09810481433
महेश दर्पण : 09013266057

CC-0-Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विष्णुचन्द्र शर्मा की कविताएं

सभ्यता का ज़हर

सुबह की
भाषा में
कोई प्रदूषण नहीं है

सुबह की
हवा
पेड़ों को
बजा रही है

सुबह की
भाषा में
ताज़े पेड़
पहाड़ों से
तराना
सीख रहे हैं

सुबह यहां
कोकाकोला की
भाषा में

सभ्यता की मरी
हुई भाषा का फिर भी
ज़हर
फ़ैल रहा है
दिल में
दिमाग में।

अकेला मैं गिरूंगा
मैं अकेला पेड़
जब जंगल में
गिरूंगा।
धूप मुझको
अपनी खुली छाती में
सुलाएगी।
पर्वत सुबह देखेगा...
अनमने जंगल को।
पेड़ की हरी चादर
मुझ पर
गिराएगी हवा।
गिलहरी
जब तक
उछलेगी मुझ पर।
धूप
फिर सारे दिन
बढ़ई को,
किसान को,
बच्चों को,
औरतों को
कहानी सुनाएगी
गिरे हुए
पेड़ की।

कबीर बाज़ार से चले गये

कबीरदास
उठे और घूम आए
चमरौटी तक।
जहाँ पीट रहा था आदमी
अपनी 'कुलच्छनी' पत्नी को।

कबीरदास ने
आदमी को दी
पत्थर की नाव और
कहा: 'नदी पार कर लौटना'
तब तक कुलटा या कुलच्छनी
आँगन बुहार लेगी
कपड़े फीच लेगी
रोटी पा लेगी
और तुम्हारा इंतज़ार करती रहेगी...।
आदमी ने
पत्थर की नाव पानी में उतारी
पर नाव जलसमाधि लेने लगी
उसके साथ...
कबीरदास को
मैंने देखा
मुख्य चौराहे पर चौपड़ बिछा रहे थे।
हँसा मैं:
'यह अरघ-उरघ बाज़ार है कबीर।'
कबीर ख़ूब हँसे
चौपड़ पर गोटी नहीं
एक आदमी था, दूसरी थी औरत।
दोनों का खेला
बाज़ार में देख रहे थे बेज़ुबान लोग!
कबीरदास ने कहा:
'खेलो तुम भी, हाँ विचार कर खेलना।'
देखते-देखते सब,
कबीर बाज़ार से चले गए दूर...।

खाली कमरों के बीच

खाली कमरों के बीच है
खाली बसा घर,
जहाँ एक कमरा
दूसरे कमरे को टटोलता है
और खाली घर में चुप्पी बस जाती है।

बिजली अभी नाच रही थी,
मुखौटे लगाकर एक कमरे में
दूसरा कमरा हँस रहा था ढीठ हँसी
तीसरा कमरा बीते हुए दिनों की चीज़ें उधेड़ रहा था।

काले मुखौटे पहने तीनों कमरे अब क्या सोच रहे हैं!
मैंने एक दरवाज़ा खोला
और भूल गया इस कमरे का
श्रृंगारदान कब दर्पण को जगाता है
बस अँधेरे में ग़र्क उस कमरे में
अपने घुटनों को मैंने सावधान किया
और दूसरा कमरा मुझे छोड़ आया तीसरे कमरे तक।

तीसरे कमरे की खिड़की खोलकर मैं भूल गया अपना घर
सिर्फ़ खिड़की पर रखा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक उजला काग़ज़
मेरे पास आया
उसमें नाम मेरा था
और हस्ताक्षर पत्नी के थे
मैं अफ़सोस करता रहा यह ख़त मैंने यहाँ
खिड़की पर कब छोड़ दिया था!
बिजली के बीच मैंने देखा तीनों कमरे पढ़ रहे हैं वही ख़त एक साथ
दीवारें झुकी भी हैं और तनी भी
खाली कमरों के बीच बस रहा हूँ अभी मैं।

पहाड़ की डायरी

मैंने
बस के पड़ोसी यात्री से पूछा:
उत्तरी अमरीका के पहाड़
एटलांटिक सिटी के
जुए के अड्डों में
नहीं जाते हैं!!

यात्री मित्र ने कहा :
उत्तरी अमरीका के
आदिम पहाड़
न्यूयार्क के बाज़ार में
नंगी तन्वंगी का नाच नहीं देखते हैं।

दोनों ने उत्तरी अमरीका के पहाड़ों से पूछा:
'मित्र
सारे दिन
यहाँ एकान्त में
अपनी डायरी में
लिखा क्या करते हो!'

कथा

यह जो मन मार कर
पसरा है आकाश
यह शुरुआत नहीं है।

यह जो डुबकियाँ लगाकर
बैठा है पत्थर
यह मायूसी नहीं है।

यह जो अख़बारों में लगातार
लुप्त हो रही है सभ्यता
यह ढाई आखर नहीं है।

यह जो मेरे भीतर छटपटा कर
खोजा करता है प्रेम
यह तुम्हारी रूपकथा नहीं है।

दोनों मित्रों के पास निराला

एक को लगा
लॉस एंजल्स शहर
बच्चों की खुली हुई क़िताब है।

दूसरे को लगा
लॉस एंज्लस शहर
लोहा, पत्थर और शीशे के स्थापत्य का
खिला हुआ कमल है।

एक ने,
भागती कारों को देखकर कहा:
शहर की सड़कें
गतिमान शिराएँ हैं।

दूसरे ने कहा :
नहरों और फूलों के बीच
हर ऊँचा उठा भवन
शीशा जड़ा पेड़ है
शीशा जड़ें पेड़ों की
अनगिनत दुनिया है।

दोनों मित्रों के पास
रोने डेन ड्रोन का पेड़
हथेली में फूले आसमान को
थामे हुए खड़ा है
निराला-सा!

संपर्क :
मो : 09810481433, (दिल्ला)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्तर-सत्य और लोकतंत्र

अरुण माहेश्वरी

हम सचमुच एक अजीब से काल में रह रहे हैं। अंबर्तो इको का प्रसिद्ध लेख है - Power of Falsehood। इस लेख की मैंने पहले भी कई बार चर्चा की है। इसमें उन्होंने आदमी के जीवन में सच की शक्ति को मानने पर भी झूठ की महत्ता को कुछ इस रूप में भी देखा था कि जैसे यह सच की ओर यात्रा के किसी प्रस्थान की तरह हो, मनुष्य की यात्रा के लिये एक चुनौती की तरह। इस लेख के अंत में वे कहते हैं कि ''कुछ लोगों को इतिहास के एक समय में यह संदेह कि सूरज धरती के चारो ओर चक्कर नहीं लगाता है उतना ही घृणित लगता था जैसे यह कि इस ब्रह्मांड का कोई अस्तित्व ही नहीं है, इसीलिये अपने दिमाग को ऐसे समय के लिये स्वतंत्र और तरोताजा रखने की जरूरत है, जब विज्ञान के क्षेत्र के लोग यह घोषणा कर दें कि ब्रह्मांड का विचार ही एक कोरा भ्रम है जैसे धरती के चपटे होने की बात।'' इस लेख का अंतिम वाक्य था :

''गहराई में जाएं तो, समाज का पहला कर्त्तव्य यह है कि वह इतना चौकस रहे ताकि प्रत्येक दिन वह विश्वकोश का पुनर्लेखन कर सके।''

लेकिन हम यहां जिस उत्तर सत्य की बात करने के लिये इकट्ठे हुए हैं, उसका सत्य की खोज या पहचान की तरह के पहलू से दूर दूर तक का भी कोई रिश्ता नहीं है। सत्य के परे यह झूठ और झूठ और झूठ के रसातल में ही डूब कर खत्म हो जाने के जीवन के एक नये युग की परिभाषा है। यह पूर्व से कभी आदमी के मानस में बैठा हुआ झूठ नहीं है, यह जान-बूझ कर फैलाया जा रहा और अपनाया जा रहा झूठ है।

'पोस्ट ट्रुथ' पद सिर्फ डेढ़ साल पहले दुनिया में चर्चा में आया था जब 2016 के अमेरिकी चुनाव में लोगों ने अचानक देखा कि राष्ट्रपति पद के लिये वहां एक ऐसा आदमी खड़ा हो गया है, जिसका सच की किसी भी बात से कोई संबंध नहीं है। वह पूरे दम-खम के साथ अनर्गल रूप से झूठ पर झूठ बोलता चला जाता है। मामूली तथ्यों तक की वह परवाह नहीं करता। उसने चला दिया कि ओबामा का बर्थ सर्टिफिकेट झूठा है और ओबामा ने ही आईएस(इस्लामिक स्टेट) की नींव रखी थी। ओसामा बिन लादेन और बराक ओबामा को एक व्यक्ति तक बना दिया। क्लिंटन दंपत्ति के बारे में चला दिया कि वे बच्चों के हत्यारे हैं। एक और प्रतिद्वंद्वी के पिता को उस ली हार्वे ओसवाल्ड का साथी बता दिया, जिसने जॉन एफ कैनेडी की हत्या की थी।

हम जानते हैं कि हर जगह राजनीतिज्ञ झूठ बोलते रहे हैं, लेकिन यहां समस्या यह है कि राजनीतिज्ञों की इस नई पौध का सच से जैसे कोई नाता ही नहीं है! और इससे भी बड़ी समस्या यह है कि इतनी नंगई के साथ झूठ बोलने वाला भी राजनीति में जनता के द्वारा पुरस्कृत हो जाता है। साधारण लोगों को उसकी उटपटांग बातों से कुछ इस प्रकार का अहसास होने लगता है कि देखो, यह एक शेर आया है जो अब तक के सारे बुद्धिमानों, कुलीनों की अक्ल ठिकाने लगा सकता है।

दुनिया में डोनाल्ड ट्रंप को इस पोस्ट ट्रुथ का प्रवर्त्तक माना जाता है। लेकिन राजनीति के इस रूप का हमारा अनुभव तो ट्रंप से भी दो साल पुराना है, केंद्र की राजनीति में मोदी के उदय के समय से ही। हमने तो देखा था कि मोदी कैसे धड़ल्ले से तक्षशिला को बिहार में ले आए थे और सिकंदर की लड़ाई बिहारियों से करवा दी थी। उन्होंने जनसंघ के संस्थापक श्यामा प्रसाद मुखर्जी को क्रांतिकारी बताने के लिये उन्हें लंदन में श्याम कृष्ण वर्मा बता दिया। यहां तक कि धारा 370 के बारे में कह दिया कि वह तो सिर्फ औरतों के अधिकारों से जुड़ी एक धारा है। ऐतिहासिक तथ्यों की मनमानी व्याख्या में भी उनकी कोई बराबरी नहीं थी। भारत को वे 1000-1200 साल से गुलाम बताने से नहीं हिचकते। 'सामाजिक समरसता' नामक पुस्तक का विमोचन करते हुए उन्होंने कह दिया कि ''दलित मंद बुद्धि बच्चों की तरह होते हैं।'' वाल्मीकि समुदाय के लोगों के बारे में कहा कि वे आध्यात्मिक अनुभव लेने के लिये मैला ढोया करते हैं और गटर साफ करते हैं। सोहराबुद्दीन शेख के फर्जी इनकाउंटर के बारे में भरी सभा में कहा कि वह इसी प्रकार के व्यवहार का हकदार था, और उस पर सभा में शामिल लोगों का अनुमोदन भी हासिल किया। हांकने में वे इतने उस्ताद रहे कि पश्चिमी सीमाओं पर डटे हुए सैनिकों के प्रति अपने प्रेम को जताने के लिये कह दिया कि वे 700 किलोमीटर की पाइप लाईन बैठा कर उनके लिये नर्मदा का पानी लाये हैं। इसके पहले अपनी एक सभा में उन्होंने फैला दिया था कि 15 दिसंबर 2012 के दिन भारत गुजरात और सिंध को समुद्र में अलग करने वाले सर क्रीक मुहाने को पाकिस्तान को सौंप देगा, जबकि इस विषय पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी किसी की किसी के साथ कोई चर्चा तक नहीं हुई थी।

सन् 2002 में मुसलमानों के बारे में कहा कि उनका उसूल है हम पांच और हमारे पचीस। जब कि गुजरात में मुसलमानों की आबादी के अनुपात में पचास साल में कोई वृद्धि नहीं हुई है। सोनिया गांधी के इलाज पर सरकार ने 1800 करोड़ रुपये खर्च कर दिये, यह भी उनका फैलाया हुआ ही एक झूठ था।

मोदी शुरू से लेकर आज तक ऐसी न जाने कितनी बेतुकी, तथ्यहीन बातें कहते रहे हैं, इसका कोई हिसाब नहीं है। नोटबंदी के समय तो वे हर रोज एक नया झूठ गढ़ा करते थे। अभी वे डावोस में अपने भाषण में कितनी झूठी बातें बोल रहे थे, भारत में शांति और समृद्धि के बारे में, लालफीताशाही के खात्मे और इनक्लुसिव ग्रोथ के बारे में। इन बातों को हम सब जानते हैं। जिस समय वे भारत में 'सबका साथ सबका विकास' की बात कह रहे थे, उसी समय यहां पर इन तथ्यों पर चर्चा चल रही थी कि देश की 73 प्रतिशत संपदा पर 1 प्रतिशत लोगों का कब्जा है। देश में अपने को सुखी और समृद्ध समझने वालों की संख्या घटते-घटते अब आबादी का सिर्फ तीन प्रतिशत रह गई है। और प्रधानमंत्री डावोस में बड़े लोगों के अपने टोले के साथ बेपनाह मौज में लगे हुए थे।

इन सबमें जिस बात से हम पोस्ट ट्रुथ को परिभाषित कर सकते हैं, वह प्रमुख बात यह है कि इस प्रकार पूरी नंगई के साथ सफेद झूठ बोल कर भी राजनीति में एक आदमी सफलता की सीढ़िया चढ़ सकता है। आज यह मामला सिर्फ मोदी या ट्रंप तक सीमित नहीं है। पोलैंड, रूस, टर्की, ब्रिटेन सब जगह इसके उदाहरण देखने को मिल रहे हैं। ब्रिटेन में ब्रेक्सिट के लिये प्रचार के वक्त यह झूठ फैलाया गया था कि यदि ब्रिटेन ईयू से अपने को अलग नहीं करता है तो टर्की का जो विभाजन होने वाला है, उससे ब्रिटेन में टर्की के शरणार्थियों की बाढ़ आ जायेगी।

सफेद झूठ के आधार पर की जाने वाली राजनीति की इस स्थिति में जिन देशों में लोकतंत्र की जड़ें मजबूत हैं, वे तो झूठ की इस नई बाढ़ से किसी प्रकार निपट लेंगे, लेकिन यह उत्तर सत्य उन देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं की चूलें तक हिला सकता है जो किसी न किसी रूप में पहले से ही तानाशाही शासनों के अधीन रहे हैं।

उत्तर-सत्य की राजनीति सिर्फ झूठ के प्रयोग की राजनीति नहीं है। इसमें बहुत गहरे तक बौद्धिकता की, पढ़े-लिखे लोगों की खिल्ली उड़ाने का भाव भी निहित होता है। हम साक्षी है कि किस प्रकार लालू यादव ने जिस समय इंद्रकुमार गुजराल को बिहार से राज्यसभा में भेजा था, उसी समय उन्होंने 'लालू चालीसा' लिखने वाले एक जोकर को भी राज्य सभा में भेजा और तब हमें लगा था कि यह और कुछ नहीं, गुजराल का मजाक उड़ाना है। आज यह प्रवृत्ति जब विकसित देशों में भी दिखाई देने लगी है, तब वहां के लोगों के कान खड़े हुए हैं। यह झूठ को फेंकते जाना भर नहीं है, बल्कि उसके साथ ही सच को कठघरे में खड़ा करना भी है। पहले झूठ का प्रयोग एक गलत विश्व-दृष्टि तैयार करने के लिये किया जाता था, लेकिन मोदी और ट्रंप का वास्तव में देखा जाए तो ऐसा कोई उद्देश्य नहीं है। मोदी के पीछे अगर मान लिया जाए कि आरएसएस की विचारधारा का एक पहलू है, लेकिन ट्रंप के मामले में तो वह भी नहीं है। वे झूठ का इसलिये धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं क्योंकि वे यह जान गये है कि जिन लोगों को वे संबोधित कर रहे हैं, उनका सच के ऊपर से, समझदार और बुद्धिमान माने जाने वाले लोगों के ऊपर से विश्वास पहले ही उठ चुका है। ट्रंप और मोदी की तरह के लोग उनके इन्हीं पूर्वाग्रहों को, उनके तमाम अंध-विश्वासों को, उनके झूठे संशयों को और पुख्ता करने के लिये झूठ का प्रयोग करते हैं। मोदी ने तो उत्तर प्रदेश में खुद को गर्व के साथ गधा तक कह दिया था। चूंकि उनके झूठ को ही लोगों का समर्थन मिलता है इसीलिये ये न्यूनतम तथ्यों तक की परवाह नहीं करते। सुनने वाले को कुछ अपने मन जैसा लगे, बस यही इनका एक मात्र लक्ष्य होता है।

जनता में इनके विरोधियों के प्रति अविश्वास को वे 'हम' वनाम 'वे' की लड़ाई का रूप देने के लिये सफेद झूठ के जरिये उनसे अपने को अलग करते हैं। इनके तथ्यों को चुनौती देने की विरोधी की कोशिश एक प्रकार से उससे उसके सकारात्मक प्रचार के अवसर को ही छीन लेती है। वे इनकी उट-पटांग बातों में ही उलझ कर रह जाते हैं।

इस प्रकार की उत्तर-सत्य की राजनीति कई प्रकार के स्रोतों से पैदा होती है। इसमें व्यवस्था-विरोध की बौद्धिकता की भी एक भूमिका है। और उतनी ही भूमिका उन लोगों की भी हैं जो पारंपरिक संस्थाओं में जंग लगने का कारण बनते हैं। इनकी वजह से लोग सामान्य तौर पर अपने को ठगा गया महसूस करने लगते हैं, और देखते है कि कुलीनों का एक तबका जंग खा रही संस्थाओं के जरिये ही फल-फूल रहा है। विशेषज्ञ कहलाने वाले लोगों के प्रति कोई आस्था शेष नहीं रह जाती है, क्योंकि उन्हें लोग अक्सर झूठ बोलते और अपना उल्लू सीधा करते हुए देखते हैं।

बशीर बद्र का एक शेर है :

मैंने तेरी बातों को कभी झूठ कहा था
उस जुर्म पर हर झूठ को सच मान लिया है।

इसके अतिरिक्त, मीडिया का विस्फोट भी उत्तर-सत्य की इन परिस्थितियों में अपनी भूमिका अदा कर रहा है। सूचना केंद्रों के बिखराव से झूठ और अफवाहों के केंद्रों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'व्हाट्स अप' इंडस्ट्री तो झूठ की फैक्ट्री है। इसके ग्रुप के सदस्य आपस में ही एक-दूसरे पर विश्वास करते हैं, और किसी पर नहीं। इस प्रकार के केंद्रों से फैलाये जाने वाले झूठ की काट भी मुश्किल होती है। मीडिया में विषय के साथ न्याय करने के चक्कर में भी झूठ को मीडिया में उतनी ही जगह दे दी जाती है, जितनी सच को दी जाती है। मसलन्, नासा कहता है कि मंगल ग्रह पर जीवन मिल सकता है तो उसके कथन को मंगल ग्रह पर एलियन्स के होने के प्रमाण के तौर पर फैला दिया जाता है।

इन सब चक्कर में अक्सर जिसका नुकसान होता है वह है सच का नुकसान बहसें सच पर नहीं, झूठ पर केंद्रित हो जाती है। जीवन के असली विषय पीछे छूट जाते हैं। भारत के टीवी मीडिया पर जब मोदी के आईटी सेल का छोड़ा हुआ दूसरा कोई मुद्दा नहीं होता है तब किम जोंग उन या सीरिया, इराक की कहानियां छाई रहती हैं।

आज सचमुच इस सवाल पर सोचने का वक्त भी आ गया है जब तमाम प्रकार की झूठी बातों और आश्वासनों के आधार पर एक नेता सत्ता पर आता है, और जल्द ही उस नेता की कथनी और करनी के बीच जमीन आसमान का फर्क देख कर उसके समर्थकों का ही मोहभंग होने लगता है, तब समाज में कैसी हताशा और बदहवासी पैदा हो सकती है? आज के भारत को देखिये। मात्र साढ़े तीन साल के मोदी के शासन की तमाम झूठी बातों के चलते जिन लोगों ने कांग्रेस तथा दूसरी पार्टियों को बुरी तरह हराया था, वे सब अपने को जैसे किसी बंद गली के आखिरी छोर तक पहुंच गया महसूस करते हैं। जनता के बीच आज जैसी बेचैनी शायद ही पहले कभी देखने को मिली होगी। लोग बिना वजह ही किसी भी मामूली बात पर हिंसक हो जा रहे हैं। जनता का कोई हिस्सा ऐसा नहीं है जो आज सड़कों पर नहीं है। 2014 तक भारत में लगभग 15-20 प्रतिशत लोग अपने को अपेक्षाकृत सुखी और संपन्न महसूस करते थे, आज उनकी संख्या घटते-घटते सिर्फ 3 प्रतिशत पर पहुंच गई है। आम लोगों की मनोदशा का सर्वेक्षण करके उनका विश्लेपण करने वाली प्रतिष्ठित 80 साल पुरानी, 160 देशों पर काम करने वाली संस्था 'गैलप' की भारत के बारे में यह सबसे ताजा रिपोर्ट है। यह आम लोगों में बढ़ती हुई एक प्रकार की अलगाव की भावना को ही दर्शाती है।

इस उत्तर-सत्य की राजनीति की सबसे बुरी बात यह है कि इसमें समय के साथ अपने आप सुधार की कोई गुंजाईश नहीं होती है। जिस किसी ने यह सोचा होगा कि सत्ता पर आने के बाद मोदी जैसा झूठ बोलने वाले व्यक्ति में जिम्मेदारी का बोध पैदा हो जायेगा तो उसे सिवाय निराशा के न आज तक कुछ हाथ लगा है और न आगे लगने वाला है। आम जनता में बढ़ता हुआ अविश्वास और विच्छिन्नता बोध इस प्रकार की राजनीति के लिये और ज्यादा उर्वर जमीन तैयार करने लगता है।

यह है उत्तर सत्य का पूरा सत्य। यह सत्य के अस्तित्व मात्र पर एक खतरे की तरह है। आज का यह प्रमुख सवाल है कि आखिर इसका मुकाबला कैसे हो? कैसे इस राजनीति की सत्य पर टिकी हुई एक जवाबी भाषा तैयार की जाए?

हम जितना इस विषय में सोचते हैं, इसके अलावा हमें दूसरा कोई उत्तर नहीं मिलता है कि परिस्थितियां जितनी भी प्रतिकूल क्यों न हो, सत्य की लड़ाई लड़ने वालों को पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ अपने सत्य पर अडिग रहना होगा। झूठ से मुकाबले के नाम पर उसी के जाल में फंसने से बचना होगा। सत्य की ताकत पर भरोसा रखना होगा। आज मीडिया के विस्फोट के इस काल का एक सच यह भी है इसमें झूठी बातों पर से बहुत जल्द ही पर्दा भी उठ जाता है। फैलाये गये झूठ का तत्काल सही काट भी व्हाट्स अप, फेसबुक आदि पर आ जाता है। हर षड्यंत्र के बेनकाब होने की संभावना भी बनी रहती है। यह सोशल मीडिया का ही दबाव है कि जज लोया के मामले की तलवार आज भी अभियुक्त अमित शाह पर लटक रही है। कानून की दुनिया को अगर इस उत्तर सत्य ने प्रभावित किया है, तो उसमें विद्रोह के बीज भी सत्य की लड़ाई के जरिये देखने को मिल रहे हैं। आज उत्तर-सत्य के मोदी-शाह जैसे नायकों को भी इसी के औजारों का डर सता रहा है। कहना न होगा इससे राज्य के और ज्यादा दमनकारी होने का खतरा है, तो आम लोगों में विद्रोह की संभावना भी बन रही है। बहरहाल, गालिब का एक शेर है :

कोई वीरानी सी वीरानी है
दश्त को देख के घर याद आया।

उत्तर-सत्य में यह उलट कर कुछ इस प्रकार हो जाता है
कोई आबादी सी आबादी है
शहर को देख के दश्त याद आया

जरूरत बस इस जंगल को सच की आग से जलाने और एक नई रोशनी पैदा करने की है।

संपर्क :
मो :-09831097219
(कोलकाता, प.ब.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य और क्रांति का रिश्ता

राकेश भारतीय

साहित्य और क्रांति के रिश्ते-को लेकर, विशेषकर हिन्दी साहित्य में, ढेर सारी ग़लतफहमियां फैली हुई हैं। कोई कवि नारे जैसी चार पंक्तियां कविता के नाम पर झोंककर 'क्रांतिकारी कवि' कहलाने लग जाता है, कोई कहानीकार किसी स्थानीय उठापटक का उल्था कहानी के फ्रेम में परोसकर 'क्रांति का यथार्थ चित्रण' जैसे तमगे को लहराने के लिए अकुलाने लग जाता है, कोई आलोचक 'क्रांतिकारी साहित्यकारों' को 'प्रकाश' में लानेवालों का सिरमौर बनाने के चक्कर में भाई-भतीजों की सतही रचनाओं में 'क्रांति' खोजने का द्राविड़ प्राणायाम करने लग जाता है।

पर न क्रांति को सतही ढंग से परिभाषित-व्याख्यायित किया जा सकता है, न साहित्यिक रचना को सतही या स्थूल रूप से देखकर कोई राय बनाई जा सकती है, और न ही साहित्य और क्रांति के रिश्ते पर कोई बात चंद प्रायोजित जुमलों के दायरे में क़ैद की जा सकती है।

साहित्य और क्रांति के रिश्ते पर मुख्यत: दो प्रश्न सामने आते हैं। पहला प्रश्न क्या साहित्य किसी क्रांति की भूमिका बनाता है, पाठकों की सोच में किसी मूलभूत दख़ल के चलते उन्हें आगे समाज में होने वाली क्रांति के लिए मानसिक रूप से तैयार करता है?

दूसरा प्रश्न क्या किसी महत्वपूर्ण सांस्कृतिक-सामाजिक या राजनीतिक क्रांति का प्रामाणिक चित्रण साहित्य में सामने आता है? ऐसा चित्रण, जो आभ्यन्तरिक रूप से उस क्रांति के सकारात्मक-नकारात्मक पहलुओं पर आने वाले पाठकों के लिए दस्तावेज़ी महत्व का साबित हो।

यह आलेख इन्हीं दो मुख्य प्रश्नों के उत्तर खोजने के माध्यम से साहित्य और क्रांति के रिश्ते को समझने-समझाने का प्रयास है।

1789 में हुई फ्रांसीसी क्रांति ने न सिर्फ़ फ्रांस में बल्कि पूरे विश्व में ही व्यापक स्तर पर राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की नींव डाली। आज पूरे विश्व में, बावजूद अपने तमाम अन्तर्विरोधों के, जो लोकतांत्रिक ढांचा शासन के सर्वमान्य स्वरूप की तरह चल रहा है उसकी जड़ फ्रांसीसी क्रांति में ही है। पर फ्रांसीसी क्रांति मात्र एकदिवसीय विस्फोट की तरह नहीं आई, दशकों से इसकी ज़मीन तैयार हो रही थी। 1715 से 1789 तक के कालखण्ड को 'तर्क का युग' या 'बौद्धिक चेतना का युग' कहा जाता है, क्योंकि इस दौरान फ्रांसीसी विचारकों और साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से फ्रांसीसी जनता की सोच में मूलभूत परिवर्तन सम्भव किया। सामन्ती ढांचे तथा उसकी क़रीबी साझीदार धार्मिक नेतागिरी द्वारा प्रायोजित-पोषित सोच के विपरीत इन रचनाकारों ने तार्किक एवम् नैसर्गिक रूप से सोचने की आदत को प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से बढ़ावा दिया। इनमें सर्वप्रमुख थे कवि, नाटककार, निबंधकार, विचारक, व्यंग्यकार वाल्टेयर जिन्होंने जेल जाने तथा देश छोड़ने से लेकर तत्कालीन राजनीतिक-धार्मिक नेतृत्व के गुर्गों द्वारा पिटाई जैसी ज़िल्लतें सह कर भी पच्चीस वर्षों तक फ्रांसीसी जनता को अपनी रचनाओं के माध्यम से वैचारिक रूप से उद्वेलित किये रखा। उनकी मुहिम में रूसो और मान्टेस्यू जैसे रचनाकारों ने, बावजूद कुछ वैचारिक मतभेद के, योगदान किया। फ्रांसीसी क्रांति के लिए ज़मीन तैयार करने में आर्थिक एवम् सामाजिक असमानता से उपजा असन्तोष जितना बड़ा कारण था, उतना ही बड़ा कारण था इन साहित्यकारों-विचारकों द्वारा प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से उस असन्तोष से निजात दिलाने वाली सोच को पल्लवित करना।

बहुआयामी व्यक्तित्व तथा अवदान वाले लोगों के साथ अक्सर ऐसा होता है कि उनकी प्रतिभा या क्षमता के एक आयाम के बहुत नाम होने के चलते अन्य आयाम अलक्षित ही रह जाते हैं। महान क्रांतिकारी विनायक दामोदर सावरकर ने अंग्रेज़ों के आधिपत्य से भारत को मुक्त करने के अभियान में अपनी साहित्यिक क्षमता का बड़ा सार्थक उपयोग किया। उस अभियान की ज़रूरत थी कि नवयुवकों को आज़ादी के लिए लड़ाई की परम्परा से अवगत कराया जाये। अंग्रेज़ों या उनके पालतू हिन्दुस्तानी गुलामों द्वारा 'सिपाही विद्रोह' कहकर कमतर आंकने के विपरीत सावरकर ने ही '1857 का स्वाधीनता संग्राम' पुस्तक लिखकर उस महान संग्राम की, प्रभावशाली भाषा में तथा अकाट्य तथ्यों-तर्कों के साथ, प्रस्तुति की। यह पुस्तक साहित्यिक शैली का अप्रतिम उदाहरण तो है ही, क्रांति के लिए युवकों को मानसिक रूप से तैयार करने के लिए साहित्यिक के सार्थक उपयोग का भी उदाहरण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। चार उल-जलूल रचनाएं जैसे-तैसे छपवाकर 'साहित्यकार' कहलाने के लिए आतुर लोगों से भरे आज के माहौल में किसे विश्वास होगा कि 1857 की क्रांति के लिए तैयारी में फैजाबाद के मौलवी अहमद शाह की कलम भी उतनी ही कारगर थी, जितनी तलवार। भारत से लेकर ईरान तक अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों का लोहा मनवाने वाले सूफ़ी अम्बा प्रसाद बड़े अच्छे लेखक थे। अंग्रेज़ उनकी लेखनी से इतना डरते थे कि लिखी हुई पुस्तक ही जब्त कर ली। साहित्य को क्रांति का सहचर मानकर दोनों में समान रूप से सक्रिय रहे हिन्दुस्तानियों की एक से बढ़कर एक मिसाल है, रामप्रसाद 'बिस्मिल' से लेकर अशफ़ाकुल्ला खान 'हसरत' की क्रांतिधर्मी शायरी की पंक्तियां आज भी लोगों की ज़बान पर हैं।

साहित्यकार की क्रांति की भूमिका बनाने या उसके लिए ज़मीन तैयार करने के प्रश्न से ही जुड़ा उप प्रश्न है कि क्या साहित्य में आगे होनेवाली क्रांति की आहट अभिव्यक्त होती चलती है? इस उप प्रश्न के संदर्भ में एक उदाहरण देखें। दुनिया का हुलिया काफ़ी हद तक बदल देने में जितना बड़ा योगदान अठारहवीं सदी के अंतिम वर्षों में हुई फ्रांसीसी क्रांति का है, उतना ही बड़ा योगदान है आगे बीसवीं सदी की शुरुआत में हुई (1917 में मुकम्मल हुई) रूस की साम्ययवादी क्रांति का। क्या रूसी साहित्य में कहीं इस क्रांति की धमक देखने को मिली? महान रूसी साहित्यकार इवान तुर्गनेव का देहान्त 1883 में हुआ, रूसी क्रांति के मुकम्मल होने से पूरे चौंतीस साल पहले। पर 'एक शिकारी की एलबम से रेखाचित्र' नाम से संकलित रूस के ग्रामीण जीवन एवम किसानों-बंधुआ मज़दूरों (सर्फ) की दुर्दशा पर केंद्रित उनकी कहानियों में आनेवाली क्रांति की धमक बखूबी देखी जा सकती है। कहानी 'पहरुआ' का नायक फोमा नामक वनरक्षक है जो, सामन्त की वन-सम्पदा की रखवाली करते हुए, ग़रीब किसान को पकड़ता है जो पेड़ काटकर लकड़ी की चोरी करने में लगा है। फटेहाल किसान के आक्रोश भरे वाक्य "बस तू इन्तजार कर, एक दिन हम तेरी भी छुट्टी करके रहेंगे, ज्यादा देर तक यहां चौधराहट नहीं चला पायेगा, तेरी गर्दन पर भी फंदा कसेगा।" जैसे आगे होनेवाली रूसी साम्यवादी क्रांति का पूर्वाभास है। और तो और, खुद भी उस किसान की ही तरह फटेहाल पर 'कर्तव्य' के तहत उसे पकड़ने-बांधनेवाले फोमा के अंततः आश्चर्यजनक रूप से उसे छोड़ देने में शोषित वर्गों में आपसी सहानुभूति की वो लहर दिखती है जो 1917 में अंततः पूरी सामन्ती व्यवस्था के ध्वस्त हो जाने का कारण बनती है।

क्रांति महज राजनीतिक क्रांति तक सीमित शब्द नहीं है, दरअसल सामाजिक क्रांति कहीं ज्यादा अहम और दूरगामी परिणाम वाली सिद्ध होती है। सामाजिक क्रांति की धमक वास्तविकता से सौ साल पहले ही साहित्य में अभिव्यक्त कर पाना, इसीलिए किसी भी साहित्यकार के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है, 1879 का यूरोप विवाहित स्त्री का अस्तित्व मात्र पति की छाया के रूप में स्वीकार करता था, उसकी 'अलग तथा स्वतंत्र सोच' अकल्पनीय हुआ करती थी। 1879 में नार्वे के हेनरिक इब्सन का नाटक 'अ डॉल्स हाउस' प्रकाशित भी हुआ, मंचित भी हुआ। इस नाटक की नायिका नोरा न सिर्फ़ अपने अलग वजूद तथा सोच को तर्कसहित व्याख्यायित करती है बल्कि पत्नी को पति की छायामात्र में तबदील कर देने वाले विवाह के वचनों के सामाजिक-धार्मिक बंधन को भी कोई अहमियत नहीं देती। बीसवीं सदी का अंत आते-आते उसी नायिका नोरा के तर्क सामाजिक रूप से स्वीकार्य लगने लगते हैं, स्त्री की वैचारिक स्वतंत्रता और उसके अलग वजूद की स्वीकृति हक़ीकत बन जाती है। इस सामाजिक क्रांति को लगभग सौ साल पहले ही कल्पित कर इस बेबाकी तथा स्पष्टता के साथ साहित्य में चित्रित कर पाना इक्कीसवीं सदी में भी इब्सन को बेहद प्रासंगिक साहित्यकार बनाये रखता है।

तुर्गनेव तथा इब्सन जैसे उदाहरणों के मद्देनज़र जब हम भारतीय भाषाओं के साहित्य को देखते हैं तो कई रचनाकार सुखद रूप से आश्चर्यचकित करते हैं। तमिल के शीर्षस्थ कवि तथा महान देशभक्त सुब्रह्मण्यम भारती की एक कविता है "स्त्रियों की आज़ादी की कुम्मी" (कुम्मी दक्षिण भारत में महिलाओं द्वारा घेरा बनाकर नाचा जाने वाला विशिष्ट नृत्य है जिसमें गीत भी गाते हैं)। इस अविस्मरणीय कविता में एक जगह भारती जैसे सुदूर नार्वे की नोरा की सोच को ही बीसवीं सदी की शुरुआत की भारतीय स्त्री के संदर्भ में व्याख्यायित करते हैं। "और वे बात करते हैं वैवाहिक विश्वास की; अच्छा है, इसे दोनों ही पक्षों की समान बाध्यता होने दो-"

प्रेमचन्द का तो पूरा साहित्य ही, समकालीन यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण करते हुए, आने वाले सामाजिक बदलाव की पूर्वाभासी रचनाओं से भरा पड़ा है। 'गोदान' में उच्च जाति के दुराचारी व्यक्ति को पकड़कर दबाये-कुचले गये तबके के व्यक्ति द्वारा मुंह में हड्डी डाल देते हुए 'नकली उच्चता' के चीथड़े उड़ा देने वाला प्रकरण उस संचित आक्रोश का पूर्वाभास है जो आधी सदी बीतते-बीतते बड़े स्तर पर सामाजिक बदलाव सम्भव कर दिखाता है। जन्म पर आधारित जातिप्रथा को राष्ट्रवादी सोच के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा मानने वाले सुब्रह्मण्यम भारती ने अपने अंग्रेज़ी आलेख 'द क्राइम ऑफ कास्ट' (जाति का अपराध) में जाति को दरकिनार कर सहभोजन तथा परस्पर वैवाहिक-सम्बन्ध

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को सामाजिक समरसता के लिए बड़े तथा एकमात्र उपाय के रूप में अनुशंसित किया था, जो आज के भारतवर्ष में सामाजिक वास्तविकता बन चुके हैं। क्रांति के लिए वैचारिक ज़मीन तैयार करने तथा परोक्ष रूप से ही पर किसी बड़े बदलाव के लिए पाठकों को मानसिक रूप से तैयार करने में सुब्रह्मण्यम भारती प्रेमचन्द जैसे साहित्यकार जो भूमिका निभाते चलते हैं वह स्थूल स्तर पर भले न नापी-तौली जा सके पर देश के मानस के सूक्ष्म स्तर पर पहुंचा उसका प्रभाव बहुत गहरा होता है।

अब हम आते हैं दूसरे प्रश्न पर; सामाजिक-राजनीतिक क्रांति के तमाम पहलुओं के साहित्य में सटीक चित्रण पर, दस्तावेज़ी महत्व के आभ्यन्तरिक चित्रण पर। एक बार फिर बात फ्रांसीसी क्रांति से शुरू करते हैं। क्रांति के ही नहीं, मूल मानवीय प्रवृत्तियों के सकारात्मक-नकारात्मक पहलुओं पर भी 1789 की फ्रांसीसी क्रांति एक बेहद महत्वपूर्ण केस-स्टडी के रूप में ली जा सकती है। राजतंत्र एवम् सामन्ती संरचना के खिलाफ शुरू हुई क्रांति धीरे-धीरे अपने ही बच्चों को खाने लगती है, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं पर चालित हिंसा से क्रांति के सहचरों का सफाया करने वाली 'भीड़' में बदल जाती है ... और इस क्रांति के इन्हीं तमाम सकारात्मक-नकारात्मक पहलुओं पर केंद्रित है चार्ल्स डिकेंस का उपन्यास 'अ टेल ऑफ़ टू सिटीज़'। 1789 के ठीक सत्तर साल बाद यानी 1859 में पहले साप्ताहिक किस्तों में डिकेन्स द्वारा अपनी ही पत्रिका में प्रकाशित हुआ यह उपन्यास फ्रांसीसी क्रांति के आभ्यंतरिक यथार्थ को सूक्ष्म तकनीक से तथा प्रभावी चरित्र-चित्रण के माध्यम से उकेरता चलता है। गौरतलब है कि डिकेन्स का जन्म 1812 में हुआ था, उनके जन्म के समय फ्रांसीसी क्रांति के उत्तरार्ध में हुई बेलगाम हिंसा की याददाश्त जनमानस में ताज़ा ही थी।

रूस की 1917 में मुकम्मल हुई साम्यवादी क्रांति ने पूरे विश्व में समाज के वंचित तबकों को देखने-समझने का नज़रिया बदल कर रख दिया। पर इस क्रांति का एकतरफा गुणगान करना (जो काफी समय तक भारत के तथाकथित वामपंथियों का स्थायी राग बना रहा) तथ्यों से आंख मूंद लेना होगा। 'साम्यवादी' होने के मुखौटे के पीछे भयावह व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं समान रूप से निष्ठावान पर महत्व के चलते रोड़ा बन रहे क्रांति के सहचरों के सिलसिलेवार सफाये का कारण बनीं। इतिहास में तो इन प्रवृत्तियों पर एकतरफा सामग्री है, हद से हद स्थूल ब्यौरे दर्ज हैं। मानवीय दृष्टिकोण से प्रामाणिक और प्रभावी चित्रण तो इस पृष्ठभूमि पर लिखी गई महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाओं में हुआ है। जॉर्ज ऑरवेल की दो कृतियां 'एनिमल फ़ार्म' एवम् '1984' साम्यवादी क्रांति के अन्तर्विरोधों पर विश्व-साहित्य में मील का पत्थर मानी जाती हैं। 'एनिमल फ़ार्म' में मुख्य चरित्र सुअर नेपोलियन मोटे तौर पर स्टालिन पर आधारित है और समानता प्रचारित कर रही क्रांति की आड़ में अपने स्वार्थ को साकार करने वाले निरंकुश तंत्र का बेहद प्रभावी चित्रण नेपोलियन के माध्यम से होता है। इस उपन्यास का 'ऑल एनिमल्स आर इक्वल बट सम एनिमल्स आर मोर इक्वल दैन अदर्स' तो साम्यवादी क्रांति के अंतर्विरोधों पर आज तक सूत्र वाक्य बना हुआ है। '1984' मे, 'एनिमल फ़ॉर्म' की तुलना में, स्थूल चित्रण ज्यादा है पर क्रांति की आड़ में राजतंत्र जैसा ही निरंकुश तंत्र खड़ाकर सबको अपने स्वार्थ सिद्ध करने की दिशा में हांके जाने का चित्रण उतना ही प्रभावी है। '1984' का वाक्य 'बिग ब्रदर इज़ वॉचिंग यू' निरंकुश तंत्र के संदर्भ में आज भी इतना ही प्रासंगिक है।

रूस की क्रांति पर, विशेषकर इसके कुछ पहलुओं के मानवताविरोधी सिद्ध होने पर, कुछ रूसी साहित्यकारों ने भी कलम चलाने का साहस किया। बोरिस पास्तरनाक का विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'डॉक्टर ज़िवागो' तो क्रांति के दौरान जाने-अनजाने निशाने पर आ गये सामान्य व्यक्तियों की मानवीय त्रासदी पर केंद्रित अद्भुत कृति है। पास्तरनाक को इस लेखकीय साहस की कीमत चुकानी पड़ी पर क्रांति के अन्तर्विरोधों के चलते हुए तमाम मानवीय कष्टों का लेखा-जोखा हमेशा के लिए दस्तावेज़ी स्पष्टता के साथ दर्ज हो गया 'डॉक्टर ज़िवागो' में। साम्यवादी क्रांति के नेतृत्व में वर्चस्व के लिए चले गलाकाट संघर्ष के दस्तावेज़ी चित्रण पर आर्थर कोस्लर का उपन्यास 'डॉर्कनेस एट नून' बेजोड़ है, जो तथ्य इतिहास में स्थूल रूप से दर्ज होते हैं उनसे जुड़ी मानवीय त्रासदी को इस उपन्यास में बेहद प्रभावी रूप से चित्रित किया गया है। क्रांति में अपने को चुनौती देते लग रहे व्यक्तियों को गिरफ़्तार कर जेल में मानसिक-शारीरिक रूप से 'तोड़' देने के तरीकों का तो बहुत ही संवेदनशील चित्रण है इस उपन्यास में। और साथ ही, उन तमाम त्रासदायक तरीकों को झेलकर अपनी जिजीविषा सलामत रखने के उदाहरण भी उतनी ही संवेदनशीलता से चित्रित हैं। क्रांति की घटनापूर्ण स्थूल उठापटक का मानवीय पहलू, मानवीय जिजीविषा के अद्भुत नमूनों के साथ, 'डॉर्कनेस एट नून' जैसी कृतियां ही उकेर सकती हैं जो आनेवाली पीढ़ियों के उस क्रांति को समग्र रूप से समझ पाने में इतिहास की किताबों से कहीं ज्यादा मददगार साबित होती हैं।

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन का एक महत्व पूर्ण एवम् प्रभावी पक्ष था क्रान्तिकारी सशस्त्र संघर्ष जिसने अंग्रेजों को कभी चैन से बैठने न दिया। बंगाल-बिहार के इलाके से लेकर महाराष्ट्र तक, वर्तमान उत्तर प्रदेश के इलाके से लेकर दक्षिण के कुछ भाग तक, तमाम दमन के बावजूद, क्रांतिकारियों ने अपने तरीके से आज़ादी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की लड़ाई लड़ी। बेहद ग़रीब परिवार के चन्द्रशेखर आज़ाद से लेकर सम्पन्न पृष्ठभूमि के भगत सिंह तक, हिन्दू धर्म के अनुयायी रामप्रसाद बिस्मिल से लेकर निष्ठावान मुसलमान अशफ़ाकउल्ला खान तक, सशस्त्र क्रांति में अपने प्राणों की आहुति देकर अमर हो गये। इस क्रांतिकारी आंदोलन का हिन्दी में साहित्यिक चित्रण दुर्लभ है पर बांग्ला में महान कथाशिल्पी शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने उपन्यास 'पथेर दाबी' (हिन्दी अनुवाद में 'पथ के दावेदार' नाम से उपलब्ध) में इस क्रांति को बहुत बारीक़ी से चित्रित किया है। मुख्य पात्र सव्यसाची कैसे भेष बदल-बदलकर, किन-किन कष्टदायक परिस्थितियों से गुजरकर आज़ादी के लिए सशस्त्र संघर्ष जारी रखता है, तमाम जाने-अनजाने क्रांतिकारियों के संघर्ष के उपलब्ध ऐतिहासिक विवरणों के काफ़ी करीब है। वैसे भी यह उपन्यास शरतचंद्र के पूरे कृतित्व में अलग से ही रेखांकित करने योग्य है। 1857 की क्रांति पर केंद्रित शम्सुर्रहमान फ़ारुकी का उर्दू उपन्यास 'कई चांद थे सरेआसमां' उस काल के रहन-सहन तथा सांस्कृतिक माहौल के प्रामाणिक विवरणों के मामले में तो बेजोड़ है पर वह मूलतः रूमानी उपन्यास है। 1857 के पूरी सशस्त्र क्रांति के समग्र पहलुओं का चित्रण खोजने चलें तो वह इस उपन्यास में मात्र फुटनोट जैसा चित्रित दिखता है। वैसे परोक्ष रूप में, यह उपन्यास सामन्ती समाज के अन्तर्विरोधों का प्रामाणिक चित्रण पेश करते-करते उन कारणों की ओर इंगित कर देता है जो 1857 की क्रांति के असफल रहने के पीछे थे।

क्रांति और साहित्य का रिश्ता एक तरह से अन्योन्याश्रित है, कहीं क्रांति का साहित्य में प्रामाणिक चित्रण अगली पीढ़ी के पाठकों के लिए वैसी ही चुनौतियों के मद्देनज़र क्रांति के लिए प्रेरणा का काम देता है तो कहीं बड़े स्तर की राजनीतिक-सामाजिक क्रांति अपने तमाम सकारात्मक-नकारात्मक पहलुओं के चलते साहित्यकारों के सामने अपने पर लिखवाने के लिए बड़ी चुनौती पेश करती है। क्रांति की पृष्ठभूमि पर बड़ी रचना व्यापक तथा गहन रिसर्च तो मांगती ही है, मानवीय त्रासदी की निष्पक्ष प्रस्तुति और रचनात्मक निस्संगता भी मांगती है। यह तो वक़्त ही बतायेगा कि क्रांति की पृष्ठभूमि पर प्रामाणिक और प्रभावी कोई बड़ी कृति हमें आगे देखने को मिलेगी कि नहीं।

संपर्क :
मो : 09968334756
(दिल्ली)

लघु कहानी

प्रतियोगिता

मार्टिन जॉन

एक प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था द्वारा आयोजित अखिल भारतीय स्तर की युवा कविता प्रतियोगिता में आई सैकड़ों प्रविष्टियों को पढ़ी, परखी जा रही थी। एक मुख्य निर्णायक और तीन सहायक निर्णायक में से एक ने एक लम्बी कविता उठाई, शीर्षक था - 'अपलोड होते सपनों में तुम्हारी तस्वीरों को डिलीट करते हुए'। एक सांस में उन्होंने पूरी कविता पढ़ डाली। कविता सर के ऊपर से गुज़र गई। दुबारा पढ़ी। तिबारा पढ़ी। दिमाग की नसें तड़कने लगीं। लेकिन पल्ले नहीं पड़ी। झुंझलाकर उन्होंने उस कविता को दूसरे निर्णायक की ओर खिसका दिया बगैर कोई टिप्पणी किये। वही हाल दूसरे निर्णायक का भी था। दो-तीन मरतबा बड़े मनोयोग से पढ़ने के बाद भी उनकी कविता की 'समझ' ने जब ज़वाब दे दिया तो उन्होंने तीसरे निर्णायक की ओर उस कविता को बढ़ा दिया। तीसरा निर्णायक कविता के शीर्षक को लेकर ही बहुत देर तक उलझा रहा। जबर्दस्त दिमागी कसरत और माथा-पच्ची करने के बाद भी जब शीर्षक का मतलब खुला नहीं तो उन्होंने कविता को बगैर पढ़े मुख्य निर्णायक को सौंप दिया।

मुख्य निर्णायक धीर-गंभीर होकर अत्यंत तन्मयतापूर्वक कविता को पढ़ते हुए उसे जांचना-परखना शुरू किया। एक लम्बे समय के बाद उन्होंने आँखों से चश्मा उतार कर टेबुल पर रख दिया। कुर्सी पर गर्दन को पीछे टिकाकर अपनी आँखें मूंद लीं। चांद सरीखे अपने सर को सहलाते हुए कुछ बुदबुदाते रहें। सहायक निर्णायकों की उत्सुक और व्याकुल आँखें उन पर टिकी हुई थीं। प्रतिक्रिया जानने के लिए। बहुत देर बाद उसी अवस्था में रहने के बाद उन्होंने अपनी आँखों को चश्मे के हवाले किया और उस प्रविष्टि पर अपनी टिप्पणी दर्ज की।

महीने भर बाद लखटकिया पुरस्कार की घोषणा हुई। प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत कविता का शीर्षक था, 'अपलोड होते सपनों में तुम्हारी तस्वीरों को डिलीट करते हुए।

संपर्क :
अपर बेनियासोल, पो. आद्रा,
जिला- पुरुलिया, पश्चिम बंगाल-723121,
मो :- 09800940477

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलोचना

लीलाधर मंडलोई की लद्धड़ कविताएँ

सुशील कुमार

इनकी गद्यात्मकता ने कविता को आम पाठकों से न केवल दूर किया है, वल्कि उतनी ही उवाऊ और वोझिल भी वना दिया है। कहना पड़ता है कि अगर यही होता रहा तो एक दिन लोग कविता पढ़ना ही बन्द कर देंगे।

लद्धड़ गद्य से कविता बनाने वाले कवियों में कवि लीलाधर मंडलोई जी को भी उतना ही महारथ हासिल है, जितना विष्णु खरे, अरुण कमल और अशोक वाजपेयी को। लेकिन आप महसूस करेंगे कि इनके पोसे हुए आलोचक जब इन पर कसीदे पढ़ते हैं तो इनको अनुभव के नए संसार से जोड़कर स्थापित करने का उपक्रम करते नजर आते हैं।

असली बात यह है कि आलोचकों की कवितानुभूति में वैयक्तिक भिन्नता तो हो सकती है, पर वह बिल्कुल उल्टी और अन्यथा नहीं हो सकती। अगर बर्फ की छुवन सबके लिए ठंडी है तो उसे गरम कौन कहेगा? उसकी ठंड की अनुभूतियों में भले ही अलग-अलग किस्म के अनुभवों की तासीर हो! अजय तिवारी, विश्वनाथ त्रिपाठी, ओम निश्चल जैसे शहराती और सुविधाभोगी आलोचकों ने केदारनाथ सिंह, मदन कश्यप, विष्णु नागर, विष्णु खरे, अशोक वाजपेयी जैसे कलावादी कवियों के साथ लीलाधर मंडलोई को भी बड़े कवियों की पंक्तियों में खड़ाकर हिन्दी कविता के स्वभाव को अब तक रुक्ष और क्लिष्ट बनाने का ही काम किया है। लेकिन अब तक की सच्चाई यही रही है कि इनके अकवितापन और इनकी गद्यात्मकता ने कविता को आम पाठकों से न केवल दूर किया है, बल्कि उतनी ही उबाऊ और बोझिल भी बना दिया है। कहना पड़ता है कि अगर यही होता रहा तो एक दिन लोग कविता पढ़ना ही बन्द कर देंगे। इन कवियों के पाले-पोसे हुए आलोचकों और प्रशंसकों की लम्बी फेहरिश्त है जो इनको जबरन मुख्यधारा का कवि बनाए रखती है और सच्चे जनवादी कवियों को हाशिए पर ठेलने का काम करती है।

मसलन, अगर आप लीलाधर मंडलोई की किसी भी कविता पर नजर करेंगे तो आप पाएंगे कि इन कविताओं में कवित्व एक सिरे से गायब है। इनका काव्य-संसार अनुभव के नए संसार के बजाए शब्दों का एक वाचाल संसार रचता है। इसलिए इनकी कुछ कविताओं को छोड़कर अधिकांश कविताएं लद्धड़ बनकर रह गई है -

''मैं पढ़ा-लिखा होने के गर्व से प्रदूषित हूँ
मैं महानगर के जीवन का आदी,
एक ऐसी वस्तु में तब्दील हो गया हूँ कि भूल-बैठा
अच्छाई के सबक
मेरा ईमान नहीं चिह्न पाता उन गुणों को और व्यवहार को,
जो आदिवासियों की जीवन-पद्धति में शुमार मौलिक और प्राकृतिक अमरता है
और एक उम्दा जीवन के लिए, बेहतर सेहत के वास्ते विकल्पहीन
मैं कविता में बाज़ार लिखकर विरोध करता हूँ
मैं करता हूँ अमरीका का विरोध और मान बैठता हूँ
कि लाल झंडा अब भी शक्ति का अक्षय स्रोत है
वह था और होगा भी किंतु जहां उसे चाहिए होना, क्या वह है...'' **-लीलाधर मंडलोई**

ओवामा के रंग में यह कौन रंग है?

निरा गद्य में जिनको कविता का आस्वाद आता है वह उनकी जय करें, बाकी मेरी जो समझ है उस हिसाब से इस गद्यनुमा कविता में न लय है, न प्रगीतात्मकता, न कोई रूपाभा, न प्रभावान्विति, न ध्वन्यात्मकता, न जनपदीय चेतना। जो संवेदना, सपाटवयानी और जनपक्षधरता है वह कवि का उपार्जित यथार्थ यानी नवरीतिकालीन बुर्जुआ चिंतन से पगी हुई है जो उन्हीं सरीखे समीक्षकों को भाता है जो किसी भी निरर्थक रचना पर अपना शब्द-जाल बुनकर तालियों और प्रशंसाओं की मायालोक बटोरने में माहिर हैं।

जिनको कविता लिखने का शऊर नहीं, उन्हें केवल गद्य लेखन करना चाहिए। आप लीलाधर मंडलोई की कोई भी कविता को उठाकर देख लीजिए। इनकी सारी की सारी कविताएँ कच्ची, अधूरी, वाचाल और विचारों के उधेड़बुन में फँसी हुई गद्यात्मक कविताएँ ही लगेगी, जिन्हें पूरी तरह कविता कहना भी कठिन है।

कविता केवल कवि की 'ज्ञानात्मक संवेदना' और 'संवेदनात्मक ज्ञान' के अन्तर्ग्रथित होने से नहीं बन जाती, उसमें सृजन के 'तीसरे क्षण' का उससे भी अधिक महत्व है। कवि ने उस क्षण को कविता में कैसे जिया और उसका कितना निर्वाह किया। मुक्तिबोध यहाँ सही कहते हैं कि इसी क्षण में अभिव्यक्ति शब्द का रूप ग्रहण करती है। कवि को भाव और भाषा के द्वंद्व को झेलना होता है। इसलिए कविता का तीसरा क्षण सफलतापूर्वक जीना जरूरी है। ज्ञान और संवेदना का द्वंद्व काव्येतर सृजन के लिए भी उतना ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जरूरी है। क्या एक सुघड़ डायरी, संस्मरण, कहानी या उपन्यास भी लेखक बिना अपने ज्ञान और संवेदना के द्वंद्व को अंतर्भूत किए रच सकता है? फिर केवल कविता के लिए इन बातों को लाकर पाठकों को क्यों भ्रमित किया जाता रहा है? आखिर रचना का वह कौन-सा ऐसा गुण है, जो कविता को अन्य साहित्यिक विधाओं से अलगाता है, उसे वर्गीकृत कर उसका अलग रूप निर्धारण करता है? यह वस्तुतः उसका 'कवितापन' ही है, जो उसकी अंतर्वस्तु से सन्नद्ध आंतरिक लय, प्रगीत-भाव और सृजन के 'तीसरे क्षण' में कवि के उपार्जित अनुभव के वस्तुगत प्रत्यक्षीकरण के बिना प्रकट नहीं हो पाता।

सच तो यह है कि कवि का अपना जीवन जैसा होगा, वही उसकी कविता के अंतिम क्षण में दृष्टिगत होगा। यह कविताई-पैमाइश (नाप-जोख) नहीं है। शब्द और भाषा भी उसी की तर्ज पर उस क्षण का अनुसरण करेंगे। लेकिन जब कवि का यह क्षण चुकने लगता है तो कवि गद्य-कविता की ओर मुड़ जाता है। उसके भीतर का तनाव और द्वंद्व जब भाषा में आकार नहीं ले पाते तो वह 'फ्लैटनेस' और 'लयहीनता' का शिकार हो जाता है। यह कविता की क्षीण अंतर्वस्तु के कारण घटित होता है।

लीलाधर मंडलोई की कविताओं के साथ यही हुआ है। इनके यहाँ कविता अपने प्रारंभ से प्रारब्ध तक निष्कंटक मार्ग तय नहीं कर पाती। कवि अपने लक्ष्य से बीच में ही भटक जाता है। तब वह कला की ओर खास तौर से झुकने लगता है। यही लीलाधर मंडलोई के कवि की कमजोरी है।

प्रयोगवाद और नई कविता का आंदोलन तो लगभग 1960 तक समाप्तप्राय हो गया। किन्तु इस प्रवृत्ति पर आस्था रखने वाले कुछ कवियों ने जीवनानुभव के अभाव में गद्य कविता की ओर जो रुख किया, उससे हिंदी कविता को भारी क्षति हुई। कविता अपने मूल स्वभाव से अलग होने लगी। इस संदर्भ को समझने के लिए आप मंडलोई जी की एक गद्य-कविता का कुछ अंश देख सकते हैं - कविता का नाम है- 'हत्यारे उतर चुके हैं क्षीरसागर में '- (एक)।

कविता का नाम जितना मोहक है, इसके अर्थ व मुहावरे उतने ही मिथकीय और पुराने।

''मैं रोज़ सोता था सुकून की नींद। और अब जागता हूँ जैसे नींद में। भयावह सपनों में डूबी हैं रातें। मैं हत्यारों को देखता हूँ सपनों में। उनके चेहरे अमूर्त हैं। बस उनका होना परिचितों-सा लगता है। वे बनक-ठनक में सभ्य संभ्रांत दीखते हैं। उनके पास भव्य मोटरें हैं। वे अमूमन बड़ी-बड़ी कोठियों से निकलकर आते हैं। उनके पीछे चलने वालों की जमात है। जो नई-नई शक्ल में हर जगह उपस्थित हैं। वे हथियारों से लैस हैं। उनकी आत्मा का पानी सूख गया है। इस कारण वे पैसों के एवज़ हर उस चीज़ को खरीदने पर आमादा हैं जिसमें पानी है। और सरकारें अपनी तरह से इस व्यापार में हत्यारों की सरकारी गवाह बन चुकी हैं। मेरे इस सपने में जो बिना किसी स्टिंग ऑपरेशन के मूर्त है, मुझे आकंठ घेर लेता है डर में। मैं चीखना चाहता हूँ और आवाज़ जैसे गले में अटकी। सपना मुझे लिए भागता है चौतरफा। और मैं देखता हूँ वो सब जो कभी देखा नहीं। और इस तरह तो बिल्कुल नहीं। कि मेरी आत्मा लहूलुहान-

क्या है इस कवितांश में, आत्मबद्धता, आत्मालाप के सिवाय? इतनी हल्की पहल की कविता तो कविता लिखना सीख रहा कोई 'स्टूडेंट' भी लिख लेगा और यह भी देखिए कि कवि का हत्यारा क्षीरसागर में उतर रहा है। इन बिम्बों के मुहावरे पिट गए लगते हैं। लेकिन समीक्षक-आलोचक ओम निश्चल इस कविता के बारे में फरमाते हैं कि ''यों तो मंडलोई हिंदुस्तानी जबान के कवि हैं, इसलिए अनायास ही उनकी कविताओं से सादा बयानी टपकती है किन्तु यह कविता अपनी गद्य-संरचना के कारण अलग से लक्षित किए जाने योग्य है... एक सयानी अंतर्दृष्टि से उन्होंने कवि के उत्तरदायित्व को जैसे कविता का कार्यभार समझ कर निबाहा है। 'हत्यारे उतर चुके हैं क्षीरसागर में' लीलाधर मंडलोई की कविताओं का श्रेष्ठ चयन है जिनमें न केवल उनके समूचे कवि-व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य उजागर होता है बल्कि आज के समय को भी इन शब्दों में चीन्हा और रेखांकित किया जा सकता है।''

इस कविता की आगे की पंक्तियां -''पानी के घर में तुम्हारी मृत्यु का सजीव प्रसारण देखेगी दुनिया और भूल जाएगी एक दिन कि विष्णु नाम का कोई देवता था पानी में।'' (समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त, 2011)

ओम निश्चल जी ने इस कविता के बावत 'समालोचन'(ई-पत्रिका सं: अरुणदेव) में जो समीक्षा की है, वह उतनी उथली और सपाट है जितनी कि यह कविता। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की कुटिल दृष्टि, भूमंडलीकरण, दिनोंदिन खिसकते जलस्तर और पारिस्थितिकी के असंतुलन पर लिखी यह अति सामान्य कोटि की कविता है जो जितनी सपाट है उतनी ही बयानबाजी। इन विषयों पर तो एक से बढ़कर एक कविताएँ लिखी गई हैं। पर कोई मुझे बताए, इस कविता में कवित्व कहाँ है? कौन से मुहावरे, बिम्ब, प्रतीक, उपमान-उपमेय या कहन पाठकों को अपील करते हैं? इसकी अर्थस्फीतियाँ कितनी महत्वपूर्ण हैं? मिथकों में जल के देवता तो वरुण हैं, विष्णु नहीं! पर इस कविता को ओम निश्चल जी के द्वारा मंडलोई की कविताओं का श्रेष्ठ चयन बताया गया है जो बड़े ताज्जुब की बात है!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओम जी के सम्पादन में लीलाधर मंडलोई की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'साहित्य भंडार' प्रकाशन से 2014 में आई है। पौने दो सौ पृष्ठों के इस चयन में निश्चल जी ने ही किताब की प्रस्तावना भी लिखी है। संकलन की पूरी कविताओं को 'आग', 'राग' और 'पराग' -इन तीन खण्डों में विभाजित किया गया है। वे कहते हैं कि 'ऐसा इसलिए है कि उनकी कविताओं में जीवन के संघर्ष की आँच और आग है तो कविता की कोमल रागात्मकता का प्रमाण भी। साथ ही उनकी कविताओं में जीवनानुभवों का पराग है।' अब इस वक्तव्य का परीक्षण मंडलोई जी की एक कविता से कीजिए। कविता का शीर्षक है - 'जलस्वप्न' । देखें पूरी कविता -

''नारियल के उस बड़े दरख्त में अटका है चांद
और मैं जा सकता हूं पेड़ की छाया से होता हुआ
जल जहां सबसे ज्यादा प्रसन्न है

जहां सबसे ज्यादा प्रसन्न है वह
गहरी नींद में वहां सोये हैं मेरे बच्चे
अंधेरा हालांकि बढ़ रहा है चतुर्दिक
बच्चों की नींद में है जलस्वप्न
मैं लौट सकता हूं आश्वस्त
बच्चों के स्वप्न में कहीं नहीं है ऑक्टोपस
बच्चों की नींद में बच्चों का स्वप्न है अब तक / जलस्वप्न /''

लीलाधर मंडलोई/ पृ. सं. 21

यह कविता 'आग' खंड की तीसरी कविता है। इस कविता में जीवन संघर्ष की न तो कोई आग है न आँच। नारियल का पेड़ कभी दरख़्त की तरह झमाठ नहीं होता। पर कवि को वह झमाठ दिखता है। कवि के बच्चे उसी पेड़ पर गहरी नींद में सोए हुए जलस्वप्न देख रहे हैं। एक प्यासे आदमी या बच्चे की यह जल-आकांक्षा केवल उसके सपनों तक सीमित है, उसको पाने की कोई जद्दोजहद वहाँ नहीं। अब ओम निश्चल के इस संपादित पुस्तक के दूसरे खंड 'राग' में लीलाधर मंडलोई की एक कविता 'मेरा तकिया छीन लिया गया' पर नजर करते हैं-

''न मिले किसी रोज इस्तरी की गई धुली कमीज
देह जैसे रूठने लगती है ना-नुकुर करती
दिन जैसे बीतता है असहज या लगभग मनहूस
मानो हर आंख घूरती लगती जबरन ओढ़ी यह पुरानी कमीज

हालांकि तीन दिन पुरानी बगैर धुली कमीज पर इस्तरी फेर
हम कुछ तो मनहूसियत कम कर ही लेते हैं अक्सर
फक्कड़ी यदि मौलिकता की हद को छू सके
भूल भी सकते हैं किसी पोशाक का अहसास तक

नहाते वक्त तो बिना कपड़ों के लगती है हमें अपनी ही पुरानी देह अलौकिक
कि कितना कम होता है इस तरह अपनी देह को निहारना

आसान कहां रह गया लेकिन झटक देना फालतू चीजों का अहसास
दिन उगा हो उसे लौटना है शाम की तरफ और
शाम को रात में तब्दील होने से रोकना हमारी पहुंच से बाहर
रात आएगी तो यह तय है घेरेगी नींद कि
वह एक थके मानुष की अकेली पूंजी है

नींद होती है कहीं आंखों में, आंख चेहरे पर और
चेहरा सिर का हिस्सा है हम बखूबी जानते हैं

नींद किसी भी तरफ से आ सकती है
सृष्टि या उससे बाहर अदृश्य लोक से कि
जैसा सपने में कई दफा अनुभव होता है हमें।''

जीवन की कौन सी कोमल रागात्मकता इस कविता में प्रकट हुई है? निहायत औसत दर्जे की इस कविता का समाज के लिए क्या प्रदेय है? केवल बातूनी शब्दों का आडम्बर रचा गया लगता है। इस्तरी की गई धुली कमीज का न मिलना, नहाते वक्त नंगी देह का अलौकिक लगना, नींद थके हुए मनुष्य की पूँजी होना, नींद का किसी अदृश्य लोक से आना इत्यादि स्वतः कवि की रूपवादी नवाधुनिक दृष्टि की ओर संकेत करता है । हमें तो इस तरह की कविताओं को पढ़ते हुए ऊब और खीझ ही उत्पन्न होती है! जब ओम निश्चल यह कहते हैं कि ''उनकी कविता में मानवीय रागात्मकता का भी पर्याप्त वजूद है। वे कठोर और जद्दोजहद भरे जीवन में कोमलता को बचाने वाले कवियों में हैं। आखिर जीवन-संघर्ष में पगा मंडलोई जैसा कवि ही कह सकता है: मेरी परछाई धूप में जल रही है। ...कथ्य , भाषा और जीवनानुभवों का जैसा तालमेल लीलाधर मंडलोई की कविताओं में दिखता है, वह उनके समकालीनों में ध्यातव्य बनाता है। उन्होंने अपनी कविता को बोलचाल की भाषा में रचते हुए एक तरह से पाठकों को भी संस्कारित करने का काम किया है।'' (पृ. सं. 11- 12)/प्रतिनिधि कविताएँ, तो केवल झूठ ही बोलते हैं, शब्दों का मुलम्मा चढ़ाकर एक सामान्य कवि को विशेष बनाने पर तुले दिखते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस किताब की प्रस्तावना में निश्चल जी ने कवि का इतना मिथ्या और सतही आकलन किया है कि बिना मंडलोई जी की कविता पढ़े आम पाठक तो एकदम गुमराह हो ही जाएगा ! पूरे लेख में वे उनको कहीं जमीन का कवि तो कहीं यथार्थवादी कवि कहते हैं।

लीलाधर मंडलोई के ही समकालीन कवि सुधीर सक्सेना, नरेंद्र पुण्डरीक, स्वप्निल श्रीवास्तव, भारत यायावर, योगेंद्र कृष्णा, बुद्धिलाल पाल, तेजिंदर, दिविक रमेश आदि हैं। इनका भूलकर भी नाम नहीं लिया जाता। सुधीर सक्सेना जी ने समकालीन प्रेम कविताओं में प्रकृति और प्रगतिशीलता का जो नवाचार किया है, नरेंद्र पुण्डरीक जी ने आधुनिक कविता में इतिहासबोध और इतिवृत्तात्मकता की जो काव्य संवेदना पैदा की है, स्वप्निल श्रीवास्तव, भारत यायावर, दिविक रमेश आदि ने अपनी कविताओं में धरती की जिस रागात्मकता को व्यक्त किया है, योगेंद्र कृष्णा, शम्भु बादल ने जनविद्रोह का जो स्वर रचा है, बुद्धिलाल पाल जी, तेजिंदर गगन जी ने राजनीतिक चेतना का जो लोकधर्मी स्वर दिया है, उसका पासंग भर भी लीलाधर मंडलोई की कविताओं में नहीं दिखता। इनकी अधिकतर कविताएं अपने मुकाम पर पहुंचे बिना ही दम तोड़ देती हैं।

जो कवि यह कहे कि 'मेरी परछाई धूप में जल रही है', वह रूपवाद की ओर कितना झुका हुआ है, यह आप खुद समझ सकते हैं। परछाई तो धूप के बाद का हिस्सा है, धूप के अभाव का वस्तु-बिम्ब है, फिर वह धूप में जल कैसे सकती है? मंडलोई वस्तुतः कृत्रिम संवेदना के कवि हैं, जो भाषा के साथ बलात अनुभूति व संवेदना का काम लेना चाहते हैं। फिर भी आज के बड़े कवियों में शुमार हैं। कुछ तो वजह होगी!

कविता की अंतर्वस्तु उसका प्राण है। इस बात को एक कलावादी कवि ठीक उसी तरह नहीं समझ सकता, जैसा कोई लोकधर्मी कवि समझता है क्योंकि कलावादी कवि का सारा श्रम कविताओं को बाहर से माँजने में लगा होता है। उसका स्वभाव विशेषतः अन्तर्ग्रंथित और अंतर्मुखी होता है। इसलिए उसका जीवनानुभव सघन नहीं होता। उसके बिम्ब बाहरी उपादानों और प्रकृति से नहीं आते, बल्कि कहें कि मन की भट्टी में पककर आते हैं। मन की रचना होने के कारण इसमें इन्द्रियबोध का नितांत अभाव होता है। कवि अपने बाह्यगत अनुभवों को आत्मगत कर सृजन नहीं करता, बल्कि आत्मगतता को बाहर अपनी कविता में उड़ेलता है। इसलिए इनकी प्रतिबद्धता जन और जीवन के पक्ष में नहीं होती। वे इनका उपयोग केवल कला-संवर्द्धन के लिए करते हैं। नाम-गिराम के लिए करते हैं। इसलिए इन कविताओं में अधिकतर बौद्धिकता होती है, अधपके अनुभवों और सायास रचे बिम्बों का प्रदर्शन होता है। ये फैंटेसी और स्वप्न का प्रयोग भी यथार्थ को व्यक्त करने के लिए नहीं करते। लोगों को विस्मित करने के लिए करते हैं। यह बात लीलाधर मंडलोई की कविताओं के संदर्भ में महत्तम रूप में लागू होती है। इनकी कविताओं से गुजरते हुए मुझे अनुभव हुआ कि यह कवि अपनी बात पर टिकते नहीं, तुरत पाला बदल लेते हैं-

''मेरे भीतर कोमल शब्दों की एक डायरी होगी जरूर
:...........
ठोक-पीटकर जो गढ़ते हैं शब्द
मैं उनमें से नहीं हूं

मेरे भीतर शब्द बच्चों की तरह बड़े होते हैं / कविता 'शब्द बच्चों की तरह'

फिर दूसरी कविता 'भाषा' में कहते हैं-

'दीमक का घर
कमाल का सुंदर
लेकिन कितना जटिल

लिखता हूं अपनी कविता
दीमक की भाषा में' / कविता 'भाषा'/
'एक बहुत कोमल तान' से।

जब कवि के शब्द बच्चे की तरह कोमल हैं तो दीमक की जटिल भाषा में वह कविता कैसे लिख सकता है? दीमक तो जहां रहता है, उसी को खा जाता है। क्या यह उपमा सही है? इस तरह असंगतियों और विरोधाभासों से इनकी कविताएँ पटी पड़ी हैं जो इस कवि की प्रतिबद्धता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है।

जब कवि 'आग' कविता में कहता है -

''मेरी मेज पर
टकराते हैं
शब्द से शब्द

एक चिंगारी उठती है
और कविता में आग की तरह
फैल जाती है
आग नहीं तो कविता नहीं।''

तो मुझे धूमिल या कुमार विकल सरीखी उनकी एक भी कविता सामने नहीं मिलती है। हां, कवि का एक कायर, भीरू रूप जरूर सामने आता है-

''मैंने देखा
वो कत्ल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं गूंगा
मैं सर झुकाए चलता हूं /''कविता 'गूँगा'।

सच है कि मंडलोई का कवि कुसमय से विद्रोह नहीं कर सकता। उसका मनोबल इतना टूट चुका है कि वह खुद समस्याओं से भाग जाना चाहता है, भला सामने वाले को वह क्या सम्बल देगा! -

''हम सचमुच करना चाहते थे फतह
उस किले को जिसमें बंद था
तुम्हारी मुक्ति का बीजमंत्र
कभी मुक्त न हो सके अव्वल तो हम खुद
कि इतना सख्त इंतजाम

हम गुनहगार हैं
पहली फुर्सत में छोड़ जाना हमें
कि हमें छोड़ना ही मुक्ति के रास्ते पहला कदम।''

('क्षमा याचना' से)

गोया कि, इनकी कविताओं में जनसंघर्ष एक सिरे से गायब है। यह कवि संघर्ष के नाम पर केवल जनसंदेश या उपदेश देता हुआ दिखता है-

''मैंने हारने के लिए
यह लड़ाई शुरू नहीं की थी

इन अभाव के दिनों में भी
जितना खुश हुआ
उतना पहले कभी नहीं
कि इधर कर्ज़ में जीने की आदत

मैंने कई रास्ते किए पार पैदल
धीमे-धीमे इतने कि
न सुनाई दे मुझे
मेरे ही क़दमों की आहट

मधुर-मधुर बज रहा है
फ़ाक़ामस्ती का संगीत
और स्वर्ग से अलहदा नहीं है यह सुख कि
बच्चे मेरे सो रहे हैं गहरी नींद में।''

(कविता 'मैंने हारने के लिए' से)

'फाक़ामस्ती का संगीत' और 'बच्चों के नींदभर सोने मात्र से' मनुष्य के जीवन की जटिलताएं नहीं बदल सकतीं। यह घोर रूपवादी छटा है। इन कविताओं में कहीं दुधर्ष संघर्ष की आहट नहीं मिलती। एकांत श्रीवास्तव की कविताओं की तरह जन दुःख मात्र एक अरण्यालाप बनकर इनकी कविता में जगह-जगह आता है जिससे कोई विषम परिदृश्य नहीं बदल सकता। वह माद्दा ही नहीं इनके सृजन में। यह लोक का केवल एक लुभावन रूप पाठकों के सामने परोसता है। यहीं नहीं, जब दृश्य नहीं बदलते हैं तो मंडलोई का कवि इतना शिकस्त खा जाता है कि पराजय ही उनके जीवन के जीत का दर्शन बनकर हावी हो उठता है! -

''पराजय का अर्थ विजय है
यह कौन जानता है मुझ से अधिक

जो सबसे बुरा
सबसे अधिक सुन्दर है
इसे कौन जान सकता है सिवाय मेरे

जो डूबते हैं, जानते हैं वे ही
उस ज़मीन का पता
जिसमें छुपा है आनन्द जीवन का

मैं तो हूँ पराजय का मित्र
लोग इसे अनुभव कहते हैं बस।'' ('पराजय का अर्थ' कविता से)

इस कविता को कभी जीवनराग की कविता नहीं कहा जा सकता। इस अनुभव की समाजशास्त्रीय आलोचना हमें निराशा के गहन अंधकार की ओर धकेलती है। इसी प्रकार, इस पूंजीवादी, क्रूर व्यवस्था में केवल 'स्टेटमेंट' (बयानबाजी) हमारा कवि-कर्म नहीं। देखिए उनकी एक और कविता -

'' पूँजी तरल पदार्थ है
अवसर पाते ही
बह जाएगी वह
जहाँ होगी अधिक

इसका कोई रास्ता
गरीबों की तरफ
नहीं आता।'' (कविता, 'रास्ता')

नई कविता के आंदोलन के बाद 'लघु मानव' की संकल्पना ने मनुष्य को बहुत कमजोर किया। यह मनुष्यता के साथ भीतरघात है कि आदमी नियतिवादी हो जाए। स्पष्ट है कि लीलाधर मंडलोई अपनी कविता को उन बेबसियों से नहीं बचा सके हैं?

संपर्क :
मो : 07004353450
(रांची)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घटतौली

हिंदी लेखकों के साथ घटतौली की अनंत कथा

हिंदी लेखक एक कायर कौम है और हिंदी का प्रकाशक एक बेईमान कौम

दयानंद पांडेय

लखनऊ में अभी एक पुस्तक मेला विदा हुआ ही था कि अब फिर एक पुस्तक मेला लग गया है। वह भी राष्ट्रीय पुस्तक मेला था, यह भी राष्ट्रीय पुस्तक मेला है। अभी एक और राष्ट्रीय पुस्तक मेला लगने की तैयारी है। गरज यह कि किताबें बिक रही हैं, तभी तो पुस्तक मेले लग रहे हैं। दिलचस्प यह कि हिंदी किताबें अब किलो में भी बिकने लगी हैं। दिल्ली के दरियागंज में ही नहीं, पुस्तक मेलों में भी। लखनऊ ही नहीं विभिन्न शहरों में पुस्तक मेले लग रहे हैं। इलाहाबाद, वाराणसी, गोरखपुर, पटना, जयपुर, भोपाल, इंदौर, दिल्ली आदि-आदि तमाम-तमाम शहरों में। हिंदी की किताबें, हिंदी के अख़बार हिंदुस्तान में किसी भी भाषा से ज़्यादा बिकते हैं। लेकिन हिंदी का लेखक रायल्टी के नाम पर सिर्फ़ झुनझुना बजाता मिलता है। जब कि अंगरेजी का लेखक हिंदी की अपेक्षा बहुत कम बिकते हुए भी करोड़ो की रायल्टी पाता है तो क्यों?

सिर्फ़ इसलिए कि हिंदी लेखक एक कायर कौम है और हिंदी का प्रकाशक एक बेईमान कौम! दुनिया भर में प्रतिरोध का डंका बजाने वाला हिंदी का लेखक हिप्पोक्रेट भी बहुत बड़ा है। पुरस्कारों, फेलोशिप और विदेश यात्राओं के जुगाड़ में नित अपमानित होता यह हिंदी लेखक शोषक और शोषित की बात भी बहुत करता है लेकिन अपने ही शोषण के खिलाफ बोल नहीं सकता। इस बाबत उकसाने पर भी कतरा कर आंख मूंद कर निकल जाता है। दुनिया भर के मजदूरों की बात बघारने वाला यह हिंदी लेखक अपनी ही मजदूरी की बात करना भूल जाता है। प्रकाशक से रायल्टी की बात तो छोड़िए, उलटे प्रकाशक को पैसे दे कर किताब छपवाने की जुगत भी करता है। हिंदी का यह लेखक अकसर पाठक का रोना भी बहुत रोता है पर अपने बच्चों को वह पढ़ाता इंग्लिश मीडियम से ही है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विरोध भी यह हिंदी लेखक बहुत ज़ोर-शोर से करता है लेकिन उसके बच्चे लाखों के पैकेज पर इन्हीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की नौकरियां करते हैं। आलम यह है कि अगर कोई बहुत बड़ा फन्ने खां हिंदी लेखक अगर रायल्टी मिलने की बड़ी हुंकार भरता मिले तो उसकी हुंकार सुन लीजिए लेकिन यह बात तो जान ही लीजिए कि सिर्फ़ लेखन के दम पर यह हिंदी लेखक अपना और अपने घर के लोगों की चाय का खर्च भी नहीं उठा सकता है। बाक़ी कविता, कहानी, लेख आदि और सेमिनारों, गोष्ठियों-संगोष्ठियों वगैरह में तो अवमूल्यन, पतन और हेन-तेन आदि-आदि की जलेबी छानने और अति बघारने के लिए वह पैदा हुआ ही है। आप तो बस प्रणाम कीजिए हिंदी लेखक नाम के इस जीव को यह सोच कर कि अब तक यह ज़िंदा कैसे है? बल्कि जिंदा क्यों है? यह बात भी आप शौक से पूछ सकते हैं। यकीन मानिए वह कतई बुरा नहीं मानेगा। हाँ, यह ज़रूर हो सकता है कि यह सवाल सुन कर वह बहरा हो जाए, इस बात को अनसुना कर दे, कोई झूठ बोल दे, कतरा कर निकल जाए या शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सर घुसा ले! यह अब उसी पर मुन:सर है। आप बस आज़मा कर देखिए।

लेखकीय दुनिया में संपादकों, आलोचकों और प्रकाशकों को इंटरनेट ने एक गंभीर चुनौती दे दी है। इन सबकी तानाशाही, हेकड़ी, दुकानदारी और मोनोपोली को छिन्न-भिन्न कर दिया है इंटरनेट ने। खासकर ब्लॉग और फेसबुक ने इन सब की कमर तोड़ दी है। कमाने वाला खाएगा की तर्ज़ पर जो कहूं कि अच्छा लिखने वाला ही अब पढ़ा जाएगा! क्योंकि पाठक तो बहुत हैं। यह तिकड़ी व्यर्थ ही पाठक न होने का घड़ियाली आंसू बहा कर आंख में धूल झोंकती रही है। इंटरनेट ने इन का यह ड्रामा भी बिगाड़ दिया है कि हिंदी में पाठक नहीं हैं।

अच्छा जब पाठक खरीद कर भी पढ़ता है तो क्या पाठक की जेब से निकला पैसा लेखक को मिलता है? हरामखोर प्रकाशकों की तिजोरी भरती है और बेईमान और मक्कार संपादकों की शराब चलती है! यही तो फर्क है? बड़े-बड़े अक्षरों में लिख कर रखिए कि पाठक-पाठक होता है। समय खर्च करता है पाठक पढ़ने में भी और पैसा खर्च करता है नेट के लिए भी। नेट भी मुफ्त में नहीं चलता। असली चुनौती ब्लॉग और साइट ने ही दी है इन लोगों को। फेसबुक तो सिर्फ कम्युनिकेशन का जरिया है। पाठक, पाठक होता है। गंभीर पाठक और फला पाठक का वर्गीकरण कोई मायने नहीं रखता है। और जो रखता है तो यह वर्गीकरण फिर किताबों और पत्रिकाओं के साथ भी उसी तरह लागू होता है।

दोस्तों ऊपर बिंदुवार कही गई बातें मुगालता बिलकुल नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, हकीकत है। मैं गगन बिहारी नहीं हूं, न हवा हवाई बात करता हूं। यह मेरा निजी अनुभव है। अपने पाठक मित्रों की ज़मीन पर खड़ा हो कर पूरी ईमानदारी से बोल रहा हूं कि हिंदी में पाठक बहुत हैं। गड़बड़ अगर कहीं है तो यह चोर और बेईमान प्रकाशकों में है जो लेखक और पाठक संबंध खत्म कर सरकारी खरीद के खटमल बन गए हैं। दुकानों पर किताब ही नहीं रखते। मार्केटिंग भी एक चीज़ होती है, यह बात यह प्रकाशक नहीं जानते। पचास रुपए की किताब का दाम पांच सौ रुपए रखते हैं। तो हिंदी का पाठक इतना मूर्ख नहीं है कि पचास रुपए की चीज़ पांच सौ रुपए में खरीदे! यह सब चीज़ें ठीक हो जाएं तो आप को दुनिया की किसी भी भाषा से अधिक पाठक हिंदी में दिखने लगेंगे जो कि हकीकत में हैं।

जिस हिंदी भाषा को बोलने और पढ़ने वाले करोड़ो लोग हों। जिस हिंदी भाषा के कवि सम्मेलनी कवियों को लाखों रुपए एक काव्य-पाठ के लिए मिलने लगा हो, जिस हिंदी भाषा की फ़िल्में हफ़्ते भर में दो सौ, तीन सौ करोड़ रुपए कमा लेती हैं। जिस हिंदी में गीत, संवाद और विज्ञापनी स्लोगन लिख कर लोग करोड़ो रुपए हर साल कमा रहे हों। इसी हिंदी भाषा में अनूदित हो कर तमाम गैर हिंदी भाषी लेखकों की किताबें लाखों में बिकती हों। और यही प्रकाशक बेचते हैं। एडवांस दे कर अनुवाद करवाते हैं यही प्रकाशक। इसी हिंदी भाषा के प्रकाशक और संपादक को अपने पाठक क्यों नहीं मिलते? ज़रूर प्रकाशक और संपादक ही इस के लिए ज़िम्मेदार हैं, उनमें ही बड़ी खोट है,आप को नहीं लगता?

दरअसल हिंदी में अजब घटतौली है। कमोबेश हर जगह। क्या प्रकाशक, क्या संपादक, क्या अखबार या पत्रिकाएं। सब के सब एक लेखक नाम के प्राणी को गरीब की जोरु को भौजाई बनाने का सुख लूट रहे हैं। जाने कब से। पहले जब लिखना शुरू किया था तब लगता था कि लिख कर हम अपने को कागज पर रख रहे हैं। सब के सामने आने के लिए। एक स्वर्गानुभुति भी कह सकते हैं। छपने का तो शुरू में सोचते भी नहीं थे। लिखना ही लिखना था। बाद के दिनों में कहीं छपना भी एक सपना हुआ करता था। छपना ही। पैसा नहीं। पैसे का सपना नहीं। लिख कर पैसा भी मिलेगा ऐसा कभी तब सोचा भी नहीं था। पर जब पहली बार एक कविता आज अखबार में छपी तो लगा कि क्या पा गए हैं।

दस रुपए का मनीआर्डर भी बाद में आया। तब के दिनों में दस रुपए की नोट का आकार भी आज के सौ रुपए के लगभग हुआ करता था। और उस का मूल्य तो आज के सौ रुपए से निश्चित ही ज़्यादा था। यह 1977 या 1978 की बात है। बहुत दिनों तक क्या कई महीनों तक वह दस रुपए भी कभी इस किताब या उस किताब के पन्नों में सहेज कर रखे रहा था। जल्दी ही आकाशवाणी से युववाणी कार्यक्रम में कविता पढ़ने पर पचीस रुपए का चेक मिला। रेडियो पर कविता पढ़ने का सुख अलग और पैसा पाने का सुख अलग। कवि सम्मेलनों में तो कभी कभार सौ रुपए तक मिले। मार्ग व्यय अलग। पर कविता पढ़ने और छपने का ही सुख ज़्यादा बड़ा था। पैसे का नहीं। क्योंकि मुझे याद है कि वह पहला चेक भी जो आकाशवाणी से मिला था, बहुत दिनों तक सहेज कर रखे रहा था। बाद में लोगों ने बताया कि तीन महीने बाद चेक की वैल्यू खत्म हो जाएगी। तब कहीं स्टेट बैंक जा कर वह चेक भुनाया था। तब विद्यार्थी था और कोई ऐसी वैसी आदत थी नहीं कि पैसे उड़ा देता। बाद के दिनों में तो छपना भी नियमित हो गया। और पारिश्रमिक कहिए, मानदेय कहिए वह बढ़ कर कहीं पचीस तो कहीं तीस रुपए का हो गया। आज, दैनिक जागरण या इन की कंचनप्रभा या अवकाश पत्रिकाओं में भी। नवभारत टाइम्स या हिंदुस्तान अखबार में भी। आकाशवाणी पर भी चालीस रुपए मिलने लगे। नाटक लिखने के तो डेढ़ सौ रुपए मिलने लगे। और 1978 में ही सारिका में प्रेमचंद पर एक फ़ीचर छपा तो डेढ़ सौ रुपए मिले। धर्मयुग, दिनमान और साप्ताहिक हिंदुस्तान से भी कभी डेढ़ सौ रुपए से कम का भुगतान नहीं मिला। रविवार ने तभी दो सौ रुपए का भी चेक भेजा था। बावजूद इस सब के तब भी पैसा नहीं, रचना का छपना ही महत्वपूर्ण था।

नया प्रतीक में अज्ञेय जी ने एक गीत छापा उन्हीं दिनों। सव्यसाची ने उत्तरार्द्ध में कविता छापी। एक पैसा नहीं मिला। पत्रिका भी खरीदनी ही पड़ी। लेकिन यहां छपने का सुख और ज़्यादा था। उन्हीं दिनों एक रिपोर्ट दिनमान को भेजी थी। वह मत सम्मत में छप गई। मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने तब रघुवीर सहाय को एक चिट्ठी लिख कर अपना कड़ा प्रतिरोध दर्ज करवाया था। मैं ने लिखा था कि संपादक के नाम पत्र नहीं रिपोर्ट भेजी थी आप को। और आप ने उसे पत्र बना दिया। सहाय जी का जवाब आया था। उन्होंने लिखा था कि दिनमान का मत सम्मत भी महत्वपूर्ण होता है। आप की रिपोर्ट तभी छापनी ज़रुरी लगी और अन्यत्र जगह थी नहीं, बाद में विलंब हो जाता इसलिए मत सम्मत में प्रकशित की गई। आप निश्चिंत रहें आप को पारिश्रमिक भी समय से भेजा जाएगा। समय से मुझे डेढ़ सौ रुपए का चेक मिला भी। उन दिनों लगभग परंपरा सी थी तब सभी जगह कि रचना छपने के तीन महीने बाद ही भुगतान मिल जाता था। किसी से कुछ कहना या लिखना नहीं होता था। मुझे याद है कि अमृत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रभात तो तब मनीआर्डर का कमिशन भी काट लेता था। पोस्टमैन को दिक्कत होती थी चालीस रुपए के पेमेंट में सैंतीस रुपए कुछ पैसे देने में। दिल्ली प्रेस की पत्रिकाएं तो रचना स्वीकृत करने के साथ ही डेढ़ सौ रुपए का चेक भेज देती थीं। रचना चाहे जब छपे। बाद के दिनों मैं गोरखपुर से दिल्ली चला गया सर्वोत्तम रीडर्स डाइजेस्ट में नौकरी करने लगा। वहां यह देख कर मुदित हो गया कि एक लेख के पांच हज़ार रुपए से भी अधिक का पारिश्रमिक मिलता था। यह 1981 की बात है। बाद में जनसत्ता गया नौकरी करने। 1983 में तो वहां भी एक लेख के तब तीन सौ से पांच सौ तक का पारिश्रमिक दिया जाता था। और पूरे सम्मान से। न संपादक घिघियाते थे न लेखक। हां यह ज़रुर कई बार देखा कि अगर लेखक को ज़रूरत है तो रचना या लेख छपते ही संपादक एक चिट्ठी प्रबंधन को लिख देते थे और उस का भुगतान तुरंत मिल जाता था। मुझे खुद कई बार ऐसा सुख मिला है। दिनमान में रघुवीर सहाय और सारिका में कन्हैयालाल नंदन ने ऐसी कई चिट्ठियां मेरे लिए लिखीं और मुझे तुरंत भुगतान मिल गया।

यही हाल प्रकाशकों का भी तब के दिनों था। मेरा पहला उपन्यास दरकते दरवाज़े 1983 में प्रभात प्रकाशन के श्यामसुंदर जी ने छापा था। उपन्यास स्वीकृत होते ही उन्होंने अनुबंध किया और ढाई हज़ार रुपए तुरंत नकद दिए। यही काम हिंदी पुस्तक संस्थान के प्रकाशक ने किया। जिसने मेरा पहला कहानी संग्रह संवाद और दूसरा उपन्यास जाने अनजाने पुल छापा था। किताब छपने के पहले ही पैसा दे दिया। हिंद पाकेट बुक्स के दीनानाथ जी ने भी यही किया। पर अब ? अब यह सब बीते समय की बातें हैं। कहें कि बीता युग है। प्रकाशक कहते हैं कि किताब अब बिकती नहीं। पैसा कहां से दें ? हालत यह है कि प्रकाशक कागज़ से लगायत छपाई, बाइंडिंग तक के पैसे कई बार एडवांस दे देता है। दुकानदारों को 40 से 50 प्रतिशत कमिशन देता है। सरकारी खरीद के लिए अफ़सरों को अस्सी प्रतिशत तक रिश्वत देता है। खरीद के पहले ही। कई बार यह पैसा डूब भी जाता है तो भी देता है। पर नहीं देता तो सिर्फ़ लेखक को सो काल्ड रायल्टी नहीं देता। उसको पसीना आ जाता है। तमाम किस्म की दिक्कतें आ जाती हैं। और वह घुमा देता है। तो क्यों ? और तो और अब तो बहुतायत में लोग प्रकाशक को पैसा दे कर किताबें छपवाने लगे हैं। सारा खर्च लेखक का और सारा फ़ायदा प्रकाशक का। निर्मल वर्मा ने अपने निधन के कुछ समय पहले राजकमल प्रकाशन से अपनी रायल्टी का हिसाब मांगा। उनका निधन हो गया पर राजकमल वाले माहेश्वरी बंधु ने उन की रायल्टी का हिसाब तब नहीं दिया। उनके निधन के बाद उन की पत्नी गगन गिल ने हिसाब मांगा। राजकमल के स्वामी ने देश भर के लेखकों को चिट्ठी लिख कर दुनिया भर की बातें बताईं पर गगन गिल को रायल्टी का हिसाब नहीं दिया। राजकमल वालों ने अपने पत्र में गगन जी की चरित्र हत्या तक की कोशिश की। और प्रकारांतर से यह जताने की कोशिश की कि गगन गिल निर्मल वर्मा की पत्नी नहीं रखैल हैं। चिट्ठी में कहा कि निर्मल जी की व्याहता पत्नी की एक बेटी भी है। गगन गिल को भी मजबूर हो कर देश भर के लेखकों को चिट्ठी लिख कर अपनी सफाई देनी पड़ी। गगन जी को विवश हो कर लिखना पड़ा कि मैं निर्मल वर्मा की व्याहता पत्नी हूं। और कि वह अपनी वसीयत में सब कुछ मुझे सौंप गए हैं। किताबों की कापीराइट भी। और कि उनकी बेटी को भी किसी बात पर ऐतराज़ नहीं है। फिर भी राजकमल ने उन्हें रायल्टी नहीं दी। फिर तो हर पुस्तक मेले में वह निर्मल जी की किताब ले कर राज़कमल के खिलाफ़ खड़ी होने लगीं, लंबी कानूनी लड़ाई लड़ी। फिर कहीं राजकमल से निर्मल जी की सारी किताबें उन्होंने वापस लीं। निर्मल वर्मा ने अपने निधन के पहले एक लेख भी लिखा था इस मामले पर। इस लेख में उन्होंने बताया था कि दिल्ली में हिंदी के कई प्रकाशकों को वह व्यक्तिगत रूप से जानते हैं। जिनके पास हिंदी की किताब छापने और बेचने के अलावा कोई और व्यवसाय नहीं है। और यह प्रकाशक कहते हैं कि किताब बिकती नहीं। फिर भी वह यह व्यवसाय कर रहे हैं। न सिर्फ़ यह व्यवसाय कर रहे हैं बल्कि मैं देख रहा हूं कि उनकी कार लंबी होती जा रही है, बंगले बड़े होते जा रहे हैं, फ़ार्म हाउसों की संख्या बड़ी होती जा रही है तो भला कैसे ?

निर्मल जी के इस सवाल का किसी प्रकाशक ने आज तक पलट कर जवाब देने की ज़रूरत नहीं समझी। एक बार नेशनल बुक ट्रस्ट के पुस्तक मेले में रवींद्र कालिया ने कहा कि प्रकाशक अब पांच सौ से तीन सौ प्रतियों के संस्करण पर आ गए हैं। बाद में जब वह मंच से उतर कर चाय-वाय पीने लगे तो मैंने उनसे कहा कि उत्तर प्रदेश में आप के कुछ मित्र आई. ए. एस. अफ़सर हैं। कुछ सरकारी खरीद की जानकारी मैं आप को दे रहा हूं। आप चाहें तो अपने दोस्तों से कह कर यह तो पता करवा ही सकते हैं कि किस किस खरीद में आप की कौन-कौन सी किताब कितनी-कितनी खरीदी गई है। पता चल जाएगा कि किताब कितनी छपती है ? पर जाने क्यों कालिया जी ने बात को सुन कर अनसुना कर दिया। कुछ बोले नहीं। शायद वह हमाम का नंगापन जानते रहे होंगे तभी चुप रहे। उन दिनों आर टी आई नहीं था। पर अब तो है। पर मुझे नहीं मालूम कि किसी लेखक ने यह आरटीआई अपनी किताब खरीद के बाबत आजमाया है। सचाई यह है कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकाशक किसी किताब का पहला संस्करण ज़रूर पांच सौ का छापते हैं, पर यह बेचने के लिए नहीं, सिर्फ़ सबमिशन के लिए। इतनी योजनाओं में इतनी खरीदें हैं कि यह पांच सौ किताबें भी सबमिशन के लिए कम पड़ जाती हैं प्रकाशकों को। फिर तो जैसे -जैसे आर्डर मिलता जाता है किताबें छपती जाती हैं। एक-एक हफ़्ते में कई-कई संस्करण एक किताब के छप जाते हैं। लेकिन प्रकाशक के यहां लेखक के लिए वही पहला संस्करण दिखता रहता है। दस साल बाद भी अगर उसी किताब का पहला संस्करण बिल्कुल ताज़े कागज़ पर दिख जाए तो हैरत में बिलकुल नहीं पड़ें। आपका ही कहानी संग्रह आप ही के नाम से किसी और प्रकाशक या किसी और शीर्षक से छपा मिल जाए तो भी मत चौंकिए। सरकारी खरीद का गुणा-भाग मान लीजिए इसे। लेखक छोटा है या बड़ा इस से भी इन बातों को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। मेरा पहला उपन्यास जब छपा था तो कह सुन कर उसकी समीक्षा कई जगह छपवा ली, अच्छी-अच्छी। कुछ जगह अपने आप भी छप गई, तो मेरा दिमाग थोड़ा खराब हुआ। मन में आया कि अब मैं बड़ा लेखक हो गया हूं। कोई पचीस-छब्बीस साल की उम्र थी, इतराने की उम्र थी, सो इतराने भी लगा। प्रभात प्रकाशन के श्यामसुंदर जी ने इस बात को नोट किया। एक दिन मेरे इतराने को हवा देते हुए बोले, 'अब तो आप बडे लेखक हो गए हैं! अच्छी-अच्छी समीक्षाएं छप गई हैं।' मैंने ज़रा गुरुर में सिर हिलाया। और उनसे बोला, 'आप का भी तो फ़ायदा होगा!'

'वो कैसे भला?'

'आप की किताबों की सेल बढ़ जाएगी!' मैं ज़रा नहीं पूरे रौब में आ कर बोला।

'यही जानते हैं आप?' श्यामसुंदर जी ने अचानक मुझे आसमान से ज़मीन पर ला दिया। अमृतलाल नागर, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर आदि तमाम बड़े लेखकों की किताबों के साथ मुझ जैसे कई नए लेखकों की कई किताबें एक साथ मेज़ पर रखते हुए वह बोले, 'इनमें से सभी लेखकों की किताबें बेचने के लिए मुझे एक जैसी तरकीब ही लगानी पड़ती है।'

'क्या?' मैं चौंका।

'जी!' वह बोले, 'बिना रिश्वत के एक किताब नहीं बिकती। वह चाहे बड़ा लेखक हो या घुरहू कतवारु। सबको रिश्वत देकर ही बेचना होता है। बाज़ार का दस्तूर है यह। बड़ा लेखक दिखाऊंगा तो दो चार किताबें खरीद ली जाएंगी। तो उससे तो हमारा खर्च भी नहीं निकलेगा।'

हकीकत यही थी। मैं चुप रह गया था तब, पर तब श्यामसुंदर जी, दीनानाथ जी या अन्य प्रकाशक भी लेखक को रायल्टी के नाम पर कुछ पैसा देते ज़रूर थे। उन दिनों यह एक चलन सा था कि अगर हज़ार पांच सौ रुपए की तुरंत ज़रूरत हो तो बच्चों की पांच सात छोटी-छोटी कहानियां लिख कर प्रकाशक के पास चले जाइए पैसा मिल जाता था। श्रीलाल शुक्ल बताते थे कि एक बार वह दिल्ली गए तो राजकमल प्रकाशन की तब की शीला संधु मिलने आईं। नई किताब मांगी। बेटे ने एडवांस के रूप में पचास हज़ार मांग लिया। दूसरे दिन शीला जी ने पचास हज़ार रुपए भिजवा भी दिए। यह अस्सी के दशक की बात है। अब मैं खुश कि हिंदी के लेखक की यह हैसियत हो गई है कि एक किताब के पचास हज़ार रुपए एडवांस भी मिल सकते हैं, पर बाद में पता चला कि यह खुशी बेकार ही थी। साल के आखिर में जब किताबों की रायल्टी का हिसाब हुआ तो वह पचास हज़ार रुपया उसमें एडजस्ट हो गया। एक घटना और। श्रीलाल जी बाद में प्रकाशकों और अखबार वालों की कृपणता से इतने उकता गए कि एक बार अमर उजाला में उन का इंटरव्यू छपा तो उन्हों ने बाकायदा अखबार को नोटिस दे कर उस इंटरव्यू का पैसा मांग लिया। हिंदी में अभी तक यह चलन नहीं है कि आप किसी को इंटरव्यू लेने के लिए पैसे दें। हां, उलटे कुछ फ़िल्म स्टार या कुछ व्यवसायी ज़रूर ऐसा करते हैं कि पैसा दे कर इंटरव्यू छपवाते हैं, पर कई सारी भाषाओं में चलन है कि इंटरव्यू लेने के लिए भी संबंधित व्यक्ति को पैसे देने पड़ते हैं। याद कीजिए फूलन देवी के इंटरव्यू जिस पत्रकार ने लिए थे और उस की बायोग्राफी लिखी थी उसने फूलन देवी को बाकायदा और अच्छा खासा भुगतान दिया था, एडवांस। साथ में रायल्टी भी शेयर की थी। तो श्रीलाल जी ने नोटिस दे कर पैसा मांगा। अखबार के हाथ पांव फूल गए। रिपोर्टर को तलब किया गया। सब कुछ किया गया पर अंततः श्रीलाल जी को अखबार ने पैसा नहीं दिया तो नहीं दिया। माफी मांग कर इतिश्री कर ली। श्रीलाल जी को जब लगातार कुछ पुरस्कार मिले तो वह एक बार बहुत प्रसन्न हो कर कहने लगे कि इतना पैसा तो रायल्टी में भी नहीं मिला अब तक। एक बार मनोहर श्याम जोशी को एक अखबार ने एक पुरस्कार योजना के निर्णायक मंडल में मनोनीत किया तो उन्हों ने छूटते ही पूछा कि पैसा कितना मिलेगा? सुनने वालों को यह अच्छा नहीं लगा। लोगों को लगा कि हिंदी का लेखक पैसा भी मांग सकता है? यह सब हिंदी के लेखकों के साथ ही क्यों होता है भला?

सोचिए कि एक समय उत्तर प्रदेश में हिंदी संस्थान के 83 पुरस्कारों में से 80 पुरस्कार मायावती ने एक झटके में खत्म कर दिए। अशोक वाजपेयी ने इसके विरोध में भारत भारती जैसा संस्थान का सर्वोच्च पुरस्कार लेने से इंकार कर दिया, पर मायावती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सरकार के कान पर जूं नहीं रेंगा। जबकि यहीं उत्तर प्रदेश उर्दू अकादमी का एक भी पुरस्कार छूने की हिम्मत मायावती की नहीं हुई। उलटे पुरस्कार राशि में बढ़ोतरी कर उसे पांच लाख का कर दिया। जबकि हिंदी में भारत भारती ढाई लाख का ही है। यही नहीं आप देख लीजिए कि हिंदी में दिए जाने वाले साहित्य अकादमी, ज्ञानपीठ या व्यास सम्मान धनराशि के मामले में भी बुकर, मैगसेसे या नोबल के आगे किस कदर बौने की हैसियत में भी खड़े नहीं हो पाते। तब जब कि यह दुनिया में सब से ज़्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। और तो छोड़िए कौन बनेगा करोड़पति समेत जाने कितने शो हैं जिसमें लोग आनन-फानन जाने लाखों रुपए पा जाते हैं। बताते हुए खुशी होती है कि कहानी उपन्यास आदि की मेरी कोई 36 किताबें हैं, पर प्रकाशक से जब कभी रायल्टी की बात चलाता हूं तो बस एक ही जवाब होता है। प्रकाशक कहता है कि आपकी रायल्टी तो यह अफ़सर खा जाते हैं। इन अफ़सरों से छुट्टी दिलवाइए तो आपको रायल्टी देता हूं। इसमें सारा संकेत यह होता है कि मैं अपनी किताबों की सरकारी खरीद खुद करवाऊं कह सुन कर या जैसे भी। तो वह कमीशन या रिश्वत जो सरकारी अमला खाता है उस का कुछ टुकड़ा मेरे हिस्से भी आ जाएगा। सो मैं हाथ जोड़ लेता हूं। और बिना रायल्टी के ही संतोष करता हूं। पैसा दिए बिना किताब छप जाती है यही सोच कर खुश हो लेता हूं।

असल में हुआ यह कि इधर के दिनों में तमाम सरकारी अफ़सर-कर्मचारी भी लेखक हो चले हैं। सो वह किताब छापने के लिए पैसे भी देते हैं, खरीद भी करवाते हैं। खुद भी कमाते हैं और प्रकाशक को भी कमवाते हैं। पहले के दिनों में ऐसा वैसा कुछ विश्वविद्यालयों के अध्यापक करते थे। पाठ्यक्रम की चार किताबों के साथ अपनी कोई कविता कहानी की किताब भी थमा देते थे। खरीद समितियों में भी वह होते ही होते थे। सो प्रकाशक उन्हें उपकृत करते रहते थे, पर यह सब कुछ दबे ढंके था। पर अफ़सरों के लेखक बनने और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को प्रोन्नति किताब के आधार पर कर देने से खुला खेल फरुखाबादी हो चला है। बहुतेरे प्रकाशक तो लेखकों से किताब छापने का पैसा ले कर डकार भी जाते हैं। किताब नहीं छापते। पैसा भी वापस नहीं देते। कई बार कुछ प्रकाशक पैसा ले कर भाग भी जाते हैं। अकसर ऐसी खबरें सुनने को मिलती हैं। लेखकों में खेमेबाज़ी का नमो अंधकारम अलग है। रिश्वत अब ग्लोबलाइज़ है। हिंदी किताबें भी इसका शिकार हैं। लेकिन यही भर कह देने से काम नहीं चलता। हकीकत यह है कि यही हिंदी प्रकाशक जब अरुंधति राय या तसलीमा नसरीन को छापने पर आते हैं तो उनके पास घुटने टेकते हुए पहुंचते हैं और एडवांस और मुंहमांगी रायल्टी दे कर किताब का आनन फानन अनुवाद एडवांस दे कर सर के बल हो कर करवाते हैं। तो क्या हिंदी में किताब बिकती है? कोई इन प्रकाशकों से नहीं पूछता। सोचिए कि बांगला के विमल मित्र तक के परिवार के लोगों को यही हिंदी प्रकाशक रायल्टी देते नहीं अघाते। तो फिर यह सारी नौटंकी सिर्फ़ हिंदी लेखकों के लिए ही है?

कारण साफ है कि सरकार भी नहीं चाहती कि लोग पढ़ें। वह चाहती ही है कि लोग टी.वी. के सास बहू, लाफ़्टर चैलेंज, बिग बास टाइप के फालतू कार्यक्रम देख कर नपुंसक विचारों के हवाले हो जाए। क्योंकि अगर लोग पढ़ेंगे तो सोचेंगे। सोचेंगे तो सिस्टम और सरकार के खिलाफ ही तो सोचेंगे? पर लोग हैं कि लिखना छोड़ नहीं रहे। तो सरकार लोगों के लिखे को सरकारी लाइब्रेरी में कैद करती जा रही है। प्रकाशक मालामाल होते जा रहे हैं। अफ़सरों की ज़ेब भरती जा रही है। अब कितने लोग जानते हैं कि सिर्फ़ साक्षरता की हिंदी किताबों के नाम पर ही एक-एक ज़िले में करोड़ों रुपए का बजट हर साल स्वाहा हो जाता है! बाकी की तो खैर बात ही क्या? हालत यह है कि सभी प्रदेशों में तमाम विभागों के अलग-अलग बजट हैं हिंदी किताबों खातिर। मानव संसाधन विभाग राजा राममोहन राय योजना की खरीद में हर साल न सिर्फ़ करोडों-करोड़ रुपए हिंदी किताबों की खरीद पर खर्च करता है बल्कि किताब रखने के लिए आलमारी तक खरीदने का बजट भी देता है। जो लेखक या अधिकारी इस की खरीद समिति में आते हैं एक ही साल में मालामाल हो जाते हैं। बहुतेरे विदेशी भाषाओं की किताबें भी प्रकाशक इस खरीद में पाट देते हैं। वह किताबें जो रायल्टी हैं। टालस्टाय, हेमिंग्वे से लगायत प्रेमचंद, शरतचंद आदि भी। यानी जो रायल्टी से हो गई किताब हो प्रकाशक को मुफ़ीद पड़ती है। नामा और नाम दोनों ही उनके हिस्से आ जाते हैं। सरकारी अमला आंख मूंद कर खरीद जारी आहे! की मुनादी करता रहता है। बताते हुए तकलीफ़ होती है कि एक बार तो इस खरीद समिति के अध्यक्ष एक नामवर आलोचक बनाए गए थे। सारी खरीद उन्होंने अपने एक चहेते प्रकाशक को ही थमा दी। इतनी कि दाल में नमक हो गया। जांच शुरू हो गई। जेल जाने की नौबत आ गई कि एक नामवर कवि और आलोचक ने अपने प्रशासनिक अधिकारी होने का हुनर दिखाया। और अध्यक्ष महोदय बच गए। बचाने वाले को ज़िंदगी भर खारिज़ किए रहे थे, उससे उपकृत होकर उसे साहित्य अकादमी से नवाज़ दिया। बात चर्चा-कुचर्चा में ही निपट गई। अभी कुछ समय हुए एक पद्मश्री प्राप्त पत्रकार ने भी राममोहन राय ट्रस्ट की किताब खरीद में बतौर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्यक्ष एक ही प्रकाशक को करोड़ो रुपए की किताब खरीद के आदेश दे दिए। यह और ऐसे तमाम प्रसंग किताब खरीद के किस्सों से रंगे पडे हैं। रेलवे, सेना, बैंकों और दूतावासों में भी हिंदी किताबों की भारी खरीद होती है। और हमारे प्रकाशक लोग जब लेखकों को रायल्टी देने की बात आती है तो कहते हैं कि क्या करें किताबें बिकती ही नहीं। और गुस्सा तब आता है जब इन खरीद कमेटियों में शामिल मठाधीश लेखक भी यह सब कान में तेल डाल कर न सिर्फ़ सुनते रहते हैं बल्कि यथास्थितिवादी बन आंख भी मूंदे रहते हैं।

एक समय जब दूरदर्शन का ज़माना था तब के दिनों धारावाहिकों में काम करने वाले कलाकारों का शोषण बहुत बढ़ गया था। ज़्यादातर निर्माता कलाकारों का पारिश्रमिक घाटा हो गया के नाम पर मार देते थे। जब अति हो गई तब दूरदर्शन ने एक नियम बना कर निर्माता को कलाकारों की तरफ़ से एन.ओ.सी. देना अनिवार्य कर दिया। अगर कोई कलाकार निर्माता के खिलाफ अगर झूठ भी शिकायत कर देता तो उस का प्रसारण और भुगतान रोक दिया जाता था। कलाकारों का शोषण लगभग रुक गया। अब कोई शोषण करवाने पर ही आमादा हो तो बात और है। तो क्या यह सरकारें भी ऐसा कुछ नहीं कर सकतीं? कि लेखकों की एन.ओ.सी. कि किताब की रायल्टी मिली, तभी किताबों का भुगतान करे। और कि यह भी ज़रूर सुनिश्चित करे सरकार कि उस किताब का सचमुच ही पहला संस्करण है और कि वह अनुदित किताब नहीं है। अनूदित किताब का कोटा भी सुनिश्चित कर दिया जाए। न सही पूरी तरह अधिकांश समस्या तो खत्म होगी ही। नहीं अपने देश में हिंदी के लेखकों की हैसियत किसानों मज़दूरों से भी गई बीती है कि उन्हें अपने काम की मज़दूरी नहीं मिलती बल्कि इस बारे में प्रकाशक, लेखक, सरकार या समाज सोचता भी नहीं। यह कौन सा समाज हम गढ़ रहे हैं? इस पर अब सोचना बहुत ज़रुरी हो गया है।

किताबों की सरकारी खरीद में वैसे एक नियम है, खास कर राजाराम मोहन राय ट्रस्ट की किताबों की खरीद में तो है कि लेखकों को रायल्टी मिल गई है की एनओसी प्रकाशक सरकार को दें। प्रकाशक लेखक की यह एनओसी देते भी हैं, सरकार को लेकिन फर्जी। लेखक को तो पता भी नहीं चलता कि कब कितनी और कौन सी किताब खरीदी गई और क्या रायल्टी बनी। इस ब़ात की चर्चा मैंने लखनऊ में एक आरटीआई एक्टिविस्ट नूतन ठाकुर से की जो एक आईपीएस अफ़सर अमिताभ ठाकुर की पत्नी हैं। तय हुआ कि वह हाईकोर्ट में इस बाबत एक याचिका दायर कर सरकार को निर्देश दिलवाएंगी कि लेखकों की रायल्टी सीधे लेखकों के खाते में सरकार भिजवाया करे। फिर बात आई कि इस बारे में कुछ लेखक लिख कर दें ताकि याचिका को बल मिले। तब के दिनों श्रीलाल शुक्ल, कामतानाथ, मुद्राराक्षस आदि लेखकों से इस बाबत मैंने बात की, पर यह सभी लेखक दाएं-बाएं हो कर कतरा गए। अब यह लोग नहीं रहे। लेकिन उन्हीं दिनों मैं ने शिवमूर्ति और वीरेंद्र यादव जैसे कई लेखकों से भी बात की थी। एक शिवमूर्ति तैयार हुए। शिवमूर्ति ने इस बारे में दिल्ली में बलराम से चर्चा की। बलराम भी वीर रस में आए। लेकिन अफ़सोस कि आज तक एक भी लेखक की दस्तखत इस बाबत नहीं मिल सकी। आगे भी खैर क्या मिलेगी। मुद्राराक्षस ने तभी कहा था कि आधा-अधूरा ही सही कुछ रायल्टी तो यार मिल ही जाती है। अब ऐसा करेंगे तो यह प्रकाशक छापना ही बंद कर देंगे तो क्या करेंगे? ऐसा ही और भी लेखकों ने घुमा-फिरा कर कहा। गरज यह कि लेखक चूहा हैं और प्रकाशक बिल्ली। फिर वही बात की बिल्ली के गले घंटी बांधे कौन?

अब यह घटतौली भी कैसे जाए भला? वह भी हिंदी से? यह सब तब है जब हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा भले न हो बाज़ार की सब से बड़ी भाषा है इस दुनिया में। हिंदी से ज़्यादा न सिनेमा बनता है, न धारावाहिक, न अखबार हैं हिंदी से ज़्यादा, न हिंदी से ज़्यादा किताबें छपती हैं इस देश में न हिंदी से ज़्यादा खुदरा बाज़ार है यहां। फिर भी हिंदी का लेखक रायल्टी नहीं पाता। गिनती के कुछ लोग पाते भी हैं तो कैसे और कितना पाते हैं, वह ही जानते हैं। सच यह है कि पाठ्यक्रम जो न हो हिंदी का तो रायल्टी शब्द भी हिंदी किताबों की दुनिया से उठ जाए। हिंदी फ़िल्मों के पटकथा और संवाद लेखकों की हैसियत कुछ बहुत अच्छी नहीं है। हिंदी पत्रकारों की तो और बुरी गत है। देश के किसानों के लिए सरकार कम से कम न्यूनतम समर्थन मूल्य तो घोषित करती है, हिंदी के पत्रकारों को तो न्यूनतम वेतन भी नहीं मिलता। एक रिक्शे वाले से भी कम वेतन है उस का और बहुत सारे संवाद सूत्रों को तो वेतन भी नहीं मिलता। मुफ़्त में काम करते हैं। हिंदी लेखकों की और बुरी हालत है। किसी बंधुआ मज़दूर से भी गए गुज़रे हैं।

संपर्क :
5/7, डालीबाग आफ़िसर्स कालोनी,
लखनऊ- 226001
मो :- 09335233424 / 09415130127

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मिथिलेश कुमार मिश्र 'दर्द' की कविताएं

गांधी हैं एक बहाना

उत्सव देता हमें न रोटी
देता गेहूं दाना।
प्रचार स्वयं का करते हो
गांधी है एक बहाना।
भूखे भजन ना होहिं गोपाला
कह गए हैं पहले पुरखे
कैसे उत्सव देखें जब
हैं पेट हमारे भूखे।
पहले गेहूँ तब गुलाब
यह बात है एकदम सच्ची
पहले दो तुम रोटी हमको
फिर करना बातें अच्छी।
गांधी-पथ है कठिन बहुत
बस स्वांग ही रच सकते हो।
समझ रहे हैं तुम्हें खूब
हमसे ना बच सकते हो।
छोड़ो बाकी बातें बस तुम
कृषकों को ही ले लो
उनके उपजाये फसलों का
उचित मूल्य तो दे दो।
'भितिहरवा' में जाकर देखो
कृषकों की बदहाली
जीर्ण शीर्ण वस्त्रों में करते
फसलों की रखवाली।
शीत घाम दोनों सहते हैं
बिना निकाले आह
देख रहे हैं करते कितना
तुम उनकी परवाह।
बड़ी-बड़ी बातें करते हो
मंचों पर बस जाकर
जिएंगे क्या कृषक तुम्हारी
बातों को ही खाकर?
गांधी ने जो कहा उसे था
जीवन में अपनाया
तूने केवल नाटक करके लोगों को बहलाया।

कर्जा भरेंगे हम !

बुलेट ट्रेन पर तुम चलोगे
कर्जा भरेंगे हम
बोलो हर हर बम।
जर्जर यहां पटरियां सारी
खुलेआम हैं मौत हमारी
बचे रहोगे केवल तुम सब
मरते रहेंगे हम-
बोलो हर हर बम।
आत्म-हनन करते किसान हैं
भारत माता की जो शान हैं
पर तेरी नजरों में उनकी
कीमत शायद कम-
बोलो हर हर बम।
सबका विकास और सबका साथ
सुन सत्ता दे दी तेरे हाथ
पर कुछ लोगों की ही चिन्ता
करते हुए हरदम
बोलो हर हर बम।
लाख पन्द्रह की बातें छोड़ो
सांसों की डोरी मत तोड़ो
कब तक हम निर्धन रक्खेंगे
बोलो तुम संयम-
बोलो हर हर बम।
कर्जा लेकर घी पीयेंगे
ऐसे हम कब तक जीयेंगे !
सिर पर सवार हो जाएगा
यह कर्जा बन कर यम
बोलो हर हर बम।

संपर्क :
मो : 07488160061

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समीक्षा

मार्क्सवाद सिर्फ सिद्धांत नहीं व्यवहार भी है...

यह पुस्तक उन सभी को पढ़नी चाहिए जो पत्रकारिता के स्याह-सफ़ेद पहलू को जानना समझना चाहते हैं, नंदीग्राम का सच जानना चाहते हैं ...

सीमा संगसार

जिस तरह अब्राहम लिंकन ने कहा जनता के लिए, जनता के द्वारा किया गया शासन ही लोकतंत्र है, उसी तर्ज़ पर नंदीग्राम डायरी के लेखक पुण्यराज पूछते हैं कि जर्नलिज्म फॉर व्हूम ...?, फॉर व्हिच पर्पस ...? जाहिर है पत्रकारिता भी जनता के लिए ही होनी चाहिए, शासक के लिए नहीं ... बेगूसराय की माटी में जन्में पुण्यराज जी ऐसे ही पत्रकार हैं जिन्होंने मीडिया की परीभाषा ही बदल कर रख दी। लेखक लगातार गरीबों व दलितों के लिए आंदोलनरत हैं। मेधा पाटकर के साथ देश भ्रमण कर इन्होंने काफी कुछ लिखा है, चाहे वह सिरसा डायरी हो या कोका कोला का पर्दाफाश का मामला हो, ये जितने मुस्तैद हैं उतनी ही तेजी से इनकी कलम चलती है। फिलहाल बेगूसराय के अपने गाँव मंझौल में मुसहर टोली के बीच उनका दु:ख-दर्द कलमबद्ध करने में लगे हैं। इसके साथ ही पटना आर्ट कॉलेज में चाहे प्रिंसिपल की मनमानी का मामला हो या बिहार सरकार के द्वारा पटना संग्रहालय से यक्षिणी जैसे अनमोल धरोहर को किसी एनजीओ द्वारा संचालित संग्रहालय में स्थानान्तरण का मुद्दा हो, इन्होंने लगातार अपनी आवाज बुलंद की।

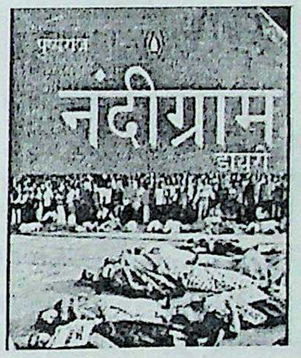

यह पुस्तक 2007 में तब लिखी गयी थी जब नंदीग्राम धू-धू कर जल रहा था। इस डायरी को उन्होंने उस जलती हुई आग में खुद को बचाते हुए, भूमिगत रहकर आँखों देखी घटना है जिसका वर्णन तारीख दर तारीख में बंटे करीब 322 छोटे-छोटे पेजों में किया गया है। बंगाल में 2007 में सीपीआई (एम) की सरकार थी और बुद्धदेव भट्टाचार्य तात्कालिक मुख्यमंत्री थे।

वह सरकार जो दास कैपिटल को राजनीति की कुरान और रामायण मानता है और जहां मार्क्सवाद कहता है कि ''दमन जितना बढ़ता है जनान्दोलन उतना ज्यादा ताकतवर होता है।'' उन दिनों इन सारे सिद्धांतों की धज्जियां उड़ा दी गयी थीं ...

इस डायरी को पढ़ते हुए मैं महसूस कर रही थी कि सत्ता इंसान को किस कदर अंधा बना देती है, वह इंसानियत को भूल कर हैवानियत पर उतर आती है, चाहे वह मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ही क्यों न हो? वह सत्ता के मद में आकर सब कुछ भूल जाती है। मीडिया की भूमिका के बारे में भी लेखक का यह कथन भी तब सौ फीसदी सच होता है कि 'हमारे देश में मीडिया का एक दफ्तरी रिवाज चल गया है, सरकार, साहब और कॉर्पोरेट के दफ्तर खुलते हैं और समय से वेतनभोगी पत्रकार काम से लौटकर वापस घर पहुँच जाते हैं। सब कुछ दफ्तरी होता गया तो शहर और सत्ता मीडिया के हृदय हो गए। ऐसे वक़्त में हमारा मीडिया बड़े-बड़े कॉर्पोरेट घराने के इशारे पर ऐसी घटनाओं को तवज्जो नहीं देता और गूंगे-बहरे बनकर सांप-नागिन के नृत्य की रिपोर्टिंग करते रहते हैं। दरअसल ऐसे पत्रकार दफ्तरी मुलाजिम बनकर रह जाते हैं जिन्हें सरकार की चाकरी करने के लिए ही वेतन मिलते हैं।

जान तो सबकी प्यारी होती है, न तो शेर की मांद में कौन जाए दहाड़ने, लेकिन पुण्यराज जी ऐसे ही एक पत्रकार हैं जिन्होंने अपनी जान जोखिम में डाल कर पत्रकारों और बुद्धिजीवियों के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध होकर नंदीग्राम में डटे रहे और उन गरीब किसानों के दर्द को महसूसते रहे जिनकी ज़मीन को सेज के अंतर्गत ज़बर्दस्ती अधिग्रहण करने के लिए उनपर दबाव बनाया जा रहा था। सरकार को किसी भी कीमत पर उनकी ज़मीन चाहिए थी एक केमिकल कारखाने के लिए। समाज सेविका व पर्यावरणविद मेधा पाटकर को भी नंदीग्राम में घुसने से रोका गया, उनकी गाड़ी पर हमले बोले गए, उनके बालों को पकड़ कर गाड़ी से नीचे घसीटने की कोशिश की गयी। लेखक साक्षी रहे उन घटनाओं की ...

ऐसी स्थिति में मेधा को भी कहना पड़ा-

''बिहार में आप गुंडों को डॉन कहते हैं, यहाँ बंगाल में कॉमरेड कहते हैं, बाप रे बाप देश की राजनीति में गुंडा पॉवर कितना ताकतवर होता जा रहा है, लेकिन गुंडा कॉमरेड नहीं हो सकता।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक ऐसे नंदीग्राम की घटना भारत के माथे पर कलंक है और इस दिल दहला देने वाली घटना को निर्भीकता से लगातार अपनी डायरी में कलमबद्ध करते जाना, वह भी सत्तारूढ़ शासन के खिलाफ काफी जोखिम से भरा व साहसिक कार्य है।

ऐसी विकट परिस्थिति में अरण्य की देवी महाश्वेता देवी ने कहा-'यह समय घरों में बंद रहने का नहीं है, नंदीग्राम जल रहा है, जो जहाँ हैं, सड़क पर निकल जाएँ। वहीं एसएफआई के प्रदेश अध्यक्ष कॉमरेड सुदिप्तो सेनगुप्ता नारों से गूंजती सभा में बोलने लगे। पहले तीन 'म' हमारे शत्रु थे अब चार 'म' हमारे शत्रु हो गए हैं - 'ममता, महाश्वेता, मेधा, और मीडिया'।

यह बयान गुजरात दंगों के दौरान दिए गए बयानों से अलग कहाँ है जिसमें महात्मा, मैकाले और मुसलमान तीन 'म' के सफाए का ऐलान किया गया था। मेधा पाटकर सही कह रही थीं कि 'जो सिर्फ बुद्धिजीवी ही नहीं मूल्यजीवी भी हैं, वे सत्ता के पद सुख को लात मारकर यहाँ खड़े हैं। जब नंदीग्राम भीषण आग में जल रहा था, ठीक उसी समय बिहार में भीषण बाढ़ की तबाही थी। बीबीसी ने इसे दैवी विपदा घोषित किया। लेखक के अपने ग्रामीण क्षेत्र में बसही बाँध का टूट जाना और वहाँ मचे भयंकर हाहाकार को भी वे महसूस करते रहे, अपनी माँ-बहनों के बांस की फुनगी पर चढ़ कर जान बचाने की गुहार को वे अनसुनी नहीं कर सके और इसी बीच उन्होंने इन यंत्रणाओं की भी रिपोर्टिंग करने बिहार आ गए। उन जोखिम भरे क्षेत्रों का दौरा नाव पर सवार होकर करते रहे ...।

लेखक डायरी के एक पन्ने में लिखते हैं कि "दु:ख, महादु:ख के इस संत्रास में हंसने की कोशिश से दु:ख कम हो जाएगा। थोड़ा हंस लेने से रोने की ताकत बढ़ जाती है, यह किस तरह का प्रयास है? दु:ख को जीने की कला (आर्ट ऑफ़ लिविंग) हम मार्क्सवादी प्रदेश में सीख रहे हैं।"

लगातार सात-आठ महीने तक दु:ख को जीने वाले नंदीग्रामवासी जो अपनी ज़मीन बचाने के एवज में लगातार अपनी बहु-बेटियों को बलात्कृत होते देख रहे थे, अपने घरों को जलते देख रहे थे, उनके लिए दु:ख भी जीवन दर्शन बन गया था। ऐसी चीजों से लगातार लड़ते-लड़ते उनकी मानसिक स्थिति भी बद से बदतर हो चुकी थी।

पुस्तक के एक अंश में लेखक का एक कथन है कि 'दुनिया के मजदूरों एक हो ' का नारा, मैंने भी इसी कम्युनिस्ट पार्टी का लाल झंडा हाथ में लेकर लगाया था। हम ग्रामीण मानुष नहीं जानते कि किसी मेहनतकश मजदूर को पीट कर शरीर को निकम्मा बनाने का हक मार्क्स ने किसी को दिया है? हम मार्क्स की किताबें नहीं पढ़ते, पर मार्क्स का जन्मदिन मनाते हैं। लेखक के मन में जब ये सवाल उठता है कि 'इनके हाथ में लाल झंडा है, वे असली कम्युनिस्ट हैं, हमारे हाथ में कलम है, हम उनके शत्रु हैं? तब लगता है कि कोई झंडा मानवता के बिना बेकार है ... एक युवा कृषक ने कहा एक तोरण द्वार पर जितना रुपया खर्च हुआ है, इतने में कम से कम पचास गरीबों की देह ढँक सकती है। दूसरे ने जवाब दिया, जो कपड़ा उतारना जानते हैं, वे कपड़ों से ढंकते नहीं हैं। पुष्पराज जी उन दिनों बंगाल के कृषक व मजदूर घरों में अपनी शरण स्थली बनाए लगातार उन चीजों को अपनी डायरी में कलमबद्ध करते रहे। बंगाल के जिन घरों में जहां दूध, दही और मछली का प्रतिदिन भोग लगता था वहीं वे बउदी के हाथों दाल, भात और चोखा खाकर उनके दर्द को महसूसते रहे। उन बलात्कृत स्त्रियों ने जो ऐलान किया 'हमारी इज्ज़त कपूर की पुड़िया नहीं है जो गुंडों के फूंकने से उड़ जाती हैं 'बच्चे जो देर तक हंसना जानते हैं तो समय पर गुस्से का इज़हार भी कर सकते हैं। बच्चों ने फैसला लिया, वह वर्दी जिस पर खून लगा है, हम उन्हें देखना नहीं चाहते हैं। सरस्वती के मंदिर पर बन्दूक का कब्जा क्यों? सबने एक साथ सोचा 'हमारी मर्ज़ी के बिना हमारे विद्यालय में यह किसका कब्जा है? बच्चे जो असमय बड़े हो रहे थे उनके इस नारे के साक्षी बने लेखक को कितनी पीड़ा हुई होगी, लेखक को स्कूल में बच्चों को किताब के साथ-साथ बंदूकों के बीच देखते हुए उनके स्कूल जो छावनियों में बदल गए थे उन दिनों... हमारी लड़ाई, हमारी पढ़ाई, पढ़ाई- लड़ाई साथ-साथ ...। लेखक की हिम्मत की दाद देनी होगी की उन्होंने मरना मुनासिब समझा लेकिन सच से मुँह मोड़ना कतई नहीं ...।

इनके इस साहसिक कार्यों की भी आलोचना यह कह कर की गयी कि ये एक एनजी ओ के हाथों बिके हुए हैं, लेकिन लेखक इन आलोचनाओं से तनिक भी घबराते नहीं हैं। उन्होंने इसे अपनी ताकत माना है यह कह कर कि 'हमारे समाज में भ्रष्ट और भ्रष्टाचार से अब भी इतनी घृणा तो लोग करते हैं; घृणा की यह चेतना भी ख़त्म हो जाएगी तो कौन किसके भ्रष्ट होने से दुखी होगा, 'सीख लेनी चाहिए उन पार्टियों को जो अपनी जरा सी आलोचना से तिलमिला जाते हैं। जब आप कहते हैं-हम उनके कृतज्ञ हैं जो हमारी चूकों पर नज़र रखते हैं और तत्काल घृणा करना भी जानते हैं, कॉमरेड आपकी घृणा ने हमें इंसानियत की नयी तमीज सिखाई है, "मैं कहती हूँ कि कॉमरेड आपने एक डायरी लिखकर हम इंसानों को सभ्यता की नयी तमीज सिखाई है।" जन-पत्रकारिता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की नयी समझ ओर जीवन मूल्यों के नए सिद्धांत सिखाये हैं। नंदीग्राम की यह घटना मार्क्सवादी दलों की बहुत बड़ी भूल थी जिसे उन्होंने बाद में स्वीकारा भी ...। इस घटना से सबक लेते हुए उन्हें प्रण करना होगा की भविष्य में वे इन गलतियों को फिर से न दुहराएंगे। यही वजह है कि उन्हें जनता का विश्वास फिर से जीतने के लिए लंबा समय और संघर्ष करना पड़ रहा है, क्योंकि मार्क्सवाद सिर्फ सिद्धांत नहीं व्यवहार भी है, जिसको जितना जीवन में उतारा जाए वह उतना ही अपने आदर्शों में गहरे उतरता चला जाता है ..। लेखक ने इस डायरी को बिलकुल नए अंदाज में लिखा है। इनकी आंचलिक भाषा कहीं-कहीं बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रयोग किये गए हैं, जो इन्हें एक ज़मीनी पहचान देती है, मसलन नरभसाना, वातास, लप्पड़-थप्पड़, बदला सधाना आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जो इन्हें अपनी माटी से जोड़े रखती है। जब ये कहते हैं ''खूब लटाने से स्वाद खूब जमता है कॉमरेड तो बिहार के बेगूसराय की मिट्टी की भीनी सुगंध उन खैनी के साथ ही हवा में घुल जाती है ...। सबसे बड़ी बात यह है कि इस लेखक को नंदीग्राम डायरी लिखने के बाद इन्हें वामपंथ विरोधी कहा गया, जबकि सच्चाई यह है कि एक जन पत्रकार कभी भी वामपंथ विरोधी नहीं हो सकता? जिसने जनता का दु:ख-दर्द लिखने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा दी, वह वामपंथ विरोधी कैसे हो सकता है? ममता बनर्जी के सत्ता में आने के बाद इन्होंने मुख्यमंत्री के नाम एक खुला पत्र लिख कर उनकी नीतियों का विरोध करके यह साबित कर दिया है कि वह किसी पार्टी या व्यक्ति के गुलाम नहीं, वह जनता के पक्ष में खड़े होने वाले एक निर्भीक पत्रकार हैं....। पेंगुइन प्रकाशन से प्रकाशित इस पुस्तक की कीमत 250 रुपये हैं। यह पुस्तक उन सभी को पढ़नी चाहिए जो पत्रकारिता के स्याह-सफ़ेद पहलू को जानना समझना चाहते हैं, नंदीग्राम का सच जानना चाहते हैं ...।

संपर्क :
मो :-07543860361
बेगूसराय, (बिहार)

कविता

संगीता कुमारी

धीरे-धीरे

बालों को रंगकर दाड़ी को हटाकर बनते हो जवान
बातें करते हो चटपटी
चलाते हो चढ़े चश्मे से नयनों के बाण
बैठी हमसफर बगल में संतोष नहीं
क्योंकि कामदेव ने अभी तक पीछा छोड़ा नहीं
बड़े ही रंगीन हो
दिल के कोने में रखते हो अनेक माशूका जवान
तन की दीवारें झर-झर हो रही हैं
गिर रहा है परदा
फिर भी लुभाते रहते हो कह कहकर दिल है अभी जवान
तुम्हारी इसी जिंदादिली से
नौजवानों को होने लगी है हीनभावना
नौजवान अपनी प्रेयसी पर प्रभाव बनाने के लिये
अधिकांश समय सौंदर्य दुकान में गुजारते हैं
फिर भी वो आपकी तरह आत्मविश्वास नहीं ला पाते हैं
तब तुम अनुभवी अपनी नकली काले बालों वाली
खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए कहते हो
नादान हैं नौजवान
भूल जाते हैं कि यह अनुभव है
जो कि समय की आंच पर धीरे-धीरे पका है
जिसको पकाने के लिये काले बालों को
हमने धूप में सफेद थोड़े ही किया है...

संपर्क :
सी 72/4 नरोरा एटॉमिक पावर स्टेशन,
टाउन शिप, नरोरा, बुलंदशहर,
उत्तर प्रदेश, पिन- 203389
मो :- 08954590566,
09457017582

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समीक्षा

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ग्रामीण जीवन
के एक प्रमुख कथाकार हैं

गांवों को हमारे देश का हृदय-स्थल कहा जाता है

डॉ. रंजना कण्ठ

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ग्रामीण जीवन के एक प्रमुख कथाकार हैं। इन्होंने ग्रामीण जीवन को अपनी कहानियों का मुख्य आधार बनाया है। गांवों को हमारे देश का हृदय-स्थल कहा जाता है और रेणु ने गांव तथा वहां के पीड़ित-शोषित व्यक्तियों की कथा, उनकी सहनशीलता, उनके मन की कोमलता के साथ ग्रामीण जीवन के प्रति उनके लगाव और प्रेम को बड़े ही प्रभावी ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

रेणु जी की लेखन-शैली वर्णात्मक थी, जिसमें पात्रों के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण बड़े ही लुभावने तरीके से किया गया है। अपनी कहानियों में रेणु ने आंचलिक जीवन के हर धुन, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सुर, हर सुंदरता, हर कुरूपता को शब्दों में बांधने की सफल कोशिश की है, लेकिन रेणु जी का एक कहानी-संग्रह 'ठुमरी' के नाम से सन् 1959 ई. में जब छप कर आया तो उसकी कहानियों ने पाठकों का ध्यान सिर्फ अपनी आंचलिक विशेषता की वज़ह से आकर्षित नहीं किया, बल्कि मुख्यत: इसलिए किया कि उन कहानियों में लोक-जीवन की गंध थी, उसके भीतर का राग और रूप था।।

रेणु जी ने अपनी कहानियों में जिस आदमी का चित्रण किया है वह गरीब है, अशिक्षित है, कमजोर है (लेकिन इसके साथ ही उनमें एक उदात्त मानवीय गरिमा भी है) सामंती, जमींदारी और महाजनी व्यवस्था से दु:खी, पीड़ित और शोषित भी है। अपनी कहानियों में उन्होंने आर्थिक दुर्व्यवस्था से पीड़ित मनुष्य का अत्यंत ही कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है। किसानों-मजदूरों की आर्थिक परिस्थितियों के कारण उनकी कृतियां अपने समय और समाज की सही तस्वीर बन गई हैं।

इसी आर्थिक दुर्व्यवस्था और महाजनी सभ्यता पर आधारित उनकी एक जीवंत कहानी है 'उच्चाटन'। महाजनी सभ्यता और कर्ज से ऊबकर कहानी का नायक 'रामविलास' एक दिन गांव छोड़कर चुपके-से भाग जाता है। कर्ज से उबरने के लिए वह पटना में रिक्शा चलाता है, क्योंकि गांव में तो रोजगार का एक ही साधन है 'खेती' और वह तो बारहों महीने नहीं हो सकती है। उसका तो कुछ समय निश्चित रहता है। गांव में एक तो काम की कमी, मजदूरी में मिलने वाले मेहनताने में कमी और उसपर महाजन का अत्याचार। अपनी शादी में लिए हुए कर्ज से बढ़ते हुए सूद में आकंठ डूब जाता है 'रामविलास'। 'गांव के महाजन' 'मिसर महाराज' की बात को याद कर क्रोध से उसका 'कान गरम' हो जाता है, साले रुपया लेकर बिहा-गौना किया, अब बीवी की टांग पर टांग चढ़ाकर सोते हो और मेरे रुपए की बात भूल गया? एं?... मैं यदि रुपया नहीं देता, तो अभी 'गुलगुला' कैसे खाते रोज,एं? [2] मिसर की बेबात की बात सुनकर रामविलास प्रण करके घर से भाग जाता है पटना रुपया कमाने। दो साल के बाद जब वह गांव वापस लौटता है तो उसके रंग-ढंग बदले हुए से होते हैं। ठाट-बाट निराली होती है। दो साल तक पैसे कमाकर 'मिसिर महाराज के मुंह पर फेंकने' का जो सपना वह देखता आया था, उसे वह गांव आते ही पूरा करता है और आत्म-गौरव से भर उठता है। मिसर महाराज को शिकस्त देकर उसके दो साल के बेचैन मन को शांति मिलती है।

रामविलास के पॉकिट में अब पैसे हैं। रिक्शा चलाने का सरकारी मोहर वाला लाइसेंस है। शरीर पर सुनहरे बटन वाली कमीज है। बातचीत में शहरी लहजा है और शहर के सैकड़ों चटपटे किस्से भी हैं। पूरे गांव के युवकों का 'हीरो' है अब वह। 'रामविलास के मचान' पर सुबह से ही बीड़ी के धुंए का गुब्बारा उड़ रहा है। रह-रहकर हंसी की लहरें आतीं हैं। एक-से-एक दिल को गुनगुनानेवाला किस्सा सुना रहा है, रामविलास-पटनिया किस्सा!'[3]

रामविलास बदल गया है। शहरी हो गया है। अपनी पत्नी को नाम लेकर पुकारता है अब वह - ''ऐ झुमकी ! झुमकी के लिए पटना से 'अंगरेजी अंगिया' लाया है लाल रंग का, कान के लिए कुंडल, कपाल के लिए चकमक बिन्दी, नहाने के लिए 'मूनलैट साबुन'! गांव की स्त्रियों और लड़कियों के आकर्षण और ईर्ष्या का केन्द्र बन गई है वह। झुमकी का रूप इन अलंकारों से अलंकृत होकर खिलता जा रहा है और गांव की स्त्रियों के मन की ईर्ष्या झुमकी की लाल अंगिया की लाली बनकर तैरने लगती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रामविलास के गाँव छोड़कर जाने के बाद उसकी इकलौती पूंजी उसकी 'भैंसिया' की देखभाल करने वाला गांव का युवक शिवधारी उसकी पत्नी पर रीझ जाता है और रामविलास के लाए हुए साज-श्रृंगार के सामान से सजी झुमकी को देखकर उत्तेजना से सिहर उठता है- '' एह! आब जीयब कठिन...अब? अब मेरा kel ee n ebee? ''4

रामविलास के ऐश्वर्य और झुमकी के साज-श्रृंगार से प्रभावित होकर, रामविलास के मुंह से पटना की रंगीनियों की रसभरी कहानियां सुन-सुनकर गांव के बीसियों युवक उसके साथ पटना जाने के लिए स्टेशन के पास के बाजार से बाल कटवा कर, फैशनेबल बनकर तैयार हो जाते हैं। लेकिन कुछ दिन गांव में रहकर, शिवधारी के साथ अपनी पत्नी के संबंध की बात जानकर रामविलास का मन शहर की आबो-हवा से 'उचट' जाता है रामविलास अब उदास है। रह-रहकर उसका मन 'निरगुन' गाने को होता है। विदाई गीत, मैथिली समदाऊन गीत उसके 'मन-प्रान' में गूंजने लगते हैं,

''मिली लेहु सखिया, दिवस भेल रतिया
कि चित्त भेल जग से उदा...आ-आ-आ-स!''

पटना जाने का दिन नजदीक आ रहा है, लेकिन रामविलास का मन शहर से उचट रहा है अब। अपना शान, अपना वैभव सब बेमानी लग रहा है उसे। शहर से मोह-भंग हो गया है उसका। ''शहर में क्या है? जितनी आमदनी होती है, उससे चौगुना लहू खर्च होता है। गांव आखिर गांव है...मिसर जी ने बाकी करजे का एक पाई भी सूद नहीं लिया। शहर में इस तरह कोई सूद छोड़ देता?...पटना कहो या दिल्ली, जो मजा अपने गांव में है, वह इन्द्रासन में भी नहीं।'' 6

पटना जाने को उत्सुक और तैयार बैठे युवक आसमान से गिरते हैं। लेकिन रामविलास अब पटना नहीं जाना चाहता, वह गांव के महत्त्व को, वहां के स्नेह को समझ गया है। उसके निर्णय पर झुमकी खुश होकर मुस्कुराती है...

प्रस्तुत कहानी के माध्यम से फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने बताया है कि गांव से पलायन का मूल कारण आर्थिक विपन्नता और बेरोजगारी है, तभी तो इस बेरोजगारी से परेशान युवक रामविलास के साथ पटना में 'चिनिया बदाम (मूंगफली)' तक बेचने को तैयार हैं। रेणु जी ने अपने कथा-साहित्य की रचना लोक-जीवन की आर्थिक विपन्नता को केन्द्र में रखकर की है। उनकी कथा-भाषा की नींव लोक-भाषा की भूमि पर निर्मित है। 'उच्चाटन' कहानी के नायक के माध्यम से रेणु जी ने गांव तथा ग्रामीण-जीवन के प्रति अपने लगाव को दर्शाया है। उनका नायक वस्तुत: मिट्टी की गंध में जीने वाला पात्र है, जो रेणु जी के प्रकृति-प्रेम का भी परिचायक है।

संदर्भ-सूची :

1.) रेणु-कृतित्त्व और कृतियां; संपादक -डॉ. सियाराम तिवारी,नवनीत प्रकाशन, पटना 1983,पृष्ठ संख्या - 311

2.) रेणु रचनावली, भाग-1; संपादक - भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, पटना, 1999,पृष्ठ संख्या - 388

3.) वही, पृष्ठ संख्या - 391

4.) वही,पृष्ठ संख्या - 390

5.) वही,पृष्ठ संख्या - 395

6.) वही,पृष्ठ संख्या - 397

संपर्क :
व्याख्याता, बी.एड. विभाग
रांची विमेन्स कॉलेज, रांची
सम्पर्क -09304076311

लेखकों से निवेदन

- पाठकों के धैर्य को ध्यान में रखते हुए रचनाकार कम शब्दों में आलेख भेजें, ताकि पाठकों पर उसका प्रभाव पड़े।
- वैचारिक रचना के अलावा कहानी, कविता, लघुकथा, संस्मरण भेज सकते हैं।
- कृपया रचना की फोटो कॉपी न भेजें। रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होने का उल्लेख करें।
- रचना के साथ अपना संक्षिप्त परिचय, चित्र, पता, फोन नंबर अवश्य भेजें।
- रचना तीन के महीनों तक प्रकाशित न होने की स्थिति में उसे अस्वीकृत समझें।
- अस्वीकृत रचना वापस भेजने की व्यवस्था नहीं है।
- रचना पर मौलिक अधिकार आपका है। मगर प्रकाशित रचना को अन्यत्र भेजने के पहले अनुमति लेना आवश्यक है।
- कृपया अन्यत्र भेजी गयी रचना प्रकाशनार्थ यहाँ न भेजें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समीक्षा

लुटेरों के हाथों कैसे रहे जनतंत्र सुरक्षित ?

(महेंद्र नारायण पंकज की कहानी 'जनतंत्र की हत्या')

डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी

लहक, कोलकाता, जुलाई-सितंबर 2017 में प्रकाशित।

भारतीय जन लेखक संघ से लंबे अरसे से पूरी निष्ठा से जुड़े हुए लेखक महेंद्र नारायण पंकज की रचनाधर्मिता बार-बार उनके पाठक वर्ग को समाजवादी मूल्यों के हनन के प्रति उनकी चिंता से परिचित कराती है। बिहार प्रांत से लेकर वर्तमान समय में देश के कोने-कोने में जाकर भारतीय जन लेखक संघ के सदस्यों से अंतरंग भाव से मिलना और वैचारिक दृष्टि से उन्हें जोड़ने की मुहिम में लगे महेंद्र जी अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति में भी बड़े ईमानदार और खरा-खरा कहने के अभ्यस्त हैं। प्रस्तुत कहानी का शीर्षक स्वयं पाठकों को वर्तमान भारत के राजनीतिक परिदृश्य में मची अफरा-तफरी की ओर आकृष्ट करता है। कहानी आरंभ होती है एक घोषणा के साथ। आगामी दस तारीख को भरगामा के हाईस्कूल के मैदान में कॉमरेड माया देवी के धुआँधार भाषण के लिए आमंत्रण की घोषणा की जाती है। घोषणा तो करवा दी रामजीवन जी ने पर भूल हो गई कि उसी दिन गांव के बगल में महर्षि मेंही दास जी का सत्संग का कार्यक्रम निश्चित है। डांट मिली पार्टी जिला कमिटी के सदस्य कामरेड जगदीश जी से ? श्रोता कहां से जुटाओगे भाषण सुनने के लिए। सच ही तो है इस धर्मपरायण राष्ट्र में धार्मिक मेले में बिन बुलाए हज़ारों की भीड़ जुट जाती है पर राजनीतिक जागरूकता के लिए चलाए गए कार्यक्रमों में लोग नदारद। चिंता है कहानीकार को अंधश्रद्धा में डूबी देश की जनता की राजनीतिक उदासीनता पर। इस देश में आए दिन धर्मगुरुओं की तादाद बढ़ती जा रही है और उनकी भक्ति की धारा में आंख मूंदकर डूबने वाले श्रद्धालुओं की भीड़ पर पैनी नज़र रखने वाले लेखक की कलम की धार और तेज़ होती जा रही है।

माया दीदी का चरित्र गठन बड़ी सजगता से किया गया है। माया देवी की राजनीतिक समझ, पार्टी के प्रति एकाग्रनिष्ठा व राजनीतिक कार्यक्रमों को अपनी सुख-सुविधा से कहीं अधिक महत्व देने की प्रवृत्ति के माध्यम से महिला वर्ग के राजनीतिक मंच पर अग्रसर होने की सक्रियता को लेखक दर्शाना चाहते हैं। जिस देश के राजनीतिक पटल पर आज भी महिला उम्मीदवारों व कार्यकर्ताओं को केवल मंच शोभा, कोटे के तहत खानापूर्ति और किसी पारिवारिक पुरुष सदस्य की छाया के तौर पर दोयम दर्जा मिला है, वहां महेंद्र जी ने माया दीदी के रूप में एक सशक्त महिला राजनीतिक कार्यकर्ता का निर्माण कर पाठकों की दृष्टि में परिवर्तन की आशा की है। वे लिखते हैं-''सभा की कार्यवाही समय पर शुरू हो गई। एक-एक कर वक्ताओं ने अपनी-अपनी बात कही। लेकिन लोगों का ध्यान तो माया देवी की ओर था। बहरहाल जब माया देवी मंच पर आयीं तो सारा मैदान स्तब्ध हो गया। ऐसी स्तब्धता कि अगर कहीं सुई भी गिरे तो आवाज़ की दिशा का ज्ञान हो जाए। माया देवी शेरनी की तरह गरजती रहीं। लोगों की भीड़ धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। लोगों ने अंत तक उनका भाषण सुना। दरअसल, लोग उनके ओजपूर्ण भाषण से आंदोलित हो उठे थे। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद माया देवी तो चली गईं थीं लेकिन उनके भाषण की प्रशंसा चारों ओर होने लगी थी। जो लोग सत्संग में चले गए थे वे लोग माया देवी का भाषण न सुन पाने के कारण पछताने लगे थे। (लहक, कोलकाता, जुलाई-सितंबर 2017, पृ-54)

माया देवी के रूप में कहानीकार ने एक सजग व कर्मठ राजनीतिक कार्यकर्ता की छवि पाठकों के मानस में अंकित की है। तभी तो मायादेवी जब दूसरी बार इस इलाके में आती हैं तब आम सभा के लिए 'परमिशन' न मिलने पर भी बिना हताश हुए घर-घर घूमकर लोगों की राजनैतिक चेतना को उद्वेलित करती रहीं। करीब दो सौ महिलाओं के साथ उन्होंने मीटिंग की। इस प्रकार एक प्रांत को अपनी राजनीतिक मंशाओं के समर्थन में तैयार करने में उनका महत योगदान रहा। दूसरी ओर लेखक ने कॉमरेड केवल यादव जैसे नेता को भी चित्रित किया है जिसने दाल-रोटी के चक्कर में वकालत का पेशा अपना लिया है। अब वकालती और कम्युनिस्ट विचारधारा तो एक साथ चलने से रही, तभी तो महेन्द्र जी ने ऐसे पेशाधारी कम्युनिस्टों को रजिस्टरनुमा कम्युनिस्ट घोषित किया है, जिनके लिए रोज़ी-रोटी के साधन जुटाना अपने आदर्शों पर भारी पड़ने लगे। लेखक उन तत्वों की संख्या वृद्धि पर, जिन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी की छवि को ही तुच्छ स्वार्थ के हवन में झुलसा दिया है, अपनी परेशानी को कामरेड जयकिशन के माध्यम से यों व्यक्त किया है -'' क्यों भाई जयकिशन! आजकल आप मुरझाए से क्यों रहते हैं ?''

''अब मुरझाएँ नहीं तो क्या करें, पार्टी के लीडर गलत का विरोध करना नहीं चाहते। मन होता है पार्टी-वार्टी छोड़कर अपने काम-धंधे में लग जाऊं। भांड़ में जाए समाजवाद, भांड़ में जाए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गरीबों का राज।'' ''ऐसा क्यों कहते हो जयकिशन? कम्युनिस्ट कभी धैर्य नहीं खोते हैं। हमलोग पार्टी में रहकर गलत तत्वों को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेकेंगे।''(वही, पृ-55)। इस प्रकार की बातचीत के माध्यम से कहानीकार ने वर्तमान भारत में कम्युनिस्ट पार्टी को भीतर से तोड़ने वाले तत्वों की खबर ली है। समाजवादी चिंतनधारा त्याग व निर्भय व्यक्तित्व की मांग करती है। पर जब पार्टी में अपने टुच्चे स्वार्थ के लिए जनहित व समाजवादी चेतना को दरकिनार करने वाले सदस्यों की भरमार हो जाए, वहां समाजवादी पार्टी को दम तोड़ना ही पड़ता है।

अब कहानी के अंत तक आते-आते कथाकार इस जनतांत्रिक राष्ट्र की सबसे बड़ी विडंबनात्मक स्थिति का भंडाफोड़ करते हैं। वे चुनाव के माहौल का यथार्थ चित्रण करते हैं। जनता द्वारा चुने जाने की इस पद्धति में अब जो बेतहाशा अस्त्रबल का प्रयोग कर जबरन वोट डलवाया जाता है या राजनीतिक नृशंसता का परिचय देते हुए छीना-झपटी होती है, उसका कच्चा-चिट्ठा खोलने में यह छोटी सी कहानी पूर्णतः सफल हुई है। चुनाव आयोग द्वारा हर संभव प्रयास के बावजूद बूथ लूटने का सच आज भी बरकरार है। बूथ लूटने को ही आपने जनतंत्र की हत्या का नाम दिया है। सच ही तो है, जनता के अधिकार का सबसे बड़ा सूचक होते हैं मतदान केंद्र, जहां वे अपने भविष्य के कर्णधारों को पूरी स्वाधीनता व सजगता से चुनते हैं, पर बूथ लूटकर उनके इस मौलिक अधिकार का हनन करते हुए जनतंत्र की अवधारणा को ही लहूलुहान कर दिया जाता है। कहानी का अंत बड़े ही संघर्षपूर्ण माहौल में होता है जहां एक ओर जनतंत्र के हत्यारे-गुण्डे गोलियों की बौछार करते हुए बूथ लूटते हैं और इसमें बाधा डालने वाले जनतंत्र के सच्चे सिपाहियों की धज्जियां उड़ा देते हैं वहीं दूसरी ओर कॉमरेड धराशायी हो जाने के बावजूद अपनी अंतिम सांस तक इंकलाब ज़िंदाबाद और लाल सलाम के नारे को नहीं छोड़ते।

कहानी यहां पर समाप्त हो जाती है पर पाठकों को देश की वर्तमान अराजक स्थिति पर सोचने के लिए बाध्य करती है। राजनीतिक गुंडागर्दी की भीड़ में आज भी अपने आदर्शों के लिए समर्पित चरित्र हमें मिलते हैं। कदाचित उनके कारण आज भी इस देश में नाममात्र के लिए ही सही, जनतंत्र जीवित है। दिन पर दिन उसकी गिरती हुई अवस्था पर कहानीकार की चिंता बिल्कुल जायज़ है। इस प्रकार महेंद्र नारायण पंकज जी की यह कहानी उनके लेखन के अन्य पक्षों को उजागर करती हुई समाजवादी चिंतन के प्रति उनकी गहन आस्था को व्यक्त करती है।

संपर्क : मो :- 09433675671, (कोलकाता)

ग़ज़लें

Vigyan Vrat

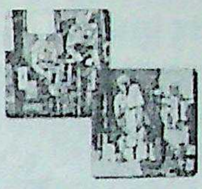

विज्ञान व्रत

1.

बच्चे जब होते हैं बच्चे
खुद में रब होते हैं बच्चे

सिर्फ अदब होते हैं बच्चे
इक मकतब होते हैं बच्चे

एक सबब होते हैं बच्चे
गौर-तलब होते हैं बच्चे

हमको ही लगते हैं वरना
बच्चे कब होते हैं बच्चे

तब घर में क्या रह जाता है
जब गायब होते हैं बच्चे

2.

जब से मैं दिलगीर हुआ
रातों-रात अमीर हुआ

मैं जब भी तहरीर हुआ
बस तेरी तस्वीर हुआ

जो अब तक बेनामी है
मैं ऐसी जागीर हुआ

बोझ है जिसपे घर भर का
मैं ऐसा शहतीर हुआ

खुद से खुद को मांग सके
ऐसा कौन फकीर हुआ

3.

मैं बस्ती हो जाने तक
पहुंचा हूं वीराने तक

फर्ज अदा हो आने तक
ज़िन्दा हूं मर जाने तक

मैंने खुद को ढूंढ़ा है
खुद में गुम हो जाने तक

मेरा चर्चा तुझ-मुझ से
पहुंचा एक जमाने तक

इस महफिल में रहना है
अपना साथ निभाने तक

4.

वो हमसे अनजान रहे
जिनकी हम पहचान रहे

वो मेरा अरमान रहे
मेरी ये पहचान रहे

दोनों की पहचान रहे
ऐसा कुछ दरम्यान रहे

दुनिया तब तक दाना थी
जब तक हम नादान रहे

दोनों चुप थे यानी वो
दोनों एक जुबान रहे

संपर्क :
एन-138, सेक्टर-25,
नोएडा-201301
मो :-09810224571

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्यिक गतिविधियां

वर्ष 2017 का 'श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको साहित्य सम्मान' रामदेव धुरंधर को

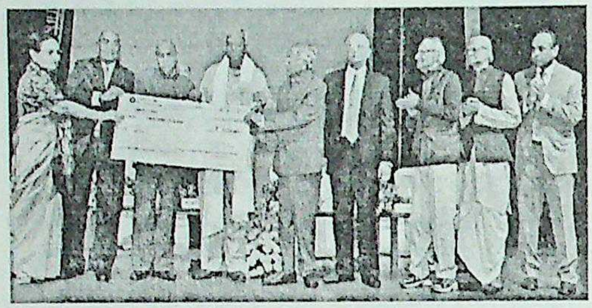

नई दिल्ली : 31 जनवरी, 2018। उर्वरक क्षेत्र की प्रमुख संस्था इफ़को द्वारा वर्ष 2017 का 'श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको साहित्य सम्मान' मॉरीशस के वरिष्ठ कथाकार श्री रामदेव धुरंधर को प्रदान किया गया। उन्हें यह सम्मान दिनांक 31 जनवरी, 2018 को नई दिल्ली के एनसीयूआई ऑडिटोरियम में आयोजित एक समारोह में सुविख्यात साहित्यकार श्री गिरिराज किशोर ने प्रदान किया। कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के तौर पर मॉरीशस उच्चायोग के प्रथम सचिव श्री वी चिट्टू मौजूद थे।

श्री धुरंधर का चर्चित उपन्यास 'पथरीला सोना' छः खंडों में प्रकाशित है। अपने इस महाकाव्यात्मक उपन्यास में उन्होंने किसानों-मजदूरों के रूप में भारत से मॉरीशस आए अपने पूर्वजों की संघर्षमय जीवन-यात्रा का कारुणिक चित्रण किया है। उन्होंने 'छोटी मछली बड़ी मछली', 'चेहरों का आदमी', 'बनते बिगड़ते रिश्ते', 'पूछो इस माटी से' जैसे अन्य उपन्यास भी लिखे हैं। 'विष-मंथन' तथा 'जन्म की एक भूल' उनके दो कहानी-संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त उनके अनेक व्यंग्य संग्रह और लघु कथा संग्रह भी प्रकाशित हैं।

साहित्यकार एवं सांसद श्री देवी प्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में गठित निर्णायक मंडल द्वारा श्री रामदेव धुरंधर का चयन बंधुआ किसान मजदूरों के जीवन संघर्ष पर केन्द्रित उनके व्यापक साहित्यिक अवदान को ध्यान में रखकर किया गया है। निर्णायक मंडल के अन्य सदस्य प्रो. नित्यानन्द तिवारी, श्री मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, श्रीमती चंद्रकान्ता एवं डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल थे।

प्रतिवर्ष दिया जाने वाला यह प्रतिष्ठित पुरस्कार किसी ऐसे रचनाकार को दिया जाता है जिसकी रचनाओं में ग्रामीण और कृषि जीवन से जुड़ीं समस्याओं, आकांक्षाओं और संघर्षों को मुखरित किया गया हो। मूर्धन्य कथाशिल्पी श्रीलाल शुक्ल की स्मृति में वर्ष 2011 में शुरू किया गया यह सम्मान अब तक श्री विद्यासागर नौटियाल, श्री शेखर जोशी, श्री संजीव, श्री मिथिलेश्वर, श्री अष्टभुजा शुक्ल एवं श्री कमलाकान्त त्रिपाठी को प्रदान किया गया है। सम्मानित साहित्यकार को एक प्रतीक चिह्न, प्रशस्ति-पत्र तथा ग्यारह लाख रुपये की राशि प्रदान की जाती है।

अपने स्वागत भाषण में इफको के प्रबंध निदेशक डॉ. उदय शंकर अवस्थी ने कहा कि आज कृषि और किसानों के जीवन पर लिखने वाले कम ही लेखक हैं। ऐसे में मॉरीशस की धरती पर मजदूर किसानों के आर्त्तस्वर को अपनी लेखनी से मुखरित करने वाले श्री रामदेव धुरंधर धन्यवाद के पात्र हैं। उनका विपुल साहित्य पूरी तरह किसानों के जीवन पर केंन्द्रित है, विशेष रूप से छः खण्डों में प्रकाशित उनका उपन्यास 'पथरीला सोना' अपने आप में एक महाख्यान है।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री गिरिराज किशोर ने मॉरीशस के लेखक को सम्मानित करने पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि श्री रामदेव धुरंधर का लेखन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। किसानों की व्यथा को मुखरित करने का काम जो धुरंधर जी ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने कहा कि धुरंधर जी की कृतियों में प्रेमचंद की छाप है, आपका शब्दों का चयन और मुहावरानवीसी विलक्षण है, अन्य प्रवासी भारतीय लेखकों में यह प्रवृत्ति नहीं दिखती।

सम्मान चयन समिति के अध्यक्ष एवं सांसद श्री देवी प्रसाद त्रिपाठी ने श्री रामदेव धुरंधर जी को बधाई देते हुए कहा कि धुरंधर जी का पूरा साहित्य किसानों और मजदूरों के जीवन को समर्पित है। विशिष्ट अतिथि श्री वी चिट्टू ने अपने वक्तव्य में कहा कि इफ़को ने श्रीलाल शुक्ल स्मृति इफको साहित्य सम्मान के लिए मॉरीशस की धरती को चुना, इसके लिए इफको प्रबंधन और सम्मान चयन समिति धन्यवाद की पात्र है। श्री रामदेव धुरंधर मॉरीशस की साहित्यिक धरोहर हैं। इस सम्मान के लिए उन्होंने श्री रामदेव धुरंधर को बधाई दी।

इस अवसर पर श्री लोकेश जैन के निर्देशन में श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यास 'अज्ञातवास' पर आधारित नाटक का मंचन भी किया गया। नाटक में कलाकारों ने अपने बेहतरीन अभिनय से दर्शकों का दिल जीत लिया। कार्यक्रम के अगले सत्र में 'मुखामुखम' के तहत वरिष्ठ प्रोड्यूसर श्री इरफान ने अपने चिरपरिचित अंदाज में पुरस्कृत लेखक श्री रामदेव धुरंधर का साक्षात्कार लिया। इसके दौरान लेखक ने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व से जुड़े अनेक अनछुए पहलुओं से दर्शकों को रूबरू कराया। श्री धुरंधर ने 1973 में छपी अपनी पहली कहानी से लेकर आज तक के अपने साहित्यिक सफर का जिक्र किया। उन्होंने बताया कि मॉरीशस में भारतीयों के इतिहास के बारे में लिखने की दृढ़ इच्छा उनके अन्दर हमेशा से थी। लगभग 25 वर्षों की अन्त:साधना के फलस्वरूप 'पथरीला सोना' जैसा विशाल महाख्यान सामने आया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंतिम सत्र में आयोजित कवि सम्मेलन में श्री कुलदीप सलिल, श्री नरेश सक्सेना, श्री रामकुमार कृषक, श्री अष्टभुजा शुक्ल, डॉ. अनामिका एवं श्रीमती अलका सिन्हा ने अपनी-अपनी कविताओं से श्रोताओं का मन मोह लिया। इस अवसर पर साहित्य और कलाप्रेमियों के लिए एनसीयूआई ऑडिटोरियम परिसर में 'कला-साहित्य प्रदर्शनी' का भी आयोजन किया गया। नवोदित कलाकारों की चित्रकला को प्रदर्शनी में स्थान दिया गया। प्रदर्शनी में दिल्ली के कई पुस्तक प्रकाशकों ने भी अपने स्टॉल लगाए। इस मौके पर श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं के साथ-साथ सम्मानित साहित्यकार श्री रामदेव धुरंधर की रचनाओं को भी प्रदर्शित किया गया। समारोह में दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय और जामिया मिल्लिया इस्लामिया सहित विभिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षक, छात्र सहित बड़ी संख्या में साहित्यप्रेमी शरीक हुए।

समकालीन उर्दू हिंदी ग़ज़ल का नया नाम है अशोक मिज़ाज बद्र

डॉ. हरी सिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा समकालीन ग़ज़ल और अशोक मिज़ाज, शीर्षक से परिचर्चा एवं काव्यपाठ का आयोजन किया गया। इसमें मुख्य वक्ता के रूप में भोपाल से उस्ताद शायर जनाब ज़फ़र सहबाई, म.प्र.उर्दू अकादमी के शायर और आलोचक जनाब इक़बाल मसूद, आलोचक और शायर जनाब ज़िया फ़ारूक़ी, हिंदी ग़ज़लकारों में श्री विजय वाते और डॉ. वर्षा सिंह ने अशोक मिज़ाज की शायरी पर अपने वक्तव्य दिए।

इस अवसर पर इक़बाल मसूद ने कहा कि समकालीन ग़ज़ल में तो बहुत से नाम हैं, जिनमें डॉ. बशीर बद्र और दुष्यंत भी हैं। इसी सिलसिले का एक नया नाम है अशोक मिज़ाज बद्र जिसने ग़ज़ल की लशकारे मारती हुई सरज़मीन पर अपना परचम बुलंद किया है। यह परचम बरसात के बाद निकलने वाली धनक की तरह धनक रंग है। इनकी शायरी मिट्टी में गुंधी हुई शायरी है। इनके यहां जो भी नयापन है वो इनका अपना है, उधार का नहीं है, न मांगे का उजाला है। उस्ताद सिर ज़फ़र सहबाई साहब ने कहा कि अशोक मिज़ाज की ग़ज़ल को हिंदी या उर्दू अदब में नज़रंदाज़ करना नाइंसाफी होगी। वो ग़ज़ल और समाज की सारी रिवायतों उसूलों और फ़न के पासदार हैं। उनकी शायरी दिल को छू लेती है,और उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता। वो हिंदी और उर्दू अदब में बराबरी से मक़बूल हैं। उन्होंने अशोक मिज़ाज का एक शेर भी कोट किया :

लहू का रंग गहरा और हल्का हो भी सकता है,
मगर ये एक जैसे हैं, तेरे आंसू, मेरे आंसू।

ज़िया फ़ारूक़ी साहब ने कहा कि अशोक मिज़ाज ने ये बात गांठ बांध ली थी कि ग़ज़ल उस ज़ुबान में कही जानी चाहिए जो उर्दू में छपे तो उर्दू की और हिंदी में छपे तो हिंदी ग़ज़ल कहलाये।अपने समाजी सरोकार और अपने मुताला की रोशनी में उन्होंने जो शेरी पैकर तराशे हैं वो खूबसूरत भी हैं और पुरअसर भी।

उन्होंने भी एक शेर कोट किया।
मैं बोलचाल की भाषा में बात करता हूँ,
मेरी ज़ुबान को इल्मी ज़ुबान मत समझो।

हिंदी ग़ज़लकार विजय वाते ने कहा कि अशोक मिज़ाज सम्प्रेषण के मामले में बहुत सजग हैं। अशोक ने ये बातें अपने शेर में कही भी है,

मैं अपने शेरों में इतना ख़याल रखता हूँ
कहा गया है जो उनमें तुझे सुनाई दे।

यानी शेर की कामयाबी यही है कि जो उसमें कहा गया है वो श्रोता या पाठक को भी समझ में आये। दूसरी खूबी ये कि वो हमेशा नयापन तलाश करता है। उसका यह शेर मैं अक्सर कोट करता हूँ,

इक्कीसवीं सदी की ऐसा कह सकें जिसे,
ऐसा भी कुछ कहो कि नया कह सकें जिसे।
अशोक मिज़ाज ने बहुत अच्छे अच्छे शेर कहे हैं।

हिंदी की सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार डॉ. वर्षा सिंह ने कहा कि अशोक मिज़ाज उर्दू के छंदों में तो महारत के साथ शेर कहते हैं लेकिन हिंदी ग़ज़ल में भी पूरी ताक़त के साथ शेर कहते हैं, और कथ्य के मामले में भी सजग हैं। उनकी शायरी में आज के दौर की सामाजिक, राजनैतिक और आम ज़िन्दगी की आहटें साफ सुनाई देती हैं। उन्होंने अशोक मिज़ाज के शेर कोट किये :

बदल रहे हैं यहां सब रिवाज क्या होगा,
मुझे ये फ़िक्र है कल का समाज क्या होगा।
दिलो दिमाग के बीमार हैं जहां देखो,
में सोचता हूँ यहां रामराज क्या होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे हिंदी विभागाध्यक्ष श्री आनंद त्रिपाठी ने कहा कि अशोक मिज़ाज ने हिंदी और उर्दू दोनों क्षेत्रों में अपना परचम लहराया है ये सागर के लिए गौरव की बात है। अशोक मिजाज के वक्तव्यों के बाद काव्य-पाठ भी हुआ। अशोक मिज़ाज ने शुरुआत में ही शेर पढ़कर हिंदी उर्दू के विभाजन को ही नकार दिया। शेर था :

उर्दू कहें कि हिंदी कहें आपकी मर्जी,
अपना तो शेर कहने का अंदाज़ यही है।

विभाग के जयहिंद स्वतंत्र और मनीष पाल के बाद सभी आमंत्रित वक्ताओं में ज़फ़र सहबाई, विजय वाते, ज़िया फ़ारूक़ी और वर्षा सिंह ने भी अपने कीमती शेरों से महफ़िल में जान फूंक दी। प्रो. शशि कुमार सिंह ने शानदार शायराना संचालन किया एवं आशुतोष मिश्र ने सभी का आभार प्रकट करते हुए कहा कि अशोक मिज़ाज जैसे शायर सागर में पैदा हुए जिनकी वजह से आज इतने बड़े-बड़े लोग हिंदी विभाग में आये। इस अवसर पर नगर के साहित्यकार निर्मल चंद निर्मल, डॉ. शरद सिंह, टीका राम त्रिपाठी, पी आर मलैया, वृंदावन रे सरल, कविता शुक्ला उमाकांत मिश्र और हिंदी और संस्कृत विभाग के प्राध्यापक और विद्यार्थी मौजूद थे।

नाटक 'आख़िरी रात' का मंचन संपन्न

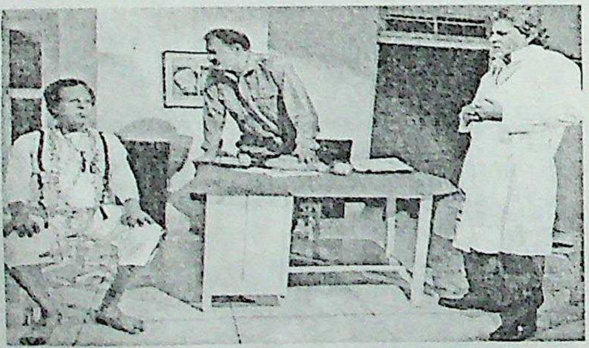

प्रोसिनियम आर्ट सेंटर में 18 फरवरी 2018 को कोलकाता की नाट्य युनिवर्सल लिटिल थियेटर द्वारा 'आख़िरी रात' का मंचन हुआ। योगराज लिखित इस उर्दू नाटक का निर्देशन पुराने अभिनेता एस .एम. राशिद ने किया। इस नाटक का कथ्य भले पुराना हो लेकिन निर्देशक के यथार्थवादी प्रयोग और कलाकारों के यथार्थवादी अभिनय ने नाटक को मौजूदा स्थिति में मौजूं बना दिया। यह नाटक एक जेलर और क़ैदी के रिश्तों पर आधारित है। इस नाटक में आज़ादी के पहले का इतिहास और समय की छाया दिखती है लेकिन जो आज भी मौजूद है और आज की मौजूदा राजनीति पर करारा प्रहार करता दिखता है। जेल में एक राजनैतिक क़ैदी से एक देश के बहुत बड़े समाजसेवी, व्यापारी और राजनीति

में गहरी पैठ रखने वाले लाला गिरधारी की हत्या के आरोप में गिरफ्तार और उसकी झूठी जबान बंदी से जेलर और जेल में धार्मिक काम करने वाले पादरी के जिरह से हत्या का राज़ कैदी परत-दर-परत खोलता चला जाता है। उधर गिरधारी लाल की बेटी भी इस मुकदमे को लड़ रही है और जब जांच सामने आती है तो सभी चौंक जाते हैं। दरअसल गिरधारी लाल ने अपनी दानवीर और दयालुता का कवच ऐसे ओढ़ लिया था कि किसी को शक़ ही नहीं हो रहा था कि वह देश का गद्दार है। अपनी उसी तस्वीर की आड़ में एक विदेशी देश के साथ ऐसा सौदा करना चाहता था कि जो राष्ट्रहित में बहुत खतरनाक सौदा होता। उसी समय गिरधारी लाल का ही सरपरस्त उसकी हत्या कर देता है। जब साबित हो जाता है कि लाला देश का दुश्मन था तो क़ैदी को फांसी की सज़ा से रिहा कर दिया जाता है। उर्दू भाषा में खेला गया यह नाटक शुरुआत से ही अपनी पकड़ बना लेता है। जब जेलर क़ैदी से असली राज़ जानने के लिए पादरी के कहने पर उसे अपने चेम्बर में बुलाता है। एक लय और ताल के साथ अभिनय गति में चल रहा था। गिरधारी लाल की बेटी के आते ही शायद लम्बे संवादों और थोड़ा लाउड होने से थोड़ी सी तारतम्यता टूटती है, लेकिन कलाकारों ने संभाल लिया। निर्देशक एस.एम राशिद. ने अपनी चालीस-पैतालीस वर्षों की रंग-यात्रा में अभिनय से लेकर निर्देशन की यात्रा करते हुए बहुत सारे अच्छे नाटकों का निर्देशन किया है, उनमें यह नाटक भी शुमार हुआ। जेलर के जद्दोजहद का चरित्र जीतेंद्र सिंह ने निभाया है, वहीं पादरी के चरित्र में शक़ील अहमद ने अपनी गंभीर आवाज़ के साथ सहज अभिनय किया है। प्रताप जायसवाल द्वारा निभाया गया क़ैदी का चरित्र सम्मोहित करने वाला है। लड़की की भूमिका में सदफ़ अयूब ने भी अच्छा अभिनय किया है। प्रोसिनियम के इस छोटे अंतरंग मंच से ही हो चाहे, और कहीं, इस दिशा नाट्य संस्था की जिम्मेदारी बनती है कि इस नाटक का प्रदर्शन जारी रखे क्योंकि कोलकाता में इस तरह की अच्छी प्रस्तुतियों की बहुत कमी है। दर्शकों के बीच इस नाटक को पहुंचाने की कोशिश करनी चाहिए।

प्रस्तुति : प्रभाकर चतुर्वेदी/ मो : 09231297977

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कला-संस्कृति

बॉलीवुड में सिंगर मॉडल एंजेल की शानदार दस्तक

बॉलीवुड में तेजी से उभरती नवोदित सिंगर मॉडल एंजेल राय का पहला सांग वीडियो जब छाए मेरा जादू मुम्बई में धूमधाम से लांच हुआ। साढ़े चार मिनट के इस वीडियो को लांच किया है सुप्रसिद्ध म्यूजिक कंपनी सारेगामा ने। एंजेल के इस पहले सांग वीडियो में न सिर्फ उनकी मधुर आवाज है बल्कि खूबसूरत लोकेशन पर फिल्माए गए गाने में एंजेल ने अपने हसीन हाव-भाव का बखूबी परिचय दिया है। मात्र 16 साल की एंजेल को अभिनय विरासत में मिली है। उनकी माँ रीटा राय खुद एक अभिनेत्री हैं। यही वजह है कि एंजेल ने कम उम्र से गाने और अभिनय की तालीम लेनी शुरू कर दी थी। गाने की लॉन्चिंग के अवसर पर अपनी वाकपटुता से उन्होंने लोगों को इस बात का एहसास दिला दिया कि जल्द ही वह पर्दे पर एक सनसनी बन कर उभरने वाली हैं। स्ट्रिंग मीडिया द्वारा निर्मित इस सांग वीडियो के निर्माण में सहयोग दिया है झांझरिया प्रोडक्शन, पीपी एजुकेशन को ऑपरेटिव सोसायटी और टू ड्रीम्स ने जबकि वीडियो सांग को डायरेक्ट किया है अभिषेक अंकुर ने एवं म्यूजिक अरेंज किया है गौतम चक्रवर्ती ने। जब छाए मेरा जादू में एंजेल के साथ विकास कुमार ने अपनी आवाज दी है साथ ही अभिनय भी किया है। लॉचिंग के बाद पत्रकारों से बातचीत करते हुए एंजेल ने बताया कि आशा भोंसले के गाने को नए अंदाज में गाना और उस पर अभिनय करना एक चुनौती भरा काम था लेकिन लोगों क प्रोत्साहन से उन्होंने इसे बखूबी अंजाम दिया। मुंबई में लॉचिंग के अवसर पर अपने पहले म्यूजिक वीडियो सांग को लेकर सिंगर-मॉडल एंजेल राय बेहद उत्साहित दिखीं क्योंकि उनके इस वीडियो सांग को सारेगामा जैसी बड़ी म्यूजिक कंपनी ने जो लांच किया है।

मलयालम भाषा से हिंदी में अनूदित दो पुस्तकों का लोकार्पण हुआ

विगत दिनों हिंदी भवन, नई दिल्ली एवं केरल क्लब साहिती सख्यम के संयुक्त तत्वावधान में मलयालम भाषा से हिंदी में अनूदित दो पुस्तकों का लोकार्पण संपन्न हुआ। सुप्रसिद्ध मलयालम साहित्यकार श्री सी.राधाकृष्णन द्वारा लिखित ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास तीक्कडल कडत्र तिरूमधुरम (हिंदी रूपांतर अग्नि सागर से अमृत-सुश्री एस.तंकमणि अम्मा एवं श्री के.जी. बालकृष्ण पिल्लै द्वारा) तथा साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास स्पंद मापिनिकले नंदीपू (हिंदी रूपांतर नाटक जारी है- श्री

ए. अरविंदाक्षन द्वारा, का विमोचन समारोह की मुख्य अतिथि सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रो. निर्मला जैन ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता हिंदी, उर्दू-फारसी के विद्वान डॉ. जानकी प्रसाद शर्मा ने की। इस अवसर पर सभी अतिथियों का स्वागत हिंदी भवन के मंत्री डॉ. गोविंद व्यास ने किया। समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक-कवि लीलाधर मंडलोई, वरिष्ठ नाटककार तथा भारतीय विद्या भवन के निदेशक प्रो.ओम चेरी, एन.एन.पिल्लै, वरिष्ठ कवि और आईएएस डॉ. जॉय वाशयिल, साहित्यकार डॉ. हरि सिंह पाल, साहित्यकार डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम तथा कवि डॉ. विवेक गौतम उपस्थित थे। इस अवसर पर अन्य गणमान्य में गजलकार आलोक यादव, नार्वे से पधारे लेखक श्री सुरेश चन्द्र शुक्ल, युवा कवि रवि कुमार शर्मा, निशानेबाजी के कोच दिनेश उप्रेती, नीरा गोयल और हिंदी भवन से लेखक श्री सपन भट्टाचार्य उपस्थित थे।

उपराष्ट्रपति एम.वेंकैया नायडू ने किया पुरस्कृत बच्चों की प्रेरक साहसी कथाएँ का लोकार्पण

वरिष्ठ पत्रकार और लेखक संजीव गुप्ता की नवीनतम कृति 'पुरस्कृत बच्चों की प्रेरक साहसी कथाएँ' (किताबघर प्रकाशन) का लोकार्पण उपराष्ट्रपति निवास पर आयोजित समारोह में उपराष्ट्रपति श्री एम.वेंकैया नायडू ने किया। इस अवसर पर पूर्वी दिल्ली से सांसद एवं दिल्ली भाजपा के अध्यक्ष, गायक मनोज तिवारी, वरिष्ठ पत्रकार, लेखक एवं नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत के चेयरमैन बलदेव भाई शर्मा के साथ-साथ राष्ट्रीय बाल भवन की अध्यक्ष शालू जिंदल भी उपस्थित रहीं। समारोह का सफल संचालन डॉ.विवेक गौतम ने किया।

युवा लेखिका आरती के काव्य-संग्रह 'अनुभूतियाँ' का लोकार्पण

युवा लेखिका आरती के काव्य-संग्रह 'अनुभूतियाँ' का लोकार्पणनई दिल्ली में गाँधी पीस फाउंडेशन में सम्पन्न हुआ। युवा लेखिका आरती के काव्य-संग्रह 'अनुभूतियाँ' को साहित्य कलश पब्लिकेशन पटियाला ने जारी किया। 'अनुभूतियाँ' आरती का यह पहला काव्य-संग्रह है।

प्रस्तुति : राजू बोहरा, प्रजादत्त डबराल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

व्यंग्य

मेरे कवि मित्र की चिन्ता

बुलाकी शर्मा

मेरे कवि-मित्र बहुत चिंतित हैं। वे कविता-लेखन में रिकार्ड बनाने में लगे हुए थे, किन्तु यह चिंता बीच में ऐसी आयी कि उनसे कविता लिखी ही नहीं जा रही। वे अपनी नजर में अपने समय के महान कवि हैं। वे जो लिखते हैं, वह कालजयी होता है। उनकी कविता के पाठकों-समालोचकों को उन जितनी समझ शायद न हो, इसलिए वे जब भी अपनी कविता सोशल मीडिया पर 'पोस्ट' करते हैं, यह जानकारी भी देनी जरूरी समझते हैं कि यह उनकी कालजयी कविता है। उनके पास कालजयी कविताओं के स्टाक में निरंतर श्रीवृद्धि हो रही है। उन्होंने हाल ही में अपने मित्रों को अपने काव्य-लेखन से अवगत कराकर उन्हें विस्मित किया है। उन्होंने बताया कि मात्र 30 दिनों में उन्होंने 300 कविताएं लिखी हैं। तात्पर्य यह कि प्रतिदिन उन्होंने दस कविताओं का लेखन किया है। कहना न होगा कि उनकी सभी कविताएं कालजयी हैं। आप-हम न मानें तो यह हमारी नासमझी है। वे तो हरेक कविता में स्पष्ट कर देते हैं कि यह कालजयी कविता है।

मेरे कवि मित्र स्व-मूल्यांकन भी करते रहते हैं। उनके स्व-मूल्यांकन का निष्कर्ष है कि जिस गति से वे कविता लेखन कर रहे हैं, वैसी गति तुलसी, सूर, कबीर जैसे कवियों की भी नहीं थी। उनके बाद के या अपने समय के कवियों को तो खैर वे इस मूल्यांकन प्रक्रिया में शामिल करना ही आवश्यक नहीं मानते। तुलना बराबर के कवियों के बीच होती है और वे तुलसी, सूर, कबीर आदि कवियों को उनका मान रखते हुए अपने बराबर मानते हुए उनसे तुलना कर लिया करते हैं स्व-मूल्यांकन के समय। उन्हें इस बात का अमाप अफसोस है कि तुलसी-कबीर आदि के समय सोशल मीडिया चलन में नहीं था। यदि उस समय होता तो वे उनकी 'पोस्ट' से अपनी 'पोस्ट' की संख्या से आसानी से तुलना कर सकते थे और निर्विवाद रूप से घोषित कर सकते थे कि जिस गति से उन्होंने कविता लेखन किया है, उस गति से आज तक कोई कवि नहीं कर पाया है, इस दृष्टि से वे लेखन-गति के स्तर पर आज तक के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वे अपनी कविताओं की तटस्थ समीक्षा भी करते रहते हैं। उनकी अपनी कविताओं की समीक्षाओं का निष्कर्ष है कि जितने विषय उन्होंने लिये हैं, उतने आज तक किसी कवि ने नहीं लिये। मैंने मित्र-धर्म निभाते हुए उनकी प्रशंसा करते हुए जैसा कहा जाना चाहिए, कहा आप पर मां सरस्वती की विशेष कृपा है। किन्तु उन्हें मेरी प्रशंसा से ज्यादा प्रसन्नता नहीं हुई। जो स्वयं ही अपनी प्रशंसा करके मुग्धावस्था में रहता है, उसके लिए ऐसी प्रशंसा मायना भी क्या रखती है। उन्होंने मेरे शब्दों को सुन मुझ पर गंभीर नजर फैंकी और प्रतिप्रश्न उछाला आप कहते हैं तो मां सरस्वती की विशेष कृपा मान लेते हैं... किन्तु आप प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करके बताएं कि कविता-लेखन में जैसी गति हमारी है वैसी गति मां सरस्वती की या गजानन गणपति की भी थी क्या? उनके प्रश्न का जवाब देने में आज तक मैं असमर्थ अनुभव कर रहा हूं।

मेरे ऐसे कालजयी कवि-मित्र इन दिनों चिंता में हैं। उन्हें चिंता है कि यदि कविता-लेखन पर जी.एस.टी. लागू हो गया तो उनका क्या होगा? वे कविता-लेखन की गति को कम नहीं कर सकते। कविताओं का स्टाक बढ़ता जा रहा है। सोशल मीडिया पर वे अपनी कालजयी कविताएं बराबर पोस्ट कर रहे हैं। उन पर नजर सबकी है तो सरकार की भी नजर है ही। वे सर्वाधिक कविता-लेखन के लिए लिम्का और गिनीज बुक में नाम दर्ज कराने के जतन में हैं किन्तु यह जीएसटी जो है, वह उन्हें परेशान किये हैं। यदि कविता-लेखन पर जीएसटी लागू हो गया तो वे इतनी राशि कहां से कबाड़ेंगे।

मेरे कवि-मित्र की चिंता में सहभागी बनकर मैं सी.ए. एडवोकेट के सम्पर्क में हूं। उनसे जी.एस.टी. के नियमों की जानकारी ले रहा हूं कि कविता-लेखन पर तो टैक्स नहीं है न! और मेरे कवि-मित्र इस चिंता में भी जैसे-तैसे कविता-लेखन में लगे हैं। उन्हें सर्वाधिक कविता-लेखन का रिकार्ड बनाना है न!

संपर्क :
सीताराम द्वार के सामने, जस्सूसर
गेट के बाहर, बीकानेर-334004
मो :-09413939900

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

LAHAK, March 2018 (Pages 92) RNI No. - WBHIN/2013/53192, Vol- 5 - Issue - 55, Rs. 30/-

PAREEK INDUSTRIES

Mob. : 93310 14578
93310 14665

PAREEK INDUSTRIES

Manufacturer of :-

All Grades of Plaster of Paris, Plaster Sheets, Gypsum Powder

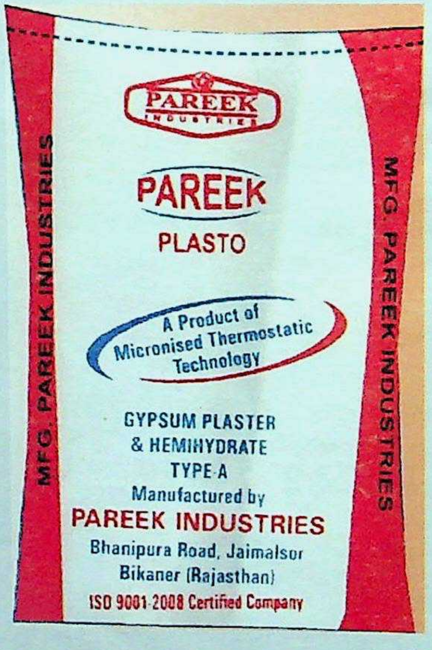

**BHANI PURA ROAD, JAIMALSAR
BIKANER (Rajasthan)**

Printer and Publisher : Nirbhay Devyansh, on behalf of owner Saudhatri Prakashan
Kranti Press, 37, Ripon Street, Kolkata - 700016
Published at : B-3 Bandipur Road, MistryPara, Bansdroni, P.S.- Regent Park, Kolkata - 700070 Editor : Nirbhay Devyansh

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant